जयध्वज प्रकाशन समिति

श्रावक-दर्पण

[श्रावक-धर्म की आराधना का उपयोगी संकलन]

"शास्त्र-श्रवण तुम करो अहोनिश
करो स्वयं को जिन-अर्पण ।
क्रिया करो, कैसे हो देखो,
यह लो नव "श्रावक दर्पण" ॥"

—उपाध्याय श्री लालचंदजी म.सा

निर्देशक :
मुनि श्री नूतनचन्द्रजी म सा.

सपादक :
मुनि गुणवतकुमार

जयध्वज प्रकाशन समिति-मद्रास

* जयध्वज प्रकाशन समिति-ग्रथमाला पुष्पाक १४

* पुस्तक

श्रावक-दर्पण (सशोधित-परिवर्धित)

* निर्देशक

मुनि श्री नूतनचद्र जी म सा 'नवरत्न'

* सपादक

मुनि गुणवतकुमार 'गुणी'

* प्रथम सस्करण के सपादक :

केवलमलजी लोढा, जयपुर

* सप्रेरक

श्रीयुत लालचदजी मरलेचा, मद्रास

* सस्करण

प्रथम—१५००—सन् १९७७ वि स २०३४ वीर स २५०३

द्वितीय—५०००—सन् १९८३ वि स. २०४० वीर स २५०८

* द्रव्य-सहयोगी

श्रीमान् लूणकरणजी सोनी, भिलाई (म प्र.)

श्रीमान् मागीलालजी जवाहरलालजी चोपडा-अमरावती (महाराष्ट्र)

श्रीयुत उमरावबाई छाजेड, टीटवा (महाराष्ट्र)

श्रीमान् हीराचदजी पन्नालालजी बोहरा-राबर्टसनपेट (कर्णाटक)

* प्रकाशक

जयध्वज प्रकाशन समिति-मद्रास

शाखा श्रुताचार्य चौथ स्मृति-भवन,

३९, विनोदनगर, ब्यावर-३०५ ९०१ (राजस्थान)

* मूल्य

७) रु० (लागत से कम)

* मुद्रक

जगदीश ललवाणी

एम एल प्रिंटर्स, सरदारपुरा, जोधपुर

प्रकाशकीय

'श्रावक-दर्पण' समिति का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रकाशन है। इसका एक मात्र कारण यही है कि इसमे श्रावकमात्र के लिए उपयोगी सामग्री का सकलन है। विक्रम सवत् २०३४ मे इसका प्रथम सस्करण निकला था। पद्रह-सौ प्रतियों का वह सस्करण थोडे ही वर्षो मे समाप्त हो गया। एव तब भी विभिन्न श्रावको की ओर से निरतर इसकी माग आती रही। सबकी माग को केवल इस वाक्य से ही पूरा करते रहना पडा कि पुस्तक 'आउट ऑफ प्रिंट' हो चुकी है। आखिर जवाजा मे गतवर्ष आयोजित समिति के वार्षिक अधिवेशन मे यह निर्णय लेना ही उचित जान पडा कि पुस्तक की द्वितीयावृत्ति का प्रकाशन यथाशीघ्र किया जाय। उसी निर्णय के फलस्वरूप प्रस्तुत है—श्रावक-दर्पण का सशोधित एव परिवर्धित यह दूसरा सस्करण।

सर्वोपयोगी होते हुए भी श्रावक-दर्पण के पहले सस्करण मे बहुत-सी कमिया-खामिया थी। यह सस्करण पूर्वापेक्षा कई दृष्टियो से साफ-सुथरा एव महत्त्वपूर्ण है। इस सशोधित-परिवर्धित नूतन-सकलन के प्रस्तुतीकरण का सारा श्रेय **मुनि श्री गुणवतकुमार जी 'गुणी'** को है। मुनि श्री ने परम-श्रद्धेय गुरुदेव आचार्य-प्रवर **श्री १००८ श्री जीतमल जी म. सा.** एव परम-श्रद्धेय गुरुदेव पडित-रत्न **उपाध्याय-प्रवर श्री लालचंद जी म. सा.** के सान्निध्य मे एव प्रखरमति **श्री नूतनचद्र जी म सा. 'नवरत्न'** के निर्देशन मे विभिन्न श्रावको (मुख्य रूप से श्रीयुत लालचद जी मरलेचा एव सुश्राविका प्रज्ञाचक्षु कु उमरावबाई छाजेड) के सुझावो को

ध्यान मे रखते हुए अपने अथक परिश्रम से प्रस्तुत सशोधित परिवर्धित श्रावक-दर्पण को तैयार करने की महती कृपा की। यह कहना अतिशयपूर्ण नही होगा कि श्रावक-दर्पण का काया-कल्प हो गया है।

परम-गुरु-भक्त उदारमना सेठ श्री लूणकरणजी सोनी, भिलाई (म प्र), श्री मांगीलाल जी जवाहरलाल जी चौपड़ा, अमरावती (महाराष्ट्र); प्रज्ञाचक्षु कु. उमरावबाई छाजेड़, टीटवा (महाराष्ट्र) एव श्री हीराचदजी पन्नालाल जी बोहरा, राबटसनपेट (के जी एफ) आदि सज्जनो ने प्रस्तुत प्रकाशन मे विशिष्ट आर्थिक सहयोग प्रदान कर समिति को व्यय-भार से हल्का किया; एतदर्थ मैं समिति की ओर से उनका अभिनदन करता हुआ आभार स्वीकारता हूँ।

समिति ने अपनी लागत के अनुसार ही पुस्तक का स्वल्पतम मूल्य रखा है। वास्तविक मूल्याकन तो पुस्तक का तभी होगा जब अधिकाधिक श्रावको के द्वारा इसका यथा नाम तथा उपयोग किया जाएगा। आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि श्रावक-दर्पण के बहुसख्यक पाठक शीघ्र ही इस कार्य को पूरा कर दिखाएगे।

अत मे विद्वान मुनिराजो, पडितो एव श्रावक-श्राविकाओ से सानुरोध निवेदन है कि वे प्रस्तुत पुस्तक के विपय मे उनकी जो भी सम्मति (सुझाव) हो, उसे 'जयध्वज प्रकाशन समिति, श्रुताचार्य चौथ स्मृति भवन, ३९ विनोदनगर, ब्यावर (राजस्थान)—३०५९०१', इस पते पर अवश्यमेव भिजवाने की कृपा करें, जिससे पुस्तक का अगला सस्करण और भी परिमार्जित रूप से प्रस्तुत किया जा सके। जयजिनेंद्र।

दिनाक. १५ अगस्त १९८३ —सुगालचद सिघवी

१५१, ट्रिप्लिकेन हाई रोड मत्री

मद्रास—६००००५ जयध्वज प्रकाशन समिति

द्रव्य सहयोगी



सुश्रावक श्री लूणकरण जी सोनी



सुश्राविका श्रीमती चवली बाई

प्रकाशन-सहयोगी परिचय

१- श्रीमान् लूणकरण जी सोनी

"उन्नत देह और उन्नत आत्मा का सुखद सयोग मानव-जीवन का एक अलौकिक वरदान है। विरल ही होते है, ऐसे सुसयोग जगत मे! किन्तु भाग्य का अनूठा चमत्कार, मध्य-प्रदेश प्रान्त के भिलाई नगर मे एक ही घर मे दो ऐसे व्यक्ति हैं जिनको उपर्युक्त वरदान एक-साथ सम्प्राप्त है! श्रीमान् लूणकरण जी सोनी एव श्रीमती बबलीबाई! ये दम्पती हैं। उन्नतात्मा मे मानवीयता के जो-जो सद्गुण अपेक्षित है, वे इन दम्पती मे विद्यमान हैं एव उन्ही गुणो के विकासार्थ ये अहोनिश उद्यमशील है। निःसन्देह एक नैतिक एव धार्मिक सद्गृहस्थ होने का सौभाग्य इनको प्राप्त है।

* न्याय-सपन्न वैभव के कारण जहाँ आपका गार्हस्थ्य निर्बाध रूप से चल रहा है वही सद्गुरु, सुदेव एव सद्धर्म के प्रताप से आपका श्रावकत्व (धार्मिक जीवन) भी अडिग रूप से विकसित हो रहा है।

* भिलाई का जैन श्री सघ वस्तुत धन्य है जिसका कार्य-सचालन कई वर्षो से श्रीमान् सोनी जी के नेतृत्व मे सम्यक्तया सम्पन्न हो रहा है। इतना ही नही, श्री अ. भा श्वे. स्था जयमल जैन श्रावक सघ के उपाध्यक्ष पद को भी वर्षों से आप ही अलकृत कर रहे हैं। श्री जयमल सघ के विकासार्थ होने वाली प्रत्येक गतिविधि के साथ आपकी सक्रिय घनिष्ठता जुड़ी रहती है। जय-सघ के प्रति आपकी आत्मीयता कितनी गहरी है, इसका एक प्रमाण है—अपने आवासीय नगर भिलाई मे

विना किसी पर-प्रेरणा के आप श्री द्वारा निर्मित 'जयमल जैन भवन'।

* अपनी सप्रदाय के प्रति अनन्य निष्ठा होते हुए भी 'सप्रदायवाद की बू' आज तक आपको नही छू सकी है। सत्कार्य के लिए कोई भी सहधर्मी, यहा तक कि मानव-मात्र भी यदि आपका सहयोग चाहता है तो आप उसकी उन्मुक्त भाव से यथाशक्य सहायता करते ही हैं।

* श्री जयमल संघ के वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री १००८ श्री जीतमल जी महाराज एव वर्तमान उपाध्याय-प्रवर श्री लालचद जी महाराज के प्रति आप दोनो की इतनी अनन्य एव अटूट श्रद्धा एव निष्ठा है कि साधनारत जीवन मे जब भी कोई समस्या आ खडी होती है तो उक्त पूज्य गुरुदेवो से उसका समाधान पाकर ही आप अपने आपको कृतकृत्य समझते है।

* आपके ही सस्कारो से ओतप्रोत आपके चार पुत्र एव तीन पुत्रिया है। सर्व श्री विमलचद, निर्मलचद, अशोककुमार एव ललितकुमार—ये श्री सोनी जी के चार सुपुत्र हैं तथा सर्व श्री इदिराबाई, त्रिशलाकुमारी एव चन्दनबाला—ये तीन सुपुत्रिया हैं।

* श्रीमान् सोनीजी स्व श्रीयुत हेमराज जी सोनी के सबसे बडे पुत्र हैं। दुर्ग मे व्यवसायरत श्रीमान् लालचद जी सोनी आप श्री के छोटे भाई है। उनके भी दो पुत्र एव चार पुत्रिया हैं। दोनो भाइयो के परिवारो का पारस्परिक प्रेम भी अत्यत सराहनीय है। प्रत्येक सामूहिक आयोजनो में उक्त दोनों परिवारो की एक ही सु दर सयुक्त-परिवार के रूप मे झाकी देखने को मिलती है।

* प्रस्तुत लोकप्रिय प्रकाशन 'श्रावक-दर्पण' मे आप श्री ने जिस उदार भावना से अपनी स्व मातु-श्री सजनीबाई की पावन-स्मृति मे अर्थ-सहयोग किया, उसके लिए समिति आपका कोटिश. अभिनदन करती है एव यही सत्कामना करती है कि आपकी यह जुगल-जोडी चिरकाल तक इसी प्रकार सघ-समाज की तन-मन-धन से सेवा करती रहे। जय जिनेन्द्र।"



२. श्री माँगीलाल जी जवाहरलाल जी प्यारेलाल जी चौपड़ा

"राजस्थान का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर जोधपुर। जोधपुर जिले के अतर्गत पीपाडशहर के समीपस्थ रीया (सेठारी) नामक छोटे-से गाव के रहने वाले स्वर्गीय धर्मप्रेमी उदारमना सेठ श्रीमान् मगनमल जी चौपडा। श्रीयुत चौपडा जी के चार पुत्र— १. श्री हस्तीमल जी २. श्री मागीलाल जी ३. श्री जवाहरलाल जी व ४ श्री प्यारेलाल जी। ज्येष्ठ पुत्र श्री हस्तीमल जी का सवत् २००४ मे अचानक निधन हो जाने के बाद पूरे परिवार सहित आप पीपाडशहर आ गए एव वही रहने लगे।

* विगत ३० वर्षों पूर्व आपके तीनो सुपुत्रो (श्री मागीलाल जी, जवाहरलाल जी एव प्यारेलाल जी) का व्यवसाय-निमित्त अमरावती (महाराष्ट्र) जाना हुआ। मिलनसार-प्रकृति एव व्यवसाय-कुशलता के कारण कुछ ही वर्षों मे आप तीनो भाइयो ने अमरावती के व्यापारी-समाज मे अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली। वर्तमान मे प्रतापचौक-स्थित "मे जवाहरलाल

प्यारेलाल जैन" एव खरैय्या मार्केट-स्थित "जे. पी मेटल्स" नामक अमरावती के दोनो सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठिानो के माध्यम से आप तीनो भाई बरतनो के व्यापार का कुशल सचालन कर रहे हैं।

* अभी आपकी वयोवृद्धा माता जी श्रीमती पतासी बाई आदि कुछ पारिवारिक सदस्य तो पीपाडशहर मे एव शेष सभी अमरावती मे निवास कर रहे है। अपने निवास-स्थल अमरावती व पीपाडशहर की हर धार्मिक-सामाजिक प्रवृत्तियो मे आप का उचित सहयोग समय-समय पर मिलता रहता है। पीपाडशहर-स्थित 'पूज्य श्री जयमल जैन ज्ञान भडार' की सुव्यवस्था हेतु आप सदैव विशेष रूप से प्रयत्नशील रहते हैं। इसके अतिरिक्त 'श्री अ भा श्वे स्था. जयमल जैन श्रावक सघ', 'श्री जयध्वज प्रकाशन समिति-मद्रास' एव 'श्री अ भा. जयगु जार प्रकाशन समिति' के आप सक्रिय कार्यकर्त्ता एव विशेप सहयोगी है।

* देव- गुरु-धर्म के प्रति आप तीनो भाई आस्थाशील है। परम-श्रद्धेय गुरुदेव जैनाचार्य-प्रवर श्रीश्रीश्री १००८ श्रीश्रीश्री जीतमलजी म सा. एव प रत्न उपाध्याय-प्रवर श्री लालचदजी म सा. के आप अनन्य श्रद्धालु भक्त हैं।

* प्रस्तुत 'श्रावक दर्पण' के प्रकाशन मे आपकी तरफ से जो विशेप सहयोग मिला है, उसके लिए समिति आपका धन्यवाद करती है।"

---

३. श्रीयुत उमराव बाई छाजेड़

"आदरणीय सुश्राविका श्रीयुत उमरावबाई छाजेड़, श्रीमान् मोतीलाल जी छाजेड की सुपुत्री हैं। आपका जन्म-स्थान अमरावती जिले के अन्तर्गत 'टीटवा' नामक छोटा-सा गांव है। मारवाड मे आपके पूर्वज निम्बेडा रहते थे। परि-स्थिति-वश आपके पिता श्री को निम्बेडा छोडकर महाराष्ट्र मे जाना पडा। अभी आपका पूरा परिवार टीटवा एव धामणगाव (महाराष्ट्र) मे व्यवसायरत है।

* बचपन मे ही जब आप दो-तीन साल की थी, उस समय आखो मे वेदना हो जाने से नेत्र-ज्योति से विहीन हो गई। ज्यो-ज्यो वय बढती गई त्यो-त्यो आपकी सात्त्विक भावना मे वृद्धि होती गई। एक दिन आपने यह सोचकर कि 'मैं न तो (प्रज्ञा चक्षु होने के कारण) ससार मे किसी भी काम की हू और न ही ससार त्याग कर प्रवर्ज्या ग्रहण कर सकती हू', निर्णय कर लिया कि मैं अब जैन-आगमो को कठस्थ करके प्रतिदिन स्वाध्याय करती हुई अपने पूर्वोपार्जित कर्मो की निर्जरा करूगी। बस, निर्णय के पश्चात् कार्य की शुरूआत कर दी तथा शीघ्र ही कुछ समय मे अपने लघुभ्राताओ की धर्मपत्नियो के सहयोग से काफी सूत्र कठस्थ कर डाले।

* सयोग की बात कि अमरावती मे सवत् २०१७ के चातुर्मास-काल मे आपको स्वर्गीय गुरुदेव स्वाध्याय-प्रेमी श्री चादमलजी म. सा की सेवा का सुअवसर मिला। उस चौमासे मे आपने अतगडदशा सूत्र कठस्थ किया। तदनन्तर आप प्राय प्रति चातुर्मास मे वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री १००८ श्री जीत-

मल जी म सा. एव पडित-रत्न उपाध्याय श्री लालचदजी म. सा. की सेवा का लाभ लेती रही है। फलत आपने कई सूत्र एव अनेको सस्कृत के स्तोत्र आदि कठस्थ कर लिए है और अब भी ज्यो-ज्यो अवसर मिलता है, त्यो-त्यो कुछ न कुछ नया याद करती रहती हैं। नया धार्मिक ज्ञान सीखने की एव सीखे हुए ज्ञान का स्वाध्याय करते रहने की आपकी लगन वास्तव मे अनुकरणीय है। प्रतिदिन प्रात ३ बजे शयन-त्याग कर अपने सीखे हुए ज्ञान के दोहरान मे जुट जाना एव रात्रि को भी बडी देर रात तक इसी कार्य मे लगे रहना, आपके धार्मिक ज्ञान-वृद्धि के प्रति आतरिक लगाव को प्रकट करता है।

* प्रस्तुत 'श्रावक दर्पण' के नये सस्करण के सकलन मे एव प्रकाशन मे आपका विशेष सहयोग रहा है, एतदर्थ समिति की ओर से अनेको धन्यावाद।



[

अनुक्रम

श्रावक-दर्पण

सूत्र-विभाग

स्तोत्र-विभाग

सज्झाय-विभाग

स्तोक-विभाग

स्तवन-विभाग

(1) स्तुति

(ii) **उपदेश**

प्रकीर्णक-विभाग

श्रावक दर्पण

सूत्र-विभाग

।। श्री वीतरागाय नम ।।

सामायिक-सूत्र

नमस्कार-सूत्र

नमो अरिहंताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण ।
नमो उवज्झायाण, नमो लोए सव्वसाहूण ।।

चूलिका

एसो पंचनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मगलाण च सव्वेसि, पढम हवइ मगल ।।

गुरु-वंदन-सूत्र

तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेमि ।
वदामि, नमसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि ।
कल्लाण, मगल, देवय, चेइय ।
पज्जुवासामि, मत्थएण वदामि ।।

आलोचना-सूत्र

इच्छाकारेण सदिसह भगव ! इरियावहिय पडिक्कमामि ? इच्छ । इच्छामि पडिक्कमिउ ।। इरियावहियाए, विराहणाए ।। गमणागमणे ।। पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा-उत्तिग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडासताणा-सकमणे ।। जे मे जीवा विराहिया ।। एगिंदिया, बेइदिया, तेइदिया, चउरिंदिया, पचिदिया ।। अभिहया, वत्तिया, लेसिया, सघाइया, सघट्टिया,

परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाण संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥

कायोत्सर्ग-सूत्र

[उत्तरीकरण एव आगार]

तस्स उत्तरीकरणेण, पायच्छित्तकरणेण, विसोहीकरणेण, विसल्लीकरणेण, पावाण कम्माण निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्ग ॥

अन्नत्थ ऊससिएण, नीससिएण, खासिएण, छीएण, जभाइएण, उड्डुएण, वायनिसग्गेणं, भमलिए पित्तमुच्छाए, सुहुमेहि अगसचालेहि, सुहुमेहि खेलसचालेहि, सुहुमेहि दिट्ठिसचालेहि, एवमाइएहि आगारेहि अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो, जाव अरिहताण भगवताण नमोक्कारेण न पारेमि, ताव काय ठाणेण मोणेण झाणेण अप्पाण वोसिरामि ॥

चतुर्विंशतिस्तव–सूत्र

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहते कित्तइस्स, चउवीस पि केवली ॥
उसभमजिय च वदे, सभवमभिनदण च सुमइ च ।
पउमप्पह सुपास, जिण च चदप्पह वदे ॥
सुविहि च पुप्फदत, सीयलसिज्जस वासुपुज्ज च ।
विमलमणत च जिण, धम्म सति च वदामि ॥
कुथु अर च मल्लि, वदे मुणिसुव्वय नमिजिण च ।
वदामिऽरिट्ठनेमि, पास तह वद्धमाण च ॥
एव मए अभित्थुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीस पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयतु ॥

किस्तिय-वदिय-महिया , जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग – बोहिलाभ , समाहिवरमुत्तम दितु ।।
चदेसु निम्मलयरा , आइच्चेसु अहिय पयासयरा ।
सागरवरगभीरा , सिद्धा सिद्धि मम दिसतु ।।

प्रतिज्ञा–सूत्र

करेमि, भते । सामाइय, सावज्ज जोग पच्चक्खामि । जावनियम पज्जुवासामि । दुविह, तिविहेण । न करेमि, न कारवेमि । मणसा, वयसा, कायसा । तस्स भते । पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाण वोसिरामि ।।

प्रणिपात–सूत्र

नमोऽत्थु ण अरिहताण, भगवताण ।। आइगराण, तित्थयराण, सयसबुद्धाण ।। पुरिसुत्तमाण, पुरिससीहाण, पुरिसवरपु डरीयाण, पुरिसवरगधहत्थीण ।। लोगुत्तमाण, लोगनाहाण, लोगहियाण, लोगपईवाण, लोगपज्जोयगराण ।। अभयदयाण, चक्खुदयाण ।। मग्गदयाण, सरणदयाण, जीवदयाण, बोहिदयाण, धम्मदयाण, धम्मदेसयाण, धम्मनायगाण, धम्मसारहीण, धम्मवरचाउरत-चक्कवट्टीण ।। दीवो, ताण, सरण, गइ, पइट्ठा ।।

अप्पडिहयवरनाण-दसणधराण, वियट्टछउमाण ।। जिणाण, जावयाण, तिन्नाण, तारयाण, बुद्धाण, बोहयाण, मुत्ताण, मोयगाण ।। सव्वन्नूण, सव्वदरिसीण, सिवमयलमरुयमणत-मक्खयमव्वाबाह-मपुणरावित्ति-सिद्धिगइनामधेय ठाण सपत्ताण नमो जिणाण जियभयाण ।।

समाप्ति-सूत्र
(आलोचना)

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।।

सामाइय सम्म काएण न फासिय, न पालिय, न तीरिय, न किट्टिय, न सोहिय, न आराहिय, आणाए अणुपालिय न भवइ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।।

—सामायिक मे स्त्री कथा, भक्त (भोजन) कथा, देश कथा, राज कथा—इन चार कथाओ में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

—सामायिक मे आहार सज्ञा, भय सज्ञा, मैथुन सज्ञा, परिग्रह सज्ञा—इन चार सज्ञाओ मे से किसी सज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

—सामायिक मे अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जानते-अजानते मन वचन काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

—सामायिक व्रत विधिपूर्वक लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि मे कोई अविधि हुई हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

—सामायिक का पाठ बोलने मे काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक विपरीत पढने मे आया हो तो अनत सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

सामायिक के बत्तीस दोष

मन के दस दोष

अविवेग जसोकित्ती, लाभत्थी गव्व भय नियाणत्थी ।
ससयरोस अविणउ, अबहुमाण ए दोसा भणियव्वा ।।

वचन के दस दोष :

कुवयण - सहसाकारे, सच्छंद - सखेव - कलह च ।
विगहा वि हासोऽसुद्ध , निरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस ।।

काया के बारह दोष :

कुआसण चलासण चलदिट्ठी,
सावज्जकिरियालबणाकु चणपसारण ।
आलस मोडण मल विमासण,
निद्दा वेयावच्चत्ति बारस काय दोसा ।।

सामायिक धारण करने की विधि

सर्वप्रथम स्थान एव सामायिक के उपकरण (आसन, उत्तरासग, पू जनी, मुखवस्त्रिका आदि) की प्रतिलेखना करना । फिर यतना से स्थान पू जकर आसन बिछाना । बाद मे आसन से हटकर गुरु महाराज विराजते हो तो उनकी ओर मु ह करके एव नही तो पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मु ह करके दोनो हाथ जोड कर, पचाग नमा कर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से तीन बार विधियुत वंदना करना । अपने धर्माचार्य-गुरुवर की आज्ञा लेकर 'नवकार', 'इच्छाकारेण' एवं 'तस्स उत्तरी' का पाठ 'तावकाय ठाणेण' तक प्रकट उच्चारण पूर्वक बोलना । अवशिष्ट पाठ 'मोणेण…वोसिरामि' मन मे बोल कर 'कायोत्सर्ग करना । कायोत्सर्ग में 'इच्छाकारेण' का पाठ मन में

कहना । पाठ के अत मे 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' के स्थान पर 'तस्स ओलाउ' कहना एव 'नवकार' के पाँच पदों का पाठ मन में कहना । फिर प्रकट उच्चारण मे 'नमो अरिहताण' ऐसा कह कर कायोत्सर्ग पारना । बाद में "कायोत्सर्ग में आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड" इतना पाठ बोलना । फिर 'लोगस्स' का पाठ बोल कर 'करेमि भंते' के पाठ से सामायिक लेना । इस पाठ मे जहाँ 'जाव नियम' शब्द आता है, वहा जितनी सामायिक लेना हो, उतनी सामायिक लेकर आगे पाठ कहना । फिर नीचे बैठ कर बाया घुटना खडा रख कर दो बार 'नमोत्थुण' का पाठ बोलना ।

सामायिक की अवधि मे एक क्षण भी प्रमाद मे नही बीतना चाहिए । ज्ञान, ध्यान, चितन - मनन स्वाध्याय, स्तुति-स्तोत्र का पाठ, इत्यादि धर्म-कार्य मे समय बीतना चाहिए । घर, दुकान आदि सासारिक विषयो को बिलकुल भूल जाना चाहिए । सत-मुनिराज विराजते हो, अपने से बडे अध्यापक आदि सामायिक मे विराजते हो तो उनकी ओर पीठ करके न बैठना चाहिए । व्याख्यान, धार्मिक अध्ययन आदि हो रहे हो तो उसी मे पूरा उपयोग रखना चाहिए । सामायिक मे बत्तीस दोषो का सेवन नही करना चाहिए ।

सामायिक पारने की विधि

सामायिक पारने के लिए 'नवकार' 'इच्छाकारेण' और 'तस्स उत्तरी' का पाठ बोल कर विधि सहित कायोत्सर्ग करना । कायोत्सर्ग मे 'लोगस्स' के पाठ को व 'नवकार' के पाच पदो को मन मे बोलना । विधिपूर्वक कायोत्सर्ग पार कर एक लोगस्स का पाठ बोलना एव विधि सहित दो बार 'नमोत्थुण' का पाठ बोलना । फिर 'एयस्स

नवमस्स' (सामायिक पारने का पूरा पाठ) बोल कर अन्त मे तीन वार 'नवकार' गिन कर सामायिक पारना चाहिए ।

सामायिक पारने के बाद भी सामायिक के उपकरणो को यदि इधर-उधर लेना रखना हो तो यतना पूर्वक लेना रखना चाहिए ।



सावय-आवस्सय-सुत्तं

(श्रावक-श्रावश्यक-सूत्र)

१. पडिक्कमण-ठावणा-सुत्तं

(प्रतिक्रमण-स्थापना-सूत्र)

इच्छामि ण भते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे, देवसिय पडिक्कमण ठाएमि । देवसिय-नाण-दसण-चरित्ताचरित्त-तव-अइयार-चितणत्थ करेमि काउस्सग्ग ।।

पढमं सामाइय-अज्झयणं

(प्रथम सामायिक अध्ययन)

१. णमोक्कार–सुत्त

(नमस्कार-सूत्र)

णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण ।
णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण ।।

२. सामाइय–सुत्तं

(सामायिक-सूत्र)

करेमि भते ! सामाइय, सावज्ज जोग पच्चक्खामि, जावनियम पज्जुवासामि, दुविह–तिविहेण, न करेमि न कारवेमि, मणसा-वयसा-कायसा, तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।।

बीयं चउवीसत्थय-अज्झयणं
(द्वितीय चतुर्विंश स्तव-अध्ययन)

१. चउवीसइ तित्थयरत्थओ
(चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तव)

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥
उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयल सिज्जंस वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामिऽ रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥
एवं मए अभिथुआ, विहुय रय-मला पहीण जर-मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥
कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

तइयं वंदणय अज्झयणं
(तृतीय वंदना अध्ययन)

१. गुरुवंदण सुत्त
(गुरुवन्दन सूत्र)

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं, निसीहि, अहोकायं कायसंफासं, खमणिज्जो भे किलामो, अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो

वइक्कतो ? जत्ता भे ? जवणिज्ज च भे ? खामेमि खमा-समणो ! देवसिय वइक्कम, श्रावस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाण देवसियाए श्रासायणाए तित्तीसऽण्णयराए ज किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोभाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए श्रासायणाए जो मे देवसियो श्रइयारो कश्रो तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि श्रप्पाण वोसिरामि ।।

चउत्थं पडिक्कमण श्रज्भयणं
(चतुर्थ प्रतिक्रमण श्रध्ययन)

१. मंगल-सुत्त
(मगल-सूत्र)

चत्तारि मगल—श्ररिहता मगल, सिद्धा मगल, साहू मगल केवलिपन्नत्तो धम्मो मगल । चत्तारि लोगुत्तमा—श्ररिहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारि सरण पवज्जामि—श्ररिहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलिपन्नत्त धम्म सरण पवज्जामि ।।

२. सखित्तपडिक्कमण-सुत्त
(सक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र)

इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे देवसिश्रो श्रइयारो कश्रो काइश्रो वाइश्रो माणसिश्रो उस्सुत्तो उम्मग्गो श्रकप्पो श्रकरणिज्जो दुज्भाश्रो दुव्विचिंतिश्रो श्रणायारो श्रणिच्छियव्वो श्रसावगपाउग्गो, नाणे तह दसणे चरित्ताचरित्ते सुए सामाइए,

तिण्ह गुत्तीण, चउण्ह कसायाण, पचण्हमणुव्वयाण, तिण्ह गुणव्वयाण, चउण्ह सिक्खावयाण वारसविहस्स सावग-धम्मस्स ज खडिय ज विराहिय तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।।

३. इरियावहिय पडिक्कमण सुत्तं

(ऐर्यापथिक प्रतिक्रमण सूत्र)

इच्छाकारेण सदिसह भगव ! इरियावहिय पडिक्कमामि, इच्छ, इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए गमणाऽऽगमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा-उत्तिग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडासताणा-सकमणे, जे मे जीवा विराहिया एगिदिया वेइदिया तेइदिया चउरिदिया पचिदिया अभिहया वत्तिया लेसिया सघाइया सघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाण सकामिया जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।।

४. नाणाइयार पडिक्कमण सुत्तं

(ज्ञान, ज्ञानातिचार-प्रतिक्रमण सूत्र)

आगमे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे । ऐसे तीन प्रकार के आगम-रूप ज्ञान के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊ—ज वाइद्ध, वच्चा-मेलिय, हीणक्खर, अच्चक्खर, पयहीण, विणयहीण, जोगहीण, घोसहीण, सुट्ठुऽदिण्ण, दुट्ठुपडिच्छिय, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झाइय, सज्झाइए न सज्झाइय । भणता गुणता विचारता ज्ञान और ज्ञानवत पुरुषो की अविनय आशातना की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।।

५. सम्मत्त सुत्तं

(सम्यक्त्व सूत्र)

अरिहतो मह देवो, जावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्त तत्त, इअ सम्मत्त मए गहिय ।।
परमत्थसथवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वा वि ।
वावण्णकुदसण वज्जणा, य सम्मत्त सद्दहणा ।।

इअ सम्मत्तस्स पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा त जहा ते आलोउ—सका, कखा, वितिगिच्छा, परपासड-पससा परपासड-सथवो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।।

बारसवयाइयारपडिक्कमण-सुत्तं

(द्वादश व्रत-अतिचार-प्रतिक्रमण सूत्र)

१. स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रत

पहला अणुव्रत 'थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण', त्रस जीव बेइदिय तेइदिय चउरिदिय पचिदिय, (इनको), जान के, पहिचान के, सकल्प करके, उसमे सगे सबधी तथा स्व-शरीर के भीतर पीडाकारी एव सापराधी को छोड, निरपराधी को आकुट्टी से हनने का पच्चक्खाण (करता हूँ) । जावज्जीवाए दुविह-तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहले स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा ते आलोउ—बधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

२. स्थूल-मृषावाद-विरमण-व्रत

दूसरा अणुव्रत 'थूलाओ मुसावायाओ वेरमण', कन्नालीए, गोवालीए, भोमालीए, णासावहारो, कूडसक्खिज्जे, इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण (करता हूँ), जावज्जीवाए, दुविह-तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे दूसरे मृषावाद-विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा ते आलोउ—सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदार-मतभेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

३. स्थूल-अदत्तादान-विरमण-व्रत

तीसरा अणुव्रत 'थूलाओ अदिण्णा-दाणाओ वेरमण', खात खनकर, गाँठ खोलकर, ताले पर कूँची लगाकर, मार्ग मे चलते को लूटकर, पडी हुई घणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना, इत्यादिक मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण (करता हूँ); सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पडी निभ्रमी वस्तु के उपरात अदत्तादान का पच्चक्खाण (करता हूँ), जावज्जीवाए दुविह-तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा; ऐसे तीसरे स्थूल अदत्तादान-विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ—तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्ध-रज्जाइक्कमे, कूड-तुल्ल-कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

४. स्थूल मैथुन-विरमण-व्रत

चौथा अणुव्रत 'थूलाओ मेहुणाओ वेरमण', सदार

सन्तोसिए, अवसेस (सव्व) मेहुण-विहि पच्चक्खामि, जावज्जीवाए, देव-देवी सम्बन्धी दुविह-तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तथा मनुष्य-तिर्यंच सम्बन्धी एगविह-एगविहेण, न करेमि. कायसा, ऐसे चौथे स्थूल मैथुन-विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ--इत्तरिय-परिग्गहिया-गमणे, अपरिग्गहिया-गमणे, अनगकीडा, पर-विवाह-करणे, कामभोग-तिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

५. स्थूल-परिग्रह-विरमण-व्रत

पाचवा अणुव्रत 'थूलाओ परिग्गहाओ वेरमण', खेत्त-वत्थु का यथा परिमाण, हिरण्ण-सुवण्ण का यथा परिमाण, दुपय-चउप्पय का यथा परिमाण, धण-धण्ण का यथा परिमाण, कुविय का यथा परिमाण, इस प्रकार जो परिमाण किया है, उसके उपरात अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण (करता हूँ), जावज्जीवाए, एगविह-तिविहेण, न करेमि, मणसा-वयसा-कायसा, ऐसे पाचवे स्थूल-परिग्रह-विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ---खेत्त-वत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्ण-सुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धण-धण्णप्पमाणाइक्कमे, दुपय-चउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

६. दिक्-परिमाण-व्रत

छठा दिशाव्रत उड्ढ दिशा का यथा परिमाण, अहोदिशा का यथा परिमाण, तिरियदिशा का यथा परिमाण, इस प्रकार जो परिमाण किया है उसके उपरात स्वेच्छा-काया से

आगे जाकर पाच आस्रव-सेवन का पच्चक्खाण (करता हूँ), जावज्जीवाए एगविह-तिविहेण, न करेमि, मणसा-वयसा-कायसा, ऐसे छठे दिशाव्रत के पच अइयारा, जाणियव्वा, न समायरियव्वा त जहा-ते आलोउ —उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइ-अतरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

७. उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत

सातवा व्रत उवभोग-परिभोग-विहि पच्चक्खायमाणे १ उल्लणिया-विहि २ दतण-विहि ३ फल-विहि ४ अब्भगण-विहि ५ उव्वट्टण-विहि ६ मज्जण-विहि ७ वत्थ-विहि ८ विलेवण-विहि ९ पुप्फ-विहि १० आभरण-विहि ११ धूव-विहि १२ पेज्ज-विहि १३ भक्खण-विहि १४ ओदण-विहि १५ सूप-विहि १६ विगय-विहि १७ साग-विहि १८ महुर-विहि १९ जीमण-विहि २० पाणीय-विहि २१ मुखवास-विहि २२ वाहण-विहि २३ उवाणह-विहि २४ सयण-विहि २५ सचित्त-विहि २६ दव्व-विहि, इत्यादि का यथा परिमाण किया है, इसके उपरात उपभोग-परिभोग-वस्तुओ को भोग-निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण (करता हूँ), जावज्जीवाए, एगविह-तिविहेण, न करेमि, मणसा-वयसा-कायसा, ऐसा सातवा उपभोग-परिभोग दुविहे पण्णत्ते त जहा-भोयणाओ य, कम्मओ य, भोयणाओ समणोवासएण पच अइयारा, जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ—सचित्ताहारे, सचित्त-पडिबद्धाहारे, अप्पउलि-ओसहिभक्खणाया, दुप्पउलि-ओसहि-भक्खणाया, तुच्छोसहि-भक्खणाया, कम्मओण

समणोवासएण पण्णरस कम्मादाणाइ, जाणियव्वाइ, न समायरियव्वाइ, त जहा-ते आलोउ—१ इगालकम्मे २ वणकम्मे ३ साडीकम्मे ४ भाडी कम्मे ५ फोडीकम्मे ६ दतवाणिज्जे ७ लक्ख-वाणिज्जे ८ रस-वाणिज्जे ९ विस-वाणिज्जे १० केस वाणिज्जे ११ जत-पीलण-कम्मे १२ निल्लछण-कम्मे १३ दवग्गि-दावणया १४ सर-दह-तलाय-सोसणया १५ असई-जण-पोसणया, जो मे देवसियो अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

८. अनर्थदंड विरमण-व्रत

आठवा 'अणट्ठादण्ड-विरमण-व्रत', चउव्विहे अणट्ठादण्डे पण्णत्ते, त जहा—१ अवज्झाणायरिए २ पमायायरिए ३ हिंसप्पयाणे ४ पावकम्मोवएसे, एव आठवा अनर्थदण्ड-सेवन का पच्चक्खाण, जिसमे आठ आगार १ आए वा २ राए वा ३ नाए वा ४ परिवारे वा ५ देवे वा ६ नागे वा ७ भूए वा ८ जक्खे वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अन्नत्थ, जावज्जीवाए, दुविह-तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि, मणसा-वयसा-कायसा, ऐसे आठवे अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत के पच अइयारा, जाणियव्वा, न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ—कदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, सजुत्ताहिगरणे, उवभोग-परिभोग-अइरित्ते, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

९. सामायिक व्रत

नववा 'सामायिक व्रत' सावज्ज जोग पच्चक्खामि, जाव-नियम पज्जुवासामि, दुविह-तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि, मणसा-वयसा-कायसा, ऐसी मेरी श्रद्धना-प्ररूपणा तो है, सामायिक का अवसर आये, सामायिक करू, तब फरसना

हिय, सिरसावत्त, मत्थए अंजलि कट्टु, एव वएज्जा—नमोत्थुण अरिहताण भगवताणं जाव सपत्ताण, ऐसे अनत-सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, नमोत्थुण अरिहताण भगवताण जाव सपाविउकामाण, ऐसे जयवत वर्तमान काल मे महाविदेह क्षेत्र मे विचरते हुए तीर्थंकर भगवान् को नमस्कार करके (नमोत्थुण मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, ऐसे) अपने धर्माचार्यजी को नमस्कार करता हूँ। साधु-प्रमुख चारो तीर्थ को खमा कर, सर्व जीव-राशि को खमा कर, पहले जो व्रत आदरे हैं, उनमे जो (आज तक) अतिचार-दोष लगे है, वे सर्व आलोच कर, पडिक्कम कर, निदकर, निःशल्य होकर, सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि, सव्व मुसावाय पच्चक्खामि, सव्व अदिण्णादाण पच्चक्खामि, सव्व मेहुण पच्चक्खामि, सव्व परिग्गह पच्चक्खामि, सव्व कोह माण जाव मिच्छादसणसल्ल पच्चक्खामि, सव्व अकरणिज्ज जोग पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि-करत पि अन्न न समणुजाणामि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे अठारह पाप पच्चक्ख कर, सव्व असण-पाण-खाइम-साइम चउव्विह पि आहार पच्चक्खामि, ऐसे चारो आहार पच्चक्ख कर, ज पि य इम सरीर, इट्ठ-कत-पिय-मणुण्ण-मणाम-धिज्ज-विसासिय-समय-अणुमय-वहुमय-भड-करडसमाण-रयणकरडगभूय, मा ण सीय, मा ण उण्ह, मा ण खुहा, मा ण पिवासा, मा ण वाला, मा ण चोरा, मा ण दसमसगा, मा ण वाइय-पित्तिय-कप्फिय, सभीमसण्णिवाइय, विविहा-रोगायका-परीसहा-उवसग्गा-फासा-फुसन्तु, चरमेहि उस्सास-निस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु, काल अणवकखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी श्रद्धा-प्ररूपणा तो है, सलेखना का अवसर आये, सलेखना करू, तब फरसना

करके शुद्ध होऊ। ऐसे अपच्छिम-मारणतिय सलेहणा झूसणा आराहणाए पच अइयारा, जाणियव्वा—न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ—इहलोगा-ससप्पओगे, परलोगा-ससप्पओगे, जीविया-ससप्पओगे, मरणा-ससप्पओगे, कामभोगा-ससप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

पांच पदों की वन्दना

१. अरिहंत वन्दना

पहले पद श्री अरिहत भगवान् जघन्य बीस, उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेव, तीर्थंकर होते हैं, वर्तमान काल मे बीस विहरमान (तीर्थंकर) महाविदेह क्षेत्र मे विचरते है। (अरिहत भगवान) एक हजार आठ लक्षण के धारक, चौतीस अतिशय व पैंतीस अतिशययुक्त वाणी से विराजमान, चौसठ इन्द्रो के वन्दनीय, अठारह दोष-रहित, बारह गुण-सहित (१ अनन्त ज्ञान २ अनन्त दर्शन ३ अनन्त चारित्र ४ अनन्त बलवीर्य ५ अशोक वृक्ष ६ कुसुम वृष्टि ७ दिव्यध्वनि ८ चामर ९ स्फटिक सिंहासन १० भा-मण्डल ११ देव-दु दुभि १२ छत्र) पुरुषाकार-पराक्रम के धारक, सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के ज्ञाता है।

सवैया

नमो श्री अरिहत, करमो का किया अन्त
हुआ सो केवलवन्त, करुणा-भण्डारी है।
अतिशय चौतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार
समझावे नर-नार, पर उपकारी है।
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार
गुण है अनन्त सार, दोष-परिहारी है।

(पालन) करके शुद्ध (निर्मल) होऊ, ऐसे नववे सामायिक व्रत के पच अइयारा, जाणियव्वा—न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ —मण-दुप्पणिहाणे, वय-दुप्पणिहाणे,काय-दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ-अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स-करणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१०. देशावकाशिक व्रत

दसवा 'देसावगासिक व्रत' दिन-दिन प्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहो दिशा मे जितनी भूमिका की मर्यादा रखी है, उसके उपरात आगे जाकर पाच आस्रव-द्वार सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह-तिविहेण, न करेमि-न कारवेमि, मणसा-वयसा-कायसा, जितनी भूमिका की मर्यादा रखी है, उसमे जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है, उसके उपरात उपभोग-परिभोग-निमित्त से भोग भोगने का पच्चक्खाण, जाव दिवस पज्जुवासामि, एगविह-तिविहेण, न करेमि, मणसा-वयसा-कायसा, ऐसे दसवे देशावकाशिक व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा—न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ-आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, वहिया-पुग्गल-पक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

११. प्रतिपूर्ण पौषधव्रत

ग्यारहवा 'पडिपुण्ण-पौषधव्रत', असण-पाण-खाइम-साइम का पच्चक्खाण, अबभ-सेवन का पच्चक्खाण, मणि-सुवण्ण का पच्चक्खाण, माला-वण्णग-विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थ-मुसलादि-सावज्ज-जोग-सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह-तिविहेण, न करेमि-न कारवेमि, मणसा-वयसा-कायसा, ऐसी मेरी श्रद्धना-प्ररूपणा तो है, पौषध का

अवसर आये, पौषध करू, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, ऐसे ग्यारहवे प्रतिपूर्ण पौषधव्रत के पच अइयारा, जाणियव्वा न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ—अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सेज्जासथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-सेज्जासथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-पासवण-भूमि, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-उच्चार-पासवण-भूमि, पोसहस्स सम्म अणणु-पालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१२. अतिथि–संविभाग–व्रत

बारहवा 'अतिथि-सविभाग-व्रत', समणे-निग्गथे, फासुय-एसणिज्जेण, असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थ-पडिग्गह-कबल-पायपुच्छणेण, पडिहारिय पीढ-फलग-सेज्जा-सथारएण, ओसह-भेसज्जेण, पडिलाभेमाणे विहरामि, ऐसी मेरी श्रद्धा-प्ररूपणा तो है, साधु-साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूँ, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, ऐसे बारहवें अतिथि-सविभाग व्रत के पच अइयारा, जाणियव्वा—न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ—सचित्त-निक्खेवणया, सचित्त-पिहणया, कालाइक्कमे, परोवएसे, मच्छरियाए, जो मे देवसिओ अइयारो, कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

संलेखना (तप) व्रत

अह, भते अपच्छिम-मारणतिय-सलेहणा झूसणा आराहणा, पौषधशाला पू जकर, उच्चार-पासवण-भूमिका पडिलेहकर, गमणागमणे पडिक्कम कर, दर्भादिक सथारा सथार कर, दर्भादिक सथारा दुरूहकर, पूर्व या उत्तर (या ईशानकोण) दिशा सम्मुख पल्यकादिक आसन से बैठकर, करयल-सपरिग्ग-

हिय, सिरसावत्त, मत्थए अजलि कट्टु, एव वएज्जा—नमोत्थुरण अरिहताण भगवताण जाव सपत्ताण, ऐसे अनत-सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, नमोत्थुरण अरिहताण भगवताण जाव सपाविउकामाण, ऐसे जयवत वर्तमान काल मे महाविदेह क्षेत्र मे विचरते हुए तीर्थंकर भगवान् को नमस्कार करके (नमोत्थुरण मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, ऐसे) अपने धर्माचार्यजी को नमस्कार करता हूँ। साधु-प्रमुख चारो तीर्थ को खमा कर, सर्व जीव-राशि को खमा कर, पहले जो व्रत आदरे हैं, उनमे जो (आज तक) अतिचार-दोष लगे हैं, वे सर्व आलोच कर, पडिक्कम कर, निदकर, निःशल्य होकर, सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि, सव्व मुसावाय पच्चक्खामि, सव्व अदिण्णादाण पच्चक्खामि, सव्व मेहुण पच्चक्खामि, सव्व परिग्गह पच्चक्खामि, सव्व कोह माण ' जाव मिच्छाद-सणसल्ल पच्चक्खामि, सव्व अकरणिज्ज जोग पच्चक्खामि; जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण, न करेमि, न कारवेमि-करत पि अन्न न समणुजाणामि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे अठारह पाप पच्चक्ख कर, सव्व असण-पाण-खाइम-साइम चउव्विह पि आहार पच्चक्खामि, ऐसे चारो आहार पच्चक्ख कर, ज पि य इम सरीर, इट्ठ-कत-पिय-मणुण्ण-मणाम-धिज्ज-विसासिय-समय-अणुमय-बहुमय-भड-करडसमाण-रयणकरडगभूय, मा ण सीय, मा ण उण्ह, मा ण खुहा, मा ण पिवासा, मा ण वाला, मा ण चोरा, मा ण दसमसगा, मा ण वाइय-पित्तिय-कफिय, सभीमसण्णिवाइय, विविहा-रोगायका-परीसहा-उवसग्गा-फासा-फुसन्तु, चरमेहिं उस्सास-निस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु, काल अणवकखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी श्रद्धा-प्ररूपणा तो है, सलेखना का अवसर आये, सलेखना करू, तब फरसना

करके शुद्ध होऊ। ऐसे अपच्छिम-मारणतिय सलेहणा झूसणा आराहणाए पच अइयारा, जाणियव्वा—न समायरियव्वा, त जहा-ते आलोउ—इहलोगा-ससप्पओगे, परलोगा-ससप्पओगे, जीविया-ससप्पओगे, मरणा-ससप्पओगे, कामभोगा-ससप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

पांच पदों की वन्दना

१. अरिहंत वन्दना

पहले पद श्री अरिहत भगवान् जघन्य बीस, उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेव, तीर्थंकर होते है, वर्तमान काल मे बीस विहरमान (तीर्थंकर) महाविदेह क्षेत्र मे विचरते है। (अरिहत भगवान) एक हजार आठ लक्षण के धारक, चौतीस अतिशय व पैंतीस अतिशययुक्त वाणी से विराजमान, चौसठ इन्द्रो के वन्दनीय, अठारह दोष-रहित, बारह गुण-सहित (१ अनन्त ज्ञान २ अनन्त दर्शन ३ अनन्त चारित्र ४ अनन्त बलवीर्य ५ अशोक वृक्ष ६ कुसुम वृष्टि ७ दिव्यध्वनि ८ चामर ९ स्फटिक सिहासन १० भा-मण्डल ११ देव-दुदुभि १२ छत्र) पुरुषाकार-पराक्रम के धारक, सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के ज्ञाता है।

सवैया

नमो श्री अरिहत, करमो का किया अन्त
हुआ सो केवलवन्त, करुणा-भण्डारी हैं।
अतिशय चौतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार
समझावे नर-नार, पर उपकारी है।
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार
गुण है अनन्त सार, दोष-परिहारी है।

कहत 'तिलोक रिख', मन-वच-काया करी
लुली-लुली वार-वार, वन्दना हमारी है ॥

ऐसे श्री अरिहत भगवन् ! आपकी दिवस-सम्बन्धी अविनय-आशातना की हो, तो हे अरिहत भगवन् ! मेरा अपराध वार-वार क्षमा करिये । हाथ जोड, मान मोड, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ वार वन्दना करता हूँ

तिक्खुत्तो ... ... मत्थएण वन्दामि । आप मागलिक हो, उत्तम हो । हे स्वामिन् ! हे नाथ ! आपका इस भव, परभव, भव-भव मे सदा काल शरण हो ।

२. सिद्ध वन्दना

दूसरे पद श्री सिद्ध भगवान् पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हुए है १ तीर्थ सिद्ध २. अतीर्थ सिद्ध ३ तीर्थंकर सिद्ध ४. अतीर्थंकर सिद्ध ५ स्वयबुद्ध सिद्ध ६ प्रत्येकबुद्ध सिद्ध ७ बुद्धबोधित सिद्ध ८ स्त्रीलिग सिद्ध ९ पुरुषलिग सिद्ध १० नपु सकलिग सिद्ध ११ स्वलिग सिद्ध १२. अन्यलिग सिद्ध १३. गृहस्थलिग सिद्ध १४ एक सिद्ध १५ अनेक सिद्ध । अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, क्षायिक सम्यक्त्व, अटल अवगाहना, अमूर्तिकपन, अगुरुलघु, अनन्त अकरण-वीर्य—इन आठ गुणो से सहित विराजमान है । जहा (सिद्ध अवस्था मे) जन्म नही, जरा नही, मरण नही, भय नही, रोग नही, शोक नही, दु ख नही, दारिद्रय नही, कर्म नही, काया नही, मोह नही, माया नही, चाकर नही, ठाकर नही, भूख नही, तृषा नही, वहा ज्योत मे ज्योत विराजमान है । सकल कार्य सिद्ध करके (अर्थात्) आठ कर्म क्षय करके मोक्ष पहुँचे है ।

सवैया

सकल करम टाल, वश कर लियो काल
मुगति मे रह्या माल, आत्मा को तारी है।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है।
अचल अटल रूप, आवे नही भव-कूप
अनूप स्वरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी है।
कहत 'तिलोक रिख', बताओ ए वास प्रभु
सदा ही उगते सूर, वन्दना हमारी है ॥

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय-आशातना की हो, तो हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध बार-बार क्षमा करिये। हाथ जोड वन्दना करता हू।

'तिक्खुत्तो मत्थएण वन्दामि।'
आप मागलिक 'शरण हो।

३. आचार्य वन्दना

तीसरे पद श्री आचार्य महाराज पॉच महाव्रत पालते है, पाँच आचार पालते है, पॉच इन्द्रिय जीतते है, चार कषाय टालते हैं, नव वाड सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पालते है, पाच समिति तीन गुप्ति शुद्ध आराधते है—यो छत्तीस गुण एव आचार सम्पदा, श्रुत सम्पदा, शरीर सम्पदा, वचन सम्पदा, वाचना सम्पदा, मति सम्पदा, प्रयोगमति सम्पदा, सग्रह परिज्ञा सम्पदा—आठ सम्पदा सहित है।

सवैया

गुण है छत्तीस पूर, धारत धरम उर
मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है।

शुद्ध सो आचारवत, सुन्दर है रूप कत
भणिया सभी सिद्धात, वाचणी सुप्यारी है ।
अधिक मधुर वेण, कोई नही लोपे केण
सकल जीवो का सेण, कीरति अपारी है ।
कहत 'तिलोक रिख', हितकारी देत सीख
ऐसे आचारज ताकू, वन्दना हमारी है ।।

ऐसे श्री आचार्य महाराज, न्याय-पक्ष वाले, भद्रिक परिणामी, परम-पूज्य, कल्पनीय अचित्त वस्तु को ग्रहण करने वाले, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणो के अनुरागी, सौभागी है । ऐसे श्री आचार्य महाराज ! आपकी (दिवस सम्बन्धी) अविनय-आशातना की हो, तो हे आचार्य महाराज ! मेरा अपराध वार-वार क्षमा करिए । हाथ जोड · · वन्दना करता हू ।

'तिक्खुत्तो मत्थएण वदामि'

४. उपाध्याय-वन्दना

चौथे पद श्री उपाध्याय महाराज ११ अग एव १२ उपाग—इन तेईस आगमो को आप पढे, औरो को पढावे तथा चरणसत्तरी, करणसत्तरी को धारण करे—इन पच्चीस गुणो सहित, ग्यारह अग का पाठ अर्थ सहित जानते है, चौदह पूर्व के पाठक एव निम्नोक्त वत्तीस सूत्रो के जानकार है (ग्यारह अग) १ आचाराग २ सूत्रकृताग ३ स्थानाग ४ समवायाग ५ भगवती-अग ६ ज्ञाताधर्मकथाग ७ उपासकदशाग ८ अतकृतदशाग ९ अनुत्तरोपपातिकदशाग १० प्रश्नव्याकरणांग ११ विपाकाग, (बारह उपाग) १२ औपपातिक (उववाई) १३. राजप्रश्नीय (राय पसेणी) १४ जीवा-

भिगम १५ प्रज्ञापना (पन्नवरणा) १६. जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति १८ सूर्यप्रज्ञप्ति १९ निरयावलिका २० कल्पावतसिका (कप्पवडसिया) २१ पुष्पिका (पुप्फिया) २२ पुष्पचूलिका (पुप्फ चूलिया) २३ वृष्णिदशा (वण्हिदशा), (चार मूल) २४ उत्तराध्ययन २५ दशवैकालिक २६ नन्दी २७ अनुयोगद्वार (चार छेद) २८. दशाश्रुतस्कध २९ बृहत्कल्प ३० व्यवहार ३१ निशीथ और ३२ आवश्यक सूत्र। तथा अन्य अनेक ग्रन्थो के ज्ञाता, सात नय, चार निक्षेप, निश्चय, व्यवहार, चार प्रमाण और स्वमत-परमत के ज्ञाता, मनुष्य या देवता कोई भी विवाद मे जिनको छलने मे समर्थ नही, जिन नही पर जिन-समान, केवली नही पर केवली-समान है।

सवैया

पढत ग्यारह अग, करमा सू करे जग
पाखडी को मान-भग, करण हुशियारी है।
चवदे पूरब धार, जानत आगम-सार
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है।
पढावे भविक जन, स्थिर कर देत मन
तप कर तावे तन, ममता को मारी है।
कहत 'तिलोक रिख', ज्ञान-भानु परतिख
ऐसे उपाध्याय ताकू, वन्दना हमारी है॥

ऐसे श्री उपाध्याय महाराज मिथ्यात्व रूप अन्धकार के नाशक, समकित रूप उद्योत के कर्त्ता, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करने वाले, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण सहित है। ऐसे श्री उपाध्याय महाराज! आपकी (दिवस सम्बन्धी) अविनय-आशातना की हो, तो हे उपाध्याय

महाराज ! मेरा अपराध वार-वार क्षमा करिये । हाथ जोड वन्दना करता हूँ ।

"तिक्खुत्तो मत्थएण वन्दामि" ।

५. साधु वन्दना

पाचवे पद श्री सर्व साधु जी महाराज, अढाई द्वीप-पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक मे छद्मस्थ जघन्य दो हजार क्रोड, उत्कृष्ट नव हजार क्रोड, केवलज्ञानी जघन्य दो क्रोड, उत्कृष्ट नव क्रोड जयवन्त विचरते है । पाच महाव्रत पालते हैं, पाच इन्द्रिया जीतते है, चार कषाय टालते है (इस प्रकार चौदह एव) १५ भाव सत्य १६ करण सत्य १७ योग सत्य १८ क्षमावान् १६ वैराग्यवान् २० मन-गुप्ति २१ वचन-गुप्ति २२ काय-गुप्ति २३ ज्ञान-सम्पन्नता २४ दर्शन-सम्पन्नता २५ चारित्र-सम्पन्नता २६ परीपह-सहन २७ मृत्यु के भय से मुक्त—इन सत्ताईस गुणो से युक्त, पाच आचार पालते है, छह काय की रक्षा करते है, नव-वाड सहित ब्रह्मचर्य पालते है, वाईस परीपह जीतते है, तीस महामोहनीय कर्म निवारते है, तेतीस आशातना टालते है, वयालीस दोष टालकर आहार-पानी लेते है, सैतालीस दोप टालकर भोगते है, वावन अनाचार टालते है, सचित्त के त्यागी है, अचित्त के भोगी है, लोच करना, नगे पैर चलना आदि काय-क्लेश करते हैं और मोह-ममता रहित है ।

सवैया

आदरी सयम - भार, करणी करे अपार
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है ।
जयणा करे छह काय, सावद्य न वोले वाय
वुझाई कपाय-लाय, किरिया-भडारी है ।

ज्ञान भणे आठो याम, लेवे भगवत नाम
धरम को करे काम, ममता कू मारी है।
कहत 'तिलोक रिख', करमो का टाले विख
ऐसे मुनिराज ताकू वदना हमारी है।।

ऐसे मुनिराज महाराज ! आपकी (दिवस-सबधी) अविनय आशातना की हो, तो हे मुनिराज! मेरा अपराध बार-बार क्षमा करिये। हाथ जोड . वदना करता हूँ।

"तिक्खुत्तो मत्थएण वदामि"

सुभाषित

अनत चौवीसी जिन नमू, सिद्ध अनता कोड।
केवल ज्ञानी गणधरा, वदू युग कर जोड।।
दो करोड केवल धरा, विहरमान जिन बीस।
सहस्र युगल कोटि तथा, साधु नमू निश-दीस।।
धन-धन साधु-साध्वी, धन-धन है जिन धर्म।
जो सुमरण - पालन करे, टूटे आठो कर्म।।
अरिहत सिद्ध समरू सदा, आचारज-उपाध्याय।
साधु सकल के चरण को, वदू शीश नमाय।।
अगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वाछित फल दातार।।
गुरु गोबिंद दोनो खडे, किसके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविद दिया बताय।।

क्षमा का पाठ

'आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल गणे अ।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि।।१।।

सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥२॥
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्म-निहिय-नियचित्तो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥३॥'

"खामेमि सव्वे जीवा,
सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु,
वेरं मज्झ ण केणई ॥४॥
एवमहं आलोइय-
निंदिय-गरिहिय-दुगुंछिय सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो,
वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥५॥

श्रावक-श्राविकाओं को खमाने का पाठ

अढाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र में श्रावक-श्राविका दान देते हैं, शील पालते हैं, तपस्या करते हैं, शुद्ध भावना भाते हैं, संवर करते हैं, पौषध करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं, तीन मनोरथ चिंतवते हैं, चौदह नियम चितारते हैं, जीवादि नव पदार्थ जानते हैं, श्रावक के इक्कीस गुणों से युक्त, एक व्रतधारी यावत् बारह व्रतधारी, भगवान की आज्ञा में विचरते हैं-- ऐसे बड़ों से हाथ जोड़, पैरों में पड़ करके क्षमा मांगता हूँ, आप क्षमा करें, आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सबसे समुच्चय क्षमा मांगता हूँ ।

जीवयोनि को खमाने का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेजस्काय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय,

चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख द्वीद्रिय, दो लाख त्रीद्रिय, दो लाख चतुरिद्रिय चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पचेद्रिय, चार लाख देवता, चौदह लाख मनुष्य-- ऐसे चार गति मे, चौरासी लाख जीव-योनि के सूक्ष्म-बादर, अपर्याप्त-पर्याप्त जीवो मे से किसी भी जीव का हिलते-चलते, उठते-बैठते, सोते-जागते हनन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, तो अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ वीस (१८,२४,१२०) प्रकार से तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पंचमं काउस्सग्ग-अज्झयणं

काउस्सग्ग-ठवणा-सुत्तं

(कायोत्सर्ग-स्थापना सूत्र)

'देवसिय पायच्छित्त-विसोहणत्थ करेमि काउस्सग्ग ।'[1]

छट्ठं पच्चक्खाण-अज्झयणं

समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गठिसहिय, मुट्ठिसहिय, नमुक्कारसहिय, पोरिसि, साड्ढ-पोरिसि (अपनी-अपनी इच्छा अनुसार) तिविह पि चउव्विह पि आहार असण-पाण-खाइम-साइम (अपनी-अपनी धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण) अन्नत्थणाभोगेण , सहसागारेण , पच्छन्नकालेण, दिसामोहेणं, साहुवयणेण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरह (वोसिरामि) ।



१ इसके अतिरिक्त इस अध्ययन के अन्तर्गत कही जाने वाली (नमस्कार मत्र, करेमि भते, इच्छामि ठामि काउस्सग्ग , तस्सउत्तरी, लोगस्स एव इच्छामि खमासमणो की) पाटिया पहले आ चुकी हैं ।

अन्तिम पाठ

छह आवश्यक मे अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते-अजानते कोई दोष लगा हो तथा पाठ-उच्चारण करते समय काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ न्यूनाधिक विपरीत कहने मे आया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण--- इन पाच प्रतिक्रमण मे से कोई प्रतिक्रमण न किया हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

भूतकाल (गये काल) का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की सामायिक एव भविष्य (आते) काल का पच्चक्खाण—ये तीनो जो स्वय करते हैं, दूसरो से करवाते है, करते हुओ को भला मानते है, वे धन्य है ।

सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था—ये पाच व्यवहार-सम्यक्त्व के लक्षण है । इनको मैं धारण करता हूँ । देव अरिहत, गुरु निर्ग्रंथ, केवलिभापित दयामय धर्म – ये तीन तत्त्व सार है तथा ससार असार है । हे अरिहत भगवन् ! आप का बताया मार्ग ही 'सच्च-सच्च' (सत्य है) ।

थवथुइमगल ।[1]

---

१. यह 'नमोत्थुण' की पाटी का शीर्षक है । इसके वाद दो वार 'नमोत्थुण' वोला जाता है ।

परिशिष्ट

९९ अतिचार (मूल)

(कायोत्सर्ग के लिए)

※ ज वाइद्ध, वच्चामेलिय, हीणक्खर, अच्चक्खर, पयहीण, विणयहीण, जोगहीण, घोसहीण, सुट्ठुऽदिण्ण, दुट्ठुपडिच्छिय, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झाइय, सज्झाइए न सज्झाइय नाणस्स अइयारे आलोएमि ।

※ सका,कखा, वितिगिच्छा, परपासड-पससा, परपासड-सथवो दसणस्स अइयारे आलोएमि ।

※ वधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणविच्छेए पढमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।

※ सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदार-मतभेए,मोसोवएसे कूडलेहकरणे बीयस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।

※ तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूड-तुल्ल-कूडमाणे, तप्पडिरूवग-ववहारे तइयस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।

※ इत्तरिय-परिग्गहिया-गमणे, अपरिग्गहिया-गमणे, अनग-कीडा, पर-विवाह-करणे, कामभोग-तिव्वाभिलासे चउत्थस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।

※ खेत्त-वत्थु-प्पमाणाइक्कमे, हिरण्ण-सुवण्ण-प्पमाणाइक्कमे, धण-धण्ण-प्पमाणाइक्कमे, दुपय-चउप्पय-प्पमाणाइक्कमे, कुविय-प्पमाणाइक्कमे पचमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।

※ उड्ढदिसि-प्पमाणाइक्कमे, अहोदिसि-प्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसि-प्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइ-अतरद्धा छट्ठस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।

* सचित्ताहारे, सचित्त-पडिबद्धाहारे, अप्पउलि-ओसहि-भक्खणया, दुप्पउलि-ओसहि-भक्खणया, तुच्छोसहि-भक्खणया सत्तमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि । इगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, जत-पीलण-कम्मे, निल्लछण-कम्मे, दवग्गिदावणया, सर-दह-तलाय-सोसणया, असई-जण-पोसणया पण्णरस कम्मादाणे आलोएमि ।
* कदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, सजुत्ताहिगरणे, उवभोग-परिभोग-अइरित्ते अट्ठमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।
* मण-दुप्पणिहाणे, वय-दुप्पणिहाणे, काय-दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ - अकरणया, सामाइयस्स - अणवट्ठियस्स-करणया नवमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।
* आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, वहिया-पुग्गल-पक्खेवे दसमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।
* अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय - सेज्जासथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय - सेज्जासथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-पासवण-भूमि, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-उच्चार-पासवणभूमि, पोसहस्स-सम्म - अणणुपालणया एकारसमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।
* सचित्त-निक्खेवणया, सचित्त-पिहणया, कालाइक्कमे, परोवएसे, मच्छरियाए दुवालसमस्स वयस्स अइयारे आलोएमि ।
* इहलोगा-ससप्पओगे, परलोगा-ससप्पओगे,जीविया-ससप्पओगे, मरणा-ससप्पओगे, कामभोगा-ससप्पओगे तवस्स अइयारे आलोएमि ।

❋ पाणाइवाए, मोसावाए, अदिण्णादाणे, मेहुणे, परिग्गहे, कोहे, माणे, माए, लोहे, रागे, दोसे, कलहे, अब्भक्खाणे, पेसुण्णे, पर-परिवाए, रइ-अरइ, मायामोसे, मिच्छादसण-सल्ले अट्ठारस्स पावट्ठाणे आलोएमि ।

❋ इच्छामि आलोइउ जो मे देवसिओ अइयारो कओ
सावग-धम्मस्स ज खडिय, ज विराहिय ।

❋ णमो अरिहताण णमो लोए सव्व साहूण ।



अतिचारों का अर्थ-पाठ

१. ज्ञानातिचार

१ सूत्र, अर्थ एव सूत्रार्थ (तदुभय) रूप आगम-ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—आगे-पीछे बोला हो, बिना उपयोग से दो बार बोला हो, एक अक्षर भी कम बोला हो, एक अक्षर भी अधिक बोला हो, पद कम बोला हो, विनय-हीन बोला हो, योग-हीन बोला हो, घोष-हीन बोला हो, विनयवान को ज्ञान नही दिया हो, अविनयी को ज्ञान दिया हो अथवा अविनयी से ज्ञान लिया हो, अकाल मे स्वाध्याय किया हो, काल मे स्वाध्याय नही किया हो, अस्वाध्याय मे स्वाध्याय किया हो, स्वाध्याय मे स्वाध्याय नही किया हो, भणते,गुणते, विचारते ज्ञान और ज्ञानवत पुरुषो की अविनय-आशातना की हो तथा कोई अतिचार लगा हो, तो दिवस सबधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

२. दर्शनातिचार

२ तत्त्वार्थ-रुचि एव तत्त्वार्थ-निश्चय रूप सम्यग्दर्शन के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—श्रीजिन-

वचन मे शका की हो, परदर्शन की आकाक्षा की हो, धर्म-फल मे सदेह किया हो, पर-पाखड की प्रशसा की हो, पर-पाखड का परिचय किया हो, मेरे सम्यक्त्व-रूप रत्न पर मिथ्यात्व रूपी रज-मैल लगा हो तथा कोई अतिचार लगा हो, तो दिवस सबधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

व्रतातिचार

३ पहले **स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत** के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—रोषवश गाढा बंधन बाधा हो, गाढा घाव घाला हो, अवयव (चाम आदि) का छेद किया हो, अधिक भार भरा हो, भात-पानी का विच्छेद किया हो (खाने-पीने मे रुकावट डाली हो), इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो दिवस सबधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

४ दूसरे **स्थूल मृषावाद विरमण व्रत** के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—सहसाकार से (विना सोचे-समझे) किसी के प्रति कूडा आल (झूठा दोष) दिया हो, एकात मे गुप्त बातचीत (आदि) करते हुए व्यक्तियो पर झूठा आरोप लगाया हो, अपनी स्त्री (आदि) के मर्म (गुप्त वातचीत) प्रकाशित किये हो, मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, कूडा (झूठा) लेख (आदि) लिखा हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो दिवस सवधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

५ तीसरे **स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत** के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—चोर की चुराई वस्तु ली हो, चोर को सहायता (आदि) दी हो, राज्य-विरुद्ध काम किया हो, कूडा (खोटा) तोल कूडा माप किया हो, वस्तु

मे भेल-सभेल (श्रादि) की हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो दिवस सबधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

६ चौथे **स्थूल**—स्वदार सतोष, परदार-विवर्जन-रूप— **मैथुन विरमण व्रत** के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—इत्वर परिगृहीता से गमन किया हो, अपरिगृहीता से गमन किया हो, अनग क्रीडा की हो, पराये का विवाह-नाता कराया हो, कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो; इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो दिवस-सबधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

७ पाचवे **स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत** के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—क्षेत्र (खेत) वास्तु (मकानादि) के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, हिरण्य (चादी) सुवर्ण (सोना) के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, धन-धान्य के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, दोपद (दासी-दास) चौपद (हाथी-घोडा आदि) के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, कुप्य धातु के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो दिवस सबधी तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

८. छठे दिशिव्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—ऊची दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, नीची दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, तिरछी दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, क्षेत्र बढाया हो, क्षेत्र-परिमाण के भूल जाने से पथ का सन्देह पडने पर आगे चला हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

९ सातवा उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—(भोजन की अपेक्षा मे) पच्चक्खाण (मर्यादा) के उपरात सचित्त का आहार किया हो, सचित्त प्रतिवद्ध (सचित्त से लगे हुए अचित्त) का आहार किया हो, अपक्व (अचित्त न वने हुए) का आहार किया हो, दुष्पक्व (अधपके या अविधि से पके) का आहार किया हो, तुच्छ औषधि (अल्पसार वाले) का आहार किया हो, तथा (कर्म की अपेक्षा से) पन्द्रह कर्मादान, जो जानने योग्य हैं किन्तु आचरण-योग्य नही है, उनके विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—अगार का कर्म (उत्पादन तथा विक्रय) किया हो, वन का कर्म (छेदन तथा विक्रय) किया हो, शकट (गाडी) का कर्म (वाहन, निर्माण तथा विक्रय) किया हो, भाडे का कर्म किया हो, (भूमि को) फोडने का कर्म किया हो, दात आदि का वाणिज्य (क्रय-विक्रय) किया हो, लाख आदि का वाणिज्य किया हो, रस (मद्यादि) का वाणिज्य किया हो, विष आदि का वाणिज्य किया हो, केश वाले प्राणियो का वाणिज्य किया हो, यन्त्रो से पीलने आदि का कर्म किया हो, नपुसक वनाने का कर्म किया हो, वन आदि मे आग लगाई हो, सरोवर (स्वत निर्मित) द्रह (दहड) तालाव (कृत्रिम जलाशय) आदि सुखाये हो, (व्यापार के निमित्त) वेश्या आदि (असत् कार्य करने वालो) का पोषण किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१०. आठवें अनर्थदण्ड विरमण व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ— कामविकार पैदा करने वाली (या वढाने वाली) कथा की हो, भड (के जैसे) कुचेष्टा की

हो, मुखरी (निरर्थक) वचन बोला हो, अधिकरण (हिंसा के साधन) जोड रखा हो, उपभोग-परिभोग (के द्रव्य) अधिक वढाया हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

११ नवे सामायिक व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—मन के अशुभ योग प्रवर्ताये हो, वचन के अशुभ योग प्रवर्ताये हो, काय के अशुभ योग प्रवर्ताये हो, सामायिक की स्मृति (कब ली ? आदि) न की हो, समय पूर्ण हुए विना सामायिक पारी हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१२ दसवें देशावकाशिक व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ – नियमित सीमा से बाहर की वस्तु मगवाई हो, (नौकर आदि से) भिजवाई हो, (खासी आदि) शब्द करके चेताया हो, रूप (या अगुली आदि) दिखाकर अपने भाव प्रकट किये हो, ककर आदि (बाहर) फैंक कर दूसरो को बुलाया हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१३ ग्यारहवे प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—पौषध मे शय्या-सथारा न देखा (प्रतिलेखा) हो या अच्छी तरह से (विधिपूर्वक) न देखा हो, पूजा न हो या अच्छी तरह से न पूजा हो, उच्चार-प्रस्रवण (परिठवने) की भूमि न देखी हो या अच्छी तरह से न देखी हो पूजी न हो या अच्छी तरह से न पूजी हो, उपवासयुक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

१४ बारहवें अतिथि-सविभाग व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—अचित्त (अशनादि) वस्तु सचित्त (जलादि) पर रखी हो, अचित्त वस्तु सचित्त से ढकी हो, साधुओ को भिक्षा देने का समय टाल दिया हो, स्वय सूझता (शुद्ध) होते हुए भी दूसरो से दान दिलाया हो, मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो, इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

तप-अतिचार

१५ सलेखना के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउ—इस (मनुष्य) लोक के चक्रवर्ती आदि के सुखो की इच्छा की हो, पर (मनुष्येतर देव) लोक के इन्द्रादि के सुखो की इच्छा की हो, (कीर्ति आदि देख कर) बहुत काल जीने की इच्छा की हो, (अपयश से घबराकर) शीघ्र मरने की इच्छा की हो, काम भोगो की तीव्र इच्छा की हो; इन अतिचारो मे से मुझे जो कोई अतिचार लगा हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

अतिचारो का समुच्चय-पाठ

इस प्रकार १४ ज्ञान के, ५ दर्शन (सम्यक्त्व)के, ६० बारह व्रतो के, १५ कर्मादानो के [कुल ७५ चारित्र के] और ५ सलेखना (तप) के, इन ९९ अतिचारो मे से किसी अतिचार का जानते-अजानते, मन-वचन-काय से सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, तो अनत सिद्धो की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पाप-प्रतिक्रमण-पाठ

अठारह पाप-स्थान आलोउ—प्राणातिपात (हिंसा), मृषा-वाद (झूठ) अदत्तादान (चोरी), मैथुन (अब्रह्मचर्य), परिग्रह,

क्रोध, मान, माया (कपट), लोभ, राग (प्रेम या दोस्ती), द्वेष (वैर), कलह (क्लेश या झगडा), अभ्याख्यान (कलक लगाना), पैशुन्य (चुगली खाना), परपरिवाद (दूसरो की निंदा करना), रति-अरति (राजी होना एव नाराज होना), माया मृषावाद (कपट सहित झूठ बोलना), मिथ्यादर्शन शल्य (अयथार्थ विश्वास रखना— इन अठारह प्रकार के पापो मे से किसी का सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए को भला जाना हो, तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स दुब्भासिय-दुच्चिंतिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयतो पडिक्कमामि ।

तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तास्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए, तिविहेण पडिक्कतो वदामि जिणे चउवीस ।

प्रतिक्रमण की विधि

धर्म-स्थान, पौषधशाला या किसी भी निरवद्य-स्थान मे सर्वप्रथम विधिपूर्वक सामायिक करना । फिर आसन पर खड़े होकर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मु ह करके या विराजित गुरु महाराज को तिक्खुत्तो के पाठ से विधि सहित तीन बार वदना करके क्षेत्र-विशुद्धि हेतु चउवीसत्थव की आज्ञा लेकर 'चउवीसत्थव' करना । 'चउवीसत्थव' मे सर्वप्रथम 'इच्छा-कारेण' एव 'तस्स-उत्तरी' का पाठ बोलकर सविधि कायोत्सर्ग करना (कायोत्सर्ग मे 'इच्छाकारेण' का पाठ एक बार मन मे कहना, अन्त मे 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' के स्थान पर 'तस्स

आलोउ' कहना एव नवकार मत्र के पाच पद भी मन मे कहना), फिर 'नमो अरिहताण' ऐसा प्रकट उच्चारण मे कहकर कायोत्सर्ग पारना। वाद मे 'कायोत्सर्ग मे आर्तध्यान-रौद्रध्यान ध्याया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ऐसा कहना। फिर 'लोगस्स' का पाठ कहकर दो वार 'नमोत्थुण' का पाठ वोलना।

विधि-पूर्वक 'तिक्खुत्तो' के पाठ से तीन वार वदना करके 'देवसिय[1] प्रतिक्रमण करने की आज्ञा है' ऐसा कहकर 'इच्छामि ण भते' का पाठ कहना। फिर विधि-पूर्वक वदना करके 'पहले सामायिक आवश्यक की आज्ञा है' ऐसा कहकर 'नवकार मत्र', 'करेमि भते ', 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग' एव 'तस्स उत्तरी' का पाठ कहते हुए विधि-पूर्वक कायोत्सर्ग करना। कायोत्सर्ग मे अतिचार-चितन हेतु निन्यानवे अतिचार एव अट्ठारह पाप का पाठ कहते हुए 'इच्छामि आलोइउ जो मे ' का पाठ (ज खडिय-ज विराहिय तक) एव नवकार मत्र कहना। विधि-पूर्वक कायोत्सर्ग पारना।

सविधि वदना करके 'दूसरे चउवीसत्थव आवश्यक की आज्ञा है' ऐसा कहकर 'लोगस्स' का पाठ कहना।

सविधि वदना के पश्चात् 'तीसरे वदन आवश्यक की आज्ञा है' ऐसा कहकर 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ विधि-सहित दो वार कहना।[2]

---

१ रात्रि-सवधी प्रतिक्रमण मे 'राइय', पाक्षिक प्रतिक्रमण मे 'पक्खिय', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे 'चउमासिय' एव सावत्सरिक प्रतिक्रमण मे 'सवच्छरिय' ऐसा कहें।

२ गुरु के समक्ष या पूर्व, उत्तर या ईशान कोण मे अपने आसन को

सविधि वदना करके 'चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक की आज्ञा है', ऐसा कहना एव खडे होकर (शक्ति न हो तो बाया घुटना ऊचा रख कर, बैठकर) 'आगमे तिविहे .. ' से लेकर 'सलेखना के विषय ' तक पन्द्रह पाठ (९९ अतिचारो का अर्थ रूप पाठ) कहना। फिर 'समुच्चय-पाठ', 'अठारह पाप-स्थान' का पाठ एव 'इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे ' का पाठ कहते

छोड कर, खडे रह कर, हाथ जोडकर और शीश झुकाकर 'निसीहि' तक पाठ पढे। यदि गुरुदेव हो, तो 'निसीहि' उच्चारण के साथ उनकी चारो ओर की देह प्रमाण (३॥ हाथ) भूमि मे प्रवेश करें। फिर दोनो घुटनो के वल वैठ कर, दोनो घुटनो के वीच, दोनो हाथ जोडे। यो गर्भस्थ शिशु के समान विनीत वज्रासन से वैठकर 'अ' का उच्चारण मद स्वर से करते हुए दोनो हाथो को लवा करके—गुरुचरणो को क्लामना न पहुँचे—इस प्रकार, विवेक से गुरुचरणो का स्पर्श करें। यदि गुरुदेव न हो, तो चरण-स्पर्श की भावना करते हुए भूमिस्पर्श करें। फिर 'हो' का उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए दोनो हाथो से अपने शिर का स्पर्श करें। 'का'—'य' तथा 'का'—'य' मे भी इसी क्रम व विधि से चरण व शिर का स्पर्श करे। 'सफास' कहते हुए गुरुचरणो मे मस्तक का भी स्पर्श करें। इस प्रकार तीन आवर्तन और एक शिर का झुकाव हुआ। इसके वाद 'खमणिज्जो' से 'दिवसो वइक्कतो' तक का पाठ सामान्यतया पढें। फिर 'ज-त्ता-भे' 'ज-व-णि' 'ज्ज-च-भे'—इन तीन अक्षर-समूह मे से पहले-पहले अक्षर का मद स्वर से उच्चारण करते हुए गुरु-चरण-स्पर्श करें। दूसरे-दूसरे अक्षर का मध्यम स्वर से उच्चारण करते हुए हाथो को भूमि तथा शिर के बहुमध्य मे पल भर रोकें। फिर तीसरे-तीसरे अक्षर का उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए स्वय का

हुए 'तस्स सव्वस्स' का पाठ कहना। बाद मे सविधि वदना करके 'श्रावक सूत्र की आज्ञा है' ऐसा कहकर आसन पर बैठ कर दाहिना घुटना ऊचा रखना एव 'नवकार मत्र', 'करेमि भते', 'चत्तारि मगल', 'इच्छामि पडिक्कमिउ', 'इच्छाकारेण', 'आगमे तिविहे', 'अरिहतो महदेवो' एव अतिचार सहित बारह व्रतो के पाठ कहना। फिर पालकी लगाकर बैठना। एव 'बडी सलेखना' का पाठ कहना। फिर 'अठारह पाप-स्थान' एव 'इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे ' का पाठ कह कर खडे होना तथा हाथ जोडकर 'तस्स धम्मस्स' का पाठ कहना। सविधि 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ दो बार कहकर 'भाव-वदना की आज्ञा है' ऐसा कहते हुए पचाग नमाकर 'नवकार मत्र' कहते हुए 'पाँच पदो की वदना' कहना। फिर पालकी लगाकर बैठना एव 'अनत चौबीसी' आदि दोहे, 'आयरिय उवज्झाए', अढाई द्वीप', 'चौरासी लाख जीव-योनि' एव 'खामेमि सव्वे जीवा' का पाठ कहकर 'अठारह पाप-स्थान' का पाठ कहना।

शिर-स्पर्श करें। पश्चात् गुरु के चरणो मे मस्तक झुकावें। यो दूसरे तीन आवतन और एक शिर का झुकाव हुआ। उसके बाद 'खामेमि' से पडिक्कमामि' तक का पाठ सामान्यतया पढें। 'आवस्सियाए' कहने के साथ ही खडे हो जाए और गुरु की भूमि मे प्रवेश किए हुए हो, तो बाहर निकल जावें। एव आगे का सारा पाठ सामान्यतया पढे ।

दूसरी बार भी इसी प्रकार पढे । अतर यही है कि दूसरी बार मे 'आवस्सियाए' इतना पाठ न पढे । खडे न हो, तथा बाहर भी न निकले ।

दोनो खमासमणो मे सब आवर्तन बारह, शिर झुकाव चार, प्रवेश दो, और निकलना एक बार होता है।

सविधि वन्दना करके 'पाचवे काउस्सग्ग आवश्यक की आज्ञा है, ऐसा कहकर 'देवसिय पायच्छित्त ' का पाठ,'नवकार मत्र' 'करेमि भते', 'इच्छामि ठामि काउस्सग्ग जो मे ' एव 'तस्स उत्तरी' का पाठ कहते हुए सविधि कायोत्सर्ग करना। कायोत्सर्ग मे 'लोगस्स[1]' का पाठ एव 'नवकार मत्र' मन मे कहना। फिर सविधि कायोत्सर्ग पार कर प्रकट मे 'लोगस्स' का पाठ कहना एव विधि-सहित दो बार 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ कहना।

सविधि वदना करके "सामायिक एक, चउवीसत्थव दो, वन्दना तीन, प्रतिक्रमण चार, काउस्सग्ग पाच, पाच आवश्यक समाप्त हुए, छट्ठे पच्चक्खाण आवश्यक की आज्ञा है", ऐसा कहकर शक्ति के अनुसार 'पच्चक्खाण' करना[2]।

पच्चक्खाण के बाद 'सामायिक एक, चउवीसत्थव दो, वदना तीन, प्रतिक्रमण चार,काउस्सग्ग पाच,पच्चक्खाण छह-- ये छह आवश्यक समाप्त हुए' ऐसा कहकर 'अतिम पाठ' कहते हुए विधि-सहित दो बार 'नमोत्थुण' का पाठ कहना। गुरु-महाराज को तीन बार सविधि वदना करना एव उपस्थित स्वधर्मी भाइयो से अत करण से क्षमायाचना करना।

---

१ राइय, देवसिय, पक्खिय, चोमासिय, एव सवच्छरिय प्रतिक्रमण मे क्रमश २, ४, ८, १२ एव १६ लोगस्स का पाठ कहना (चितन करना) चाहिए।

२ साधु-महाराज हो तो उनसे (श्राविकाएँ साध्वी जी से) अन्यथा वडे श्रावकजी (बडी श्राविका) से या स्वय ही प्रत्याख्यान के पाठ से पच्चक्खाण करना।

प्रतिक्रमण का महत्व

निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध निरजन-निराकार व अनत ज्ञान-अनतदर्शन आदि आठ मूल गुणो का धारी है, परन्तु ये मूल गुण तब तक प्रकट नही होते जव तक आत्मा ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मो से लिप्त रहती है। इन आठ कर्मों का क्षय करने के लिये आत्मा को रत्नत्रय (सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र)की आराधना करनी पडती है। आरावना (साधना) काल मे प्रमाद-वश भूल हो जाना स्वाभाविक है। भूल एव त्रुटियो का पश्चात्ताप करना ही प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण से साधक अपनी भूलो का परिमार्जन करते हुए भविष्य मे उनकी पुनरावृत्ति न होने पाये – ऐसा सकल्प करता है। अत आत्म-साधक के लिए प्रतिक्रमण करना अनिवार्य है। प्रतिक्रमण के द्वारा वह अपने साधना-मार्ग मे सावधान हो जाता है और उसकी प्रगति निरतर अबाध-गति से होती रहती है। प्रतिक्रमण आत्म-शुद्धि का मूल कारण है। इससे साधना मे निर्मलता आती है और साधक पथ-भ्रष्ट होने नही पाता। ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र मे तो यहा तक वर्णन आता है कि "शुद्ध मन से ध्यान-पूर्वक प्रात व सायकाल प्रतिक्रमण करते रहने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।"

सूयगडं

छट्ठं अज्झयणं

वीरत्थुइ

पुच्छिसु ण समणा माहणा य,
अगारिणो या पर-तित्थिया य ।
से केइ - णेगतहिय - धम्ममाहु,
अणेलिस साहु—समिक्खयाए ।।१।।

कह च णाण कह दसण से,
सील कह नाय-सुतस्स आसी ।
जाणासि ण भिक्खु ! जहातहेण,
अहासुत बूहि जहा णिसत ।।२।।

खेयण्णए से कुसले महेसी,
अणतनाणी य अणतदसी ।
जससिणो चक्खुपहे ठियस्स,
जाणाहि धम्म च धिइ च पेह ।।३।।

उड्ढ अहे य तिरिय दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्च-णिच्चेहि समिक्ख पण्णे,
दीवे व धम्म समिय उदाहु ।।४।।

से सव्वदसी अभिभूय णाणी,
निरामगधे धिइम ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्व - जगसि विज्ज,
गथा अतीते अभए अणाऊ ।।५।।

से भूइपण्णे अणिए अचारी,
ओहतरे धीर अणत - चक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सूरिए वा,
वइरोयणिंदे व तम पगासे ॥६॥

अणुत्तर धम्ममिण जिणाण,
नेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इदे व देवाण महाणुभावे,
सहस्स नेता दिवि ण विसिट्ठे ॥७॥

से पण्णया अक्खय-सागरे वा,
महोदही वा वि अणत-पारे ।
अणाइले वा अकसाइ मुक्के,
सक्के व देवाहिवई जुईम ॥८॥

से वीरिएण पडिपुण्ण-वीरिए,
सुदसणे वा णग-सव्व-सेट्ठे ।
सुरालए वा सि मुदागरे से,
विरायए णेग-गुणोववेए ॥९॥

सय सहस्साण उ जोयणाण,
तिगडगे पडग - वेजयते ।
से जोयणे णव-णवते सहस्से,
उड्ढुस्सिओ हेट्ठ सहस्समेग ॥१०॥

पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमि-वट्ठिए,
ज सूरिया अणु-परिवट्टयति ।
से हेमवण्णे वहुनदणे य,
जसी रतिं वेदयती महिंदा ॥११॥

से पव्वए सद्द - महप्पगासे,
विरायती कचरा-मट्ठ-वण्णे ।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्व-दुग्गे,
गिरीवरे से जलिए व भोमे ।।१२।।

महीइ मज्झमि ठिए णगिंदे,
पण्णायत्ते सूरिय - सुद्ध - लेसे ।
एव सिरीए उ स भूरि-वण्णे,
मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ।।१३।।

सुदसणस्से व जसो गिरिस्स,
पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नाय - पुत्ते,
जाई-जसो-दसण-णाण-सीले ।।१४।।

गिरीवरे वा निसहाऽऽययाण,
रुयए व सेट्ठे वलयायताण ।
तओवमे से जग - भूइ - पण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ।।१५।।

अणुत्तर धम्ममुईरइत्ता,
अणुत्तर झाणवर झियाई ।
सुसुक्क - सुक्क अपगड - सुक्क,
सखिदु - एगतवदात - सुक्क ।।१६।।

अणुत्तरग्ग परम महेसी,
असेस-कम्म स विसोहइत्ता ।
सिद्धि गइ साइमणत पत्ते,
नाणेण सीलेण य दसणेण ।।१७।।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा,
जसी रति वेदयती सुवण्णा ।
वणेसु वा नदणमाहु सेट्ठ,
नाणेण सीलेण य भूइण्णे ।।१८।।

थणिय व सद्दाण अणुत्तरे उ,
चदो व ताराण महाणुभावे ।
गधेसु वा चदणमाहु सेट्ठ,
एव मुणीण अपडिण्णमाहु ।।१९।।

जहा सयभू उदहीण सेट्ठे,
नागेसु वा धरणिदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रस - वेजयते,
तवोवहाणे मुणि - वेजयते ।।२०।।

हत्थीसु एरावणमाहु णाए,
सीहो मियाण सलिलाण गगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे,
निव्वाणवादीणिह नायपुत्ते ।।२१।।

जोहेसु णाए जह वीससेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दत्त-वक्के,
इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ।।२२।।

दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण,
सच्चेसु वा अणवज्ज वयन्ति ।
तवेसु वा उत्तम - बभचेर,
लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ।।२३।।

ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा ।
निव्वाण-सेट्ठा जह सव्व-धम्मा,
ण नायपुत्ता परमत्थि णाणी ॥२४॥
पुढोवमे धुणइ विगयगेही,
न सण्णिहि कुव्वइ आसुपण्णे ।
तरिउ समुद्द व महाभवोघ,
अभयकरे वीर अणतचक्खू ॥२५॥
कोह च माण च तहेव माय,
लोभ चउत्थ अज्झत्थ-दोसा ।
एआणि वता अरहा महेसी,
न कुव्वई पाव न कारवेई ॥२६॥
किरियाकिरिय वेणइयाणुवाय,
अण्णाणियाण पडियच्च ठाण ।
से सव्व-वाय इति वेयइत्ता,
उवट्ठिए सजम दीहराय ॥२७॥
से वारिया इत्थि सराइभत्त,
उवहाणव दुक्ख - खयट्ठयाए ।
लोग विदित्ता आर पर च,
सव्व पभू वारिय सव्व-वार ॥२८॥
सोच्चा य धम्म अरिहत-भासिय,
समाहित अट्ठ - पदोवसुद्ध ।
त सद्दहाणा य जणा अणाऊ,
इदेव देवाहिव आगमिस्स ॥२९॥
— त्तिबेमि

॥ छट्ठ 'वीरत्थुइ' अज्झयण ॥

सुहविवागो

(विवागसुयस्स बीओ सुयक्खंधो)

पढमं अज्झयणं : सुबाहू

* तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे, गुणसीलए चेइए। सुहम्मे समोसढे। जंबू जाव पज्जुवासमाणे एव वयासी—जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव संपत्तेण दुहविवागाण अयमट्ठे पण्णत्ते, सुहविवागाण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव संपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ? तए ण से सुहम्मे अणगारे जंबू-अणगार एव वयासी—एव खलु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव संपत्तेण सुहविवागाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा— "सुबाहू भद्दनंदी य, सुजाए य सुवासवे। तहेव जिणदासे य, धणवई य महब्बले ॥ भद्दनंदी महच्चंदे, वरदत्ते तहेव य ॥" जइ ण भंते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव संपत्तेण सुहविवागाण दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स ण भंते ! अज्झयणस्स सुहविवागाण समणेण भगवया महावीरेण जाव संपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

* तए ण से सुहम्मे अणगारे जंबू-अणगार एव वयासी—एव खलु जंबू ! तेण कालेण तेण समएण हत्थिसीसे नाम नयरे होत्था—रिद्धित्थिमियसमिद्धे। तस्स ण हत्थिसीसस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ ण पुप्फकरंडए नाम उज्जाणे होत्था-सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे। तत्थ ण कयवण-मालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था—दिव्वे। तत्थ ण हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तू नाम राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर महिंदसारे। तस्स ण अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणीपामोक्ख देवीसहस्स ओरोहे यावि होत्था। तए ण

सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि वास-भवणंसि सीहं सुमिणे पासइ, जहा मेहस्स जम्मणं तहा भाणियव्वं । तए णं से सुबाहुकुमारे बावत्तरि-कलापंडिए जाव अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

तए णं तं सुबाहुकुमारं अम्मापियरो बावत्तरि-कलापंडियं जाव अलंभोगसमत्थं वा जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो पंच पासायवडेंसगसयाइं कारेंति—अब्भुग्गयमूसियपहसियाइं । एगं च णं महं भवणं कारेंति एवं जहा महब्बलस्स रण्णो, नवरं-पुप्फचूलापामोक्खाणं पंचण्हं रायवर-कन्नग-सयाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति । तहेव पंचसइओ दाओ जाव उप्पिं पासाय-वरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वरतरुणिसंपउत्तेहिं बत्तीसइ-बद्धएहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणे-उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे । परिसा निग्गया । अदीणसत्तू जहा कूणिए तहा निग्गए । सुबाहू वि जहा जमाली तहा रहेण निग्गए जाव धम्मो कहिओ । राया परिसा गया । तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावी-रस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ जाव एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं । जहा णं देवाणु-प्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावई-सत्थवाहप्पभियओ मुंडे भवित्ता अगाराओ अण-गारियं पव्वयंति नो खलु अहं तहा संचाएमि पव्वइत्तए, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं-दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जामि । अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह । तए णं से सुबाहू समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए

पचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइय--दुवालसविह गिहिधम्म पडिव-
ज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव चाउग्घट आसरह दुरुहइ, दुरुहित्ता
जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए।

※ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स
जेट्ठे अतेवासी इदभूई जाव एव वयासी--अहो ण भते ! सुवाहु-
कुमारे इट्ठे-इट्ठरूवे कते-कतरूवे पिए-पियरूवे मणुण्णे-मणुण्णरूवे
मणामे-मणामरूवे सोमे-सोमरूवे सुभगे-सुभगरूवे पियदसणे
सुरूवे। वहुजणस्स वि य ण भते ! सुवाहुकुमारे इट्ठे-इट्ठरूवे
कते-कतरूवे पिए-पियरूवे मणुण्णे-मणुण्णरूवे मणामे-मणामरूवे
सोमे-सोमरूवे सुभगे-सुभगरूवे पियदसणे सुरूवे। साहुजणस्स
वि य ण भते ! सुवाहुकुमारे इट्ठे-इट्ठरूवे कते-कतरूवे पिए-
पियरूवे मणुण्णे-मणुण्णरूवे मणामे-मणामरूवे सोमे-सोमरूवे
सुभगे-सुभगरूवे पियदसणे सुरूवे।

सुवाहुणा भते ! कुमारेण इमा एयारूवा उराला माणु-
स्सिड्ढी किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता ? किण्णा अभिसमण्णा-
गया ? के वा एस आसि पुव्वभवे ? किं नामए वा किं वा
गोएण ? कयरसि वा गामसि वा सण्णिवेससि वा ? किं वा
दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता, कस्स वा तहारूवस्स
समणस्स वा माहणस्स वा अतिए एगमवि आयरिय सुवयण
सोच्चा निसम्म सुवाहुणा कुमारेण इमा एयारूवा उराला
माणुस्सिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ?

"गोयमाइ ! समणे भगव महावीरे भगव गोयम आमतेत्ता
एव वयासी"--एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेण समएण
इहेव जवुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नाम नयरे होत्था--
रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थण हत्थिणाउरे नयरे सुमुहे नाम
गाहावई परिवसइ--अड्ढे। तेण कालेण तेण समएण धम्मघोसा

नाम थेरा जाइसपण्णा जाव पचहिं समणसएहिं सद्धि सपरिवुडा पुव्वाणुपुव्वि चरमाणा गामाणुगाम दूइज्जमाणा जेणेव हत्थिणाउरे नयरे जेणेव सहस्सबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता अहापडिरूव ओग्गह ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरति । तेण कालेण तेण समएण धम्मघोसाण थेराण अतेवासी सुदत्ते नाम अणगारे ओराले घोरे-घोरगुणे-घोरतवस्सी-घोरबभचेरवासी उच्छूढ-सरीरे सक्खित्तविउल-तेयलेस्से मासमासेण खममाणे विहरइ ।

तए ण से सुदत्ते अणगारे मासखमण-पारणगसि पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, जहा गोयमसामी तहेव 'धम्मघोसे थेरे' आपुच्छइ जाव अडमाणे सुमुहस्स गाहावइस्स गिहे अणुप्पविट्ठे । तए ण से सुमुहे गाहावई सुदत्त अणगार एज्ज-माण पासइ-पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ-अब्भुट्ठेत्ता पायवीढाओ पच्चोरुहइ-पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ-ओमुइत्ता एगसाडिय उत्तरासग करेइ-करित्ता सुदत्त अणगार सत्तट्ठ पयाइ पच्चुग्गच्छइ-पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पया-हिण करेइ-करेत्ता वदइ नमसइ वदित्ता नमसित्ता 'जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ-उवागच्छित्ता सयहत्थेण विउलेण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेस्सामीति तुट्ठे पडिला-भेमाणे वि तुट्ठे पडिलाभिए वि तुट्ठे ।

तए ण तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेण दव्व-सुद्धेण 'गाहगसुद्धेण दायगसुद्धेण' तिविहेण तिकरणसुद्धेण सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे ससारे परित्तीकए, मणुस्साउए निबद्धे, गेहसि य से इमाइ पच दिव्वाइ पाउब्भूयाइ, [त जहा— वसुहारा वुट्ठा, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिते, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देवदुदुभीओ, अतरा वि य ण आगाससि 'अहो

दाणे, अहो दाणे' घुट्ठे य ।] हत्थिणाउरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एव आइक्खइ एव भासेइ एव पण्णवेइ एव परूवेइ--धण्णे ण देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई पुण्णे ण देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई एव—कयत्थे ण कयलक्खणे ण सुलद्धे ण सुमुहस्स गाहावइस्स जम्मजीवियफले, जस्स ण इमा एयारूवा उराला माणुस्सिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया । त धण्णे ण देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई पुण्णे ण देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई एव—कयत्थे ण कयलक्खणे ण सुलद्धे ण सुमुहस्स गाहावइस्स जम्मजीवियफले, जस्स ण इमा एयारूवा उराला माणुस्सिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।

तए ण से सुमुहे गाहावई बहूइ वाससयाइ आउय पालेइ, पालइत्ता कालमासे काल किच्चा इहेव हत्थिसीसे नयरे अदीण-सत्तुस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववण्णे । तए ण सा धारिणी देवी सयणिज्जसि सुत्तजागरा ओहीर-माणी-ओहीरमाणी तहेव सीह पासइ, सेस त चेव जाव उप्पि पासाए विहरइ । त एव खलु गोयमा ! सुबाहुणा इमा एयारूवा माणुस्सिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया । पभू ण भते ! सुबाहुकुमारे देवाणुप्पियाण अतिए मु डे भवित्ता अगा-राओ अणगारिय पव्वइत्तए ? हता पभू । तए ण से भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ-नमसइ, वदित्ता-नमसित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ । तए ण समणे भगव महावीरे अण्णया कयाइ हत्थिसीसाओ नयराओ पुप्फकरडय-उज्जाणाओ कयवणमालपिय-जक्खाययणाओ पडिनिक्खमइ-पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहार विहरइ । तए ण से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए-अभिगयजीवाजीवे जाव

पडिलाभेमाणे विहरइ । तए ण से सुवाहुकुमारे अण्णया कयाइ चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ-उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जइ-पमज्जित्ता, उच्चार-पासवण-भूमि पडिलेहेइ-पडिलेहेत्ता,दब्भसथार सथरइ-सथरित्ता दब्भसथार दुरूहइ-दुरूहित्ता अट्ठमभत्त पगिण्हइ-पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए अट्ठमभत्तिए पोसह पडिजागरमाणे विहरइ ।

※ तए ण तस्स सुवाहुस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयसि धम्मजागरिय जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—धण्णा ण ते गामागर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कव्बड-दोणमुह-मडब-पट्टणासम-सबाह-सण्णिवेसा, जत्थ ण समणे भगव महावीरे विहरइ । धण्णा ण ते राईसर-तलवर-माडबिय-कोडु बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभियओ, जे ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मु डा भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयति । धण्णा ण ते राईसर-तलवर-माडबिय-कोडु बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभियओ, जे ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए पचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइय दुवालसविह गिहिधम्म पडिवज्जति । धण्णा ण ते राईसर-तलवर-माडबिय-कोडु बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ - सत्थवाहप्पभियओ, जे ण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सुणेति । त जइ ण समणे भगव महावीरे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे इहमागच्छेज्जा इह समोसरेज्जा इहेव हत्थीसीसस्स नयरस्स बहिया पुप्फकरडय-उज्जाणे कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे अहापडिरूव ओग्गह ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरेज्जा, तए ण अह सम-

से ण तत्थ बहूइ वासाइ सामण्ण पाउरिणहिइ । आलोइय-पडिक्कते समाहिपत्ते कालगए सणकुमारे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिइ । से ण ताओ माणुस्स, पव्वज्जा, बभलोए । माणुस्स, महासुक्के । माणुस्स, आणए । माणुस्स, आरणे । माणुस्स सव्वट्ठसिद्धे । से ण तओ अणतर उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे जाइ कुलाइ भवति अड्ढाइ जहा दढपइण्णे सिज्भिहिइ-बुज्भिहिइ-मुच्चिहिइ-परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमत काहिइ ।

* एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण सुहविवागाण पढमस्स अज्भयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

-त्ति बेमि

बीयं अज्भयणं : भद्दनंदी

* बितियस्स उक्खेवओ । एव खलु जबू ! तेण कालेण तेण समएण उसभपुरे नयरे । थूभकरडग-उज्जाण । धण्णो जक्खो । घणावहो राया । सरस्सई देवी ।

सुमिणदसण कहणा, जम्म बालत्तण कलाओ य ।
जोव्वण पाणिग्गहण, दाओ पासाय भोगा य ।।१।।

जहा सुबाहुस्स, नवर—भद्दनदी कुमारे । सिरिदेवीपामोक्खाण पचसया । सामीसमोसरण । सावगधम्म । पुव्वभवपुच्छा । महाविदेहे वासे पुडरीगिणी नयरी । विजए कुमारे । जुगबाहू तित्थयरे पडिलाभिए । मणुस्साउए निबद्धे । इह उप्पण्णे । सेस जहा सुबाहुस्स जाव महाविदेहे वासे सिज्भिहिइ-बुज्भिहिइ-मुच्चिहिइ-परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमत काहिइ । निक्खेवओ ।

-त्ति बेमि

तच्चं अज्झयणं : सुजाए

※ तच्चस्स उक्खेवग्रो। वीरपुर नयर। मणोरम उज्जाण। वीरकण्हमित्ते राया। सिरी देवी। सुजाए कुमारे। बलसिरी पामोक्खा पचसया। सामीसमोसरण। पुव्वभवपुच्छा। उसुयारे नयरे। उसभदत्ते गाहावई। पुप्फदते अणगारे पडिलाभिए। मणुस्साउए निबद्धे। इह उप्पण्णे जाव महाविदेहे वासे-सिज्झिहिइ-बुज्झिहिइ-मुच्चिहिइ-परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाण मंत काहिइ। निक्खवग्रो।

-त्ति बेमि

चउत्थं अज्झयणं : सुवासवे

※ चउत्थस्स उक्खेवग्रो। विजयपुर नयर। नदणवण उज्जाण। असोगो जक्खो। वासवदत्ते राया। कण्हा देवी। सुवासवे कुमारे। भद्दापामोक्खाण पचसया जाव पुव्वभवे। कोसबी नयरी। धणपाले राया। वेसमणभद्दे अणगारे पडिलाभिए। इह जाव सिद्धे।

-त्ति बेमि

पचम अज्झयणं : जिणदासे

※ पचमस्स उक्खेवग्रो। सोगधिया नयरी। नीलासोग उज्जाण। सुकालो जक्खो। अप्पडिहग्रो राया। सुकण्णा देवी। महचदे कुमारे। तस्स अरहदत्ता भारिया। जिणदासो पुत्ते। तित्थयरागमण। जिणदासो पुव्वभवो। मज्झमिया नयरी। मेहरहे राया। सुधम्मे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

-त्ति बेमि

छट्ठं अज्झयणं धणवई

❀ छट्ठस्स उक्खेवओ। कणगपुर नयर। सेयासोय उज्जाण। वीरभद्दो जक्खो। पियचदो राया। सुभद्दा देवी। वेसमणे कुमारे जुवराया। सिरिदेवीपामोक्खा पचसया। तित्थयरागमण। धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभवो। मणिवइया नयरी। मित्तो राया। सभूतिविजए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

—त्ति बेमि

सत्तमं अज्झयणं : महब्बले

❀ सत्तमस्स उक्खेवओ। महापुर नयर। रत्तासोग उज्जाण। रत्तपाओ जक्खो। बले राया। सुभद्दा देवी। महब्बले कुमारे। रत्तवई-पामोक्खा पचसया। तित्थयरागमण जाव पुव्वभवो। मणिपुर नयर। नागदत्ते गाहावई। इदपुत्ते अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

—त्ति बेमि

अट्ठमं अज्झयण भद्दनंदी

❀ अट्ठमस्स उक्खेवओ। सुघोस नयर। देवरमण उज्जाण। वीरसेणो जक्खो। अज्जुणो राया। तत्तवई देवी। भद्दनदी कुमारे। सिरिदेवीपामोक्खा पचसया जाव पुव्वभवे। महाघोसे नयरे। धम्मघोसे गाहावई। धम्मसीहे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

—त्ति बेमि

नवम अज्झयणं : महच्चंदे

❀ नवमस्स उक्खेवओ। चपा नयरी। पुण्णभद्दे उज्जाणे। पुण्णभद्दे जक्खे। दत्तो राया। रत्तवती देवी। महचदे कुमारे

जुवराया । सिरिकता-पामोक्खा ण पचसया जाव पुव्वभवो । तिगिछी नयरी । जियसत्तू राया । धम्मवीरिए अरणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे ।

—त्ति वेमि

दसमं अज्झयणं : वरदत्ते

※ दसमस्स उक्खेवओ । तेरा कालेण तेरा समएण साएय नाम नयर होत्था । उत्तरकुरु-उज्जाणे । पासामिओ जक्खो । मित्त-नदी राया । सिरिकता देवी । वरदत्ते कुमारे । वरसेरा-पामोक्खा पच देवीसया । तित्थयरागमरा । सावगधम्म । पुव्वभवपुच्छा । सयदुवारे नयरे । विमलवाहरो राया । धम्मरुई अरणगारे पडिलाभिए । मरगुस्साउए निवद्धे । इह उप्पण्णे । सेस जहा सुवाहुस्स कुमारस्स । चिंता जाव पव्वज्जा । कप्प-तरिते जाव सव्वट्ठसिद्धे । तओ महाविदेहे जहा दढपइण्णे जाव सिज्झिहिइ-वुज्झिहिइ-मुच्चिहिइ-परिरिणव्वाहिइ सव्व-दुक्खारामत काहिइ । एव खलु जवू ! समरोरा भगवया महा-वीरेरा जाव सपत्तेरा सुहविवागारा दसमस्स अज्झयरास्स अयमट्ठे पण्णत्ते । सेव भते ! सेव भते !

—त्ति वेमि

दसवेकालियं

पढम अज्झयण

दुमपुप्फिया

धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा-सजमो-तवो ।
देवा वि त नमसति, जस्स धम्मे सया मरो ।।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रस ।
रा य पुप्फ किलामेइ, सो य पीरोइ अप्पय ।।

एमेए समरणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ।।
वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ।।
महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ।।
—त्ति बेमि

॥ पढमं दुमपुप्फियऽज्झयणं ॥



बीयं अज्झयणं

सामण्णपुव्वयं

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ ।।
वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ ।।
जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठि-कुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ ।।
समाइ पेहाइ परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा
न सा महं नो वि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ।।
आयावयाही चय सोगुमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ।।
पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ।।
धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।

ग्रह च भोगरायस्स, त चऽसि ग्रधगवण्हिणो ।
मा कुले गधणा होमो, सजम निहुम्रो चर ।।

जइ त काहिसि भाव, जा जा दच्छसि नारिग्रो ।
वायाइद्धोव्व हडो, ग्रट्ठिग्रप्पा भविस्ससि ।

तीसे सो वयण सोच्चा, सजयाइ सुभासिय ।
ग्रकुसेण जहा नागो, धम्मे सपडिवाडग्रो ।।

एव करेति सबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ।।

-त्ति वेमि

।। वीयं सामण्णपुव्वयऽज्झयणं ।।



तइयं अज्झयणं

खुड्डियायारकहा

सजमे सुट्ठिग्रप्पाण, विप्पमुक्काण ताइण ।
तेसिमेयमणाइण्ण, निग्गथाण महेसिण ।।

उद्देसियं कीयगड, नियाग ग्रभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गध-मल्ले य वीयणे ।।

सन्निही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए ।
सवाहणा दतपहोयणा य, सपुच्छणा देहपलोयणा य ।।

ग्रट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छ पाहणा पाए, समारभ च जोइणो ।।

सेज्जायरपिण्ड च, ग्रासदीपलियकए ।
गिहतरनिसेज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ।।

गिहिणो वेयावडिय, जा य आजीववत्तिया ।
तत्तानिव्वुडभोइत्ता, आउरस्सरणाणि य ।।

मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखडे अनिव्वुडे ।
कदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ।।

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए ।
सामुद्दे पसुखारे य, कालालोणे य आमए ।।

धूवणे त्ति वमणे य, वत्थीकम्म-विरेयणे ।
अजणे दतवणे य, गायब्भग-विभूसणे ।।

सव्वमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिण ।
सजमम्मि य जुत्ताण, लहुभूयविहारिण ।।

पचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छसु सजया ।
पचनिग्गहणा धीरा, निग्गथा उज्जुदसिणो ।।

आयावयति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसलीणा, सजया सुसमाहिया ।।

परीसहरिऊदता, धूयमोहा जिइदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमति महेसिणो ।।

दुक्कराइ करित्ताण, दुस्सहाइ सहित्तु य ।
केइऽत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झति नीरया ।।

खवित्ता पुव्वकम्माइ, सजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिणिव्वुडा ।।

-त्ति बेमि

।। तइय खुड्डियायारकहाज्झयण ।।

चउत्थ अज्झयण

छज्जीवरिणया

※ सुय मे आउस ! तेरण भगवया एवमक्खाय—इह खलु छज्जीवरिणया नामज्झयरण समणेरण भगवया महावीरेरण कासवेरण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेय मे अहिज्जिउ अज्झयरण धम्मपन्नत्ती ॥

※ कयरा खलु सा छज्जीवरिणया नामज्झयरण समणेरण भगवया महावीरेरण कासवेरण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेय मे अहिज्जिउ अज्झयरण धम्मपन्नत्ती ॥

※ इमा खलु सा छज्जीवरिणया नामज्झयरण समरणेरण भगवया महावीरेरण कासवेरण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेय मे अहिज्जिउ अज्झयरण धम्मपन्नत्ती, त जहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वरणस्सइकाइया तसकाइया ॥

※ पुढवी चित्तमतमक्खाया अरणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। आऊ चित्तमतमक्खाया अरणेग-जीवा पुढो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। तेऊ चित्तमतमक्खाया अरणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। वाऊ चित्तामतमक्खाया अरणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। वरणस्सई चित्त-मतमक्खाया अरणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। त जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खधबीया, बीयरुहा, सम्मुच्छिमा, तरणलया वरणस्सइ-काइया, सबीया, चित्तामतम-क्खाया अरणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण ॥

※ से जे पुरण इमे अरणेगे बहवे तसा पारणा त जहा—अडया, पोयया, जराउया, रसया, ससेइमा, सम्मुच्छिमा, उब्भिया,

उववाइया, जेसिं केसिं च पाणाण, अभिक्कत, पडिक्कत, सकुचिय, पसारिय, रुय, भत, तसिय, पलाइय, आगइगइ-विन्नाया—जे य कीडपयगा जा य कुथु-पिवीलिया, सव्वे वेइदिया, सव्वे तेइदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया—एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चई ॥

* इच्चेसि छण्ह जीवनिकायाण नेव सय दड समारभेज्जा, नेवन्नेहिं दड समारभावेज्जा, दड समारभते वि अन्ने न समणु-जाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण मणेण-वायाए-काएण न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

* पढमे भते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमण । सव्व भते ! पाणाइवाय पच्चक्खामि—से सुहुम वा, बायर वा, तस वा, थावर वा, नेव सय पाणे अइवाएज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइ-वायावेज्जा, पाणे अइवायते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण मणेण-वायाए - काएण न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । पढमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण ।

* अहावरे दोच्चे भते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमण । सव्व भते ! मुसावाय पच्चक्खामि—से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, नेव सय मुस वएज्जा, नेवन्नेहिं मुस वायावेज्जा, मुस वयते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-

चउत्थ अज्झयण

छज्जीवरिणया

※ सुय मे आउस! तेरण भगवया एवमक्खाय—इह खलु छज्जीवरिणया नामज्झयरण समणेरण भगवया महावीरेरण कासवेरण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेय मे अहिज्जिउ अज्झयरण धम्मपन्नत्ती ॥

※ कयरा खलु सा छज्जीवरिणया नामज्झयरण समणेरण भगवया महावीरेरण कासवेरण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेय मे अहिज्जिउ अज्झयरण धम्मपन्नत्ती ॥

※ इमा खलु सा छज्जीवरिणया नामज्झयरण समरोरण भगवया महावीरेरण कासवेरण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेय मे अहिज्जिउ अज्झयरणं धम्मपन्नत्ती, त जहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वरणस्सइकाइया तसकाइया ॥

※ पुढवी चित्तमतमक्खाया अरणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। आऊ चित्तमतमक्खाया अरणेग-जीवा पुढो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। तेऊ चित्तमतमक्खाया अरणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। वाऊ चित्तामतमक्खाया अरणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। वरणस्सई चित्त-मतमक्खाया अरणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण। त जहा- अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खधबीया, बीयरुहा, सम्मुच्छिमा, तरणलया वरणस्सइ-काइया, सबीया, चित्तामतम-क्खाया अरणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिरणएरण ॥

※ से जे पुरण इमे अरणेगे बहवे तसा पारणा त जहा—अडया, पोयया, जराउया, रसया, ससेइमा, सम्मुच्छिमा, उब्भिया,

उववाइया, जेसिं केसिं च पाणाण, अभिक्कत, पडिक्कत, सकुचिय, पसारिय, रुय, भत, तसिय, पलाइय, आगइगइ-विन्नाया—जे य कीडपयगा जा य कुथु-पिवीलिया, सव्वे बेइदिया, सव्वे तेइदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया—एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चई ॥

※ इच्चेसिं छण्ह जीवनिकायाण नेव सय दड समारभेज्जा, नेवन्नेहिं दड समारभावेज्जा, दड समारभते वि अन्ने न समणु-जाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण मणेण-वायाए-काएण न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

※ पढमे भते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमण । सव्व भते ! पाणाइवाय पच्चक्खामि—से सुहुम वा, बायर वा, तस वा, थावर वा, नेव सय पाणे अइवाएज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइ-वायावेज्जा, पाणे अइवायते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण मणेण-वायाए - काएण न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । पढमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण ।

※ अहावरे दोच्चे भते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमण । सव्व भते ! मुसावाय पच्चक्खामि—से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, नेव सय मुस वएज्जा, नेवन्नेहिं मुस वायावेज्जा, मुस वयते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-

तिविहेण मणेण-वायाए-काएण, न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । दोच्चे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ।।

※ अहावरे तच्चे भते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमण । सव्व भते ! अदिन्नादाण पच्चक्खामि—से गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा, अप्प वा, बहु वा, अणु वा, थूल वा, चित्तमत वा, अचित्तमत वा, नेव सय अदिन्न गेण्हेज्जा, नेवन्नेहि अदिन्न गेण्हावेज्जा, अदिन्न गेण्हते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण मणेण-वायाए-काएण, न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । तच्चे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमण ।।

※ अहावरे चउत्थे भते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमण । सव्व भते ! मेहुण पच्चक्खामि—से दिव्व वा, माणुस वा, तिरिक्ख-जोणिय वा, नेव सय मेहुण सेवेज्जा, नेवन्नेहि मेहुण सेवावेज्जा मेहुण सेवते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण मणेण-वायाए-काएण, न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । चउत्थे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण ।

※ अहावरे पचमे भते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमण । सव्व भते ! परिग्गह पच्चक्खामि—से गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा, अप्प वा, बहु वा, अणु वा, थूल वा, चित्तामत वा, अचित्तमत वा, नेव सय परिग्गह परिगेण्हेज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गह परि-

गेण्हावेज्जा, परिग्गह परिगेण्हते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण, मणेण-वायाए-काएण, न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । पचमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ।।

※ अहावरे छट्ठे भते ! वए राइभोयणाओ वेरमण । सव्व भते ! राइभोयण पच्चक्खामि—से असण वा, पाण वा, खाइम वा, साइम वा, नेव सय राइ भु जेज्जा, नेवन्नेहिं राइ भु जा-वेज्जा, राइ भु जते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण, मणेण-वायाए-काएण, न करेमि-न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । छट्ठे भते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमण ।।

※ इच्चेयाइ पच महव्वयाइ राइभोयण-वेरमण-छट्ठाइ अत्तहियट्ठयाए उवसपज्जित्ताण विहरामि ।।

※ से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्च-क्खाय-पावकम्मे दिया वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा—से पुढवि वा, भित्ति वा, सिल वा, लेलु वा, ससरक्ख वा काय, ससरक्ख वा वत्थ, हत्थेण वा, पाएण वा, कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अगुलियाए वा, सला-गाए वा, सलागहत्थेण वा, न आलिहेज्जा, न विलिहेज्जा, न घट्टेज्जा, न भिंदेज्जा, अन्न न आलिहावेज्जा, न विलिहा-वेज्जा, न घट्टावेज्जा, न भिंदावेज्जा; अन्न आलिहत वा, विलिहत वा, घट्टत वा, भिंदत वा न समणुजाणेज्जा जावज्जी-

वाए तिविह-तिविहेरग मणेरग-वायाए-काएरग, न करेमि-न कारवेमि-करत पि अन्न न समरगुजारगामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पारग वोसिरामि ।।

* से भिक्खू वा, भिक्खुरगी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा, राओ वा,एगओ वा,परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा—से उदग वा, ओस वा, हिम वा, महिय वा, करग वा, हरितरगुग वा, सुद्धोदग वा, उदओल्ल वा काय, उदओल्ल वा वत्थ, ससिरिगद्ध वा काय, ससिरिगद्ध वा वत्थ; न आमुसेज्जा, न सफुसेज्जा, न आवीलेज्जा, न पवीलेज्जा, न अक्खोडेज्जा, न पक्खोडेज्जा, न आयावेज्जा, न पयावेज्जा; अन्न न आमुसावेज्जा, न सफुसावेज्जा, न आवीलावेज्जा, न पवीलावेज्जा, न अक्खोडावेज्जा, न पक्खो-डावेज्जा, न आयावेज्जा, न पयावेज्जा, अन्न आमुसत वा, सफुसत वा, आवीलत वा, पवीलत वा, अक्खोडत वा, पक्खोडत वा, आयावत वा, पयावत वा न समरगुजारगेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेरग मरगेरग-वायाए-काएरग, न करेमि-न कारवेमि-करत पि अन्न न समरगुजारगामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पारग वोसिरामि ।

* से भिक्खू वा, भिक्खुरगी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्च-क्खाय-पावकम्मे दिया वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमारगे वा—से अगरिग वा, इगाल वा, मुम्मुर वा, अच्चि वा, जाल वा, अलाय वा, सुद्धागरिग वा, उक्क वा, न उजेज्जा, न घट्टेज्जा, न भिदेज्जा, न उज्जालेज्जा, न पज्जा-लेज्जा, न निव्वावेज्जा; अन्न न उजावेज्जा, न घट्टावेज्जा, न भिदावेज्जा,न उज्जालावेज्जा,न पज्जालावेज्जा, न निव्वावेज्जा,

अन्न उजत वा, घट्टत वा, भिदत वा, उज्जालत वा, पज्जालत वा, निव्वावत वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण, मणेण-वायाए-काएण, न करेमि-न कारवेमि-करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

* से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा—से सिएण वा, विहुयणेण वा, तालियटेण वा, पत्तेण वा, पत्तभगेण वा, साहाए वा, साहाभगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा, चेलेण वा चेलकण्णेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा काय, बाहिर वा वि पुग्गल, न फुमेज्जा, न वीएज्जा, अन्न न फुमावेज्जा, न वीयावेज्जा, अन्न फुमत वा, वीयत वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविह-तिविहेणं, मणेण-वायाए-काएण, न करेमि न कारवेमि करत पि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।।

* से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा—से बीएसु वा, वीयपइट्ठिएसु वा, रूढेसु वा, रूढपइट्ठिएसु वा, जाएसु वा, जायपइट्ठिएसु वा, हरिएसु वा, हरियपइट्ठिएसु वा, छिन्नेसु वा, छिन्नपइट्ठिएसु वा, सचित्तेसु वा, सचित्त-कोलपडिनिस्सिएसु वा, न गच्छेज्जा, न चिट्ठेज्जा, न निसीएज्जा, न तुयट्टेज्जा, अन्न न गच्छावेज्जा, न चिट्ठावेज्जा, न निसीयावेज्जा, न तुयट्टावेज्जा, अन्न गच्छत वा, चिट्ठत वा, निसीयत वा, तुयट्टत वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं-तिविहेण, मणेण-वायाए-काएण, न

करेमि- न कारवेमि-करत पि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।।

※ से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा सजय विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा—से कीड वा, पयग वा, कुथु वा, पिवीलिय वा, हत्थसि वा, पायसि वा, बाहुसि वा, उरु सि वा, उदरसि वा, सीससि वा, वत्थसि वा, पडिग्गहसि वा, कबलसि वा, पायपुच्छणसि वा, रयहरणसि वा, गोच्छगसि वा, उडगसि वा, दडगसि वा, पीढगसि वा, फलगंसि वा, सेज्जसि वा, सथारगसि वा, अन्नयरसि वा; तहप्पगारे उवगरणजाए तओ सजयामेव पडिलेहिय-पडिलेहिय पमज्जिय-पमज्जिय एगत-मवणेज्जा नो ण सघायमावज्जेज्जा ।

अजय चरमाणो उ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
बधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फल ।।१।।

अजय चिट्ठमाणो उ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ।।२।।

अजय आसमाणो उ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फल ।।३।।

अजय सयमाणो उ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ।।४।।

अजय भुजमाणो उ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ।।५।।

अजय भासमाणो उ, पाणभूयाइ हिंसइ ।
वधइ पावय कम्म, तं से होइ कडुय फल ।।६।।

कह चरे ? कह चिट्ठे ?, कहमासे ? कह सए ? ।
कह भु जतो-भासतो ?, पाव कम्म न बधइ ।।७।।

जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए ।
जय भु जतो-भासतो, पाव कम्म न बधइ ।।८।।

सव्वभूयप्प-भूयस्स, सम्म भूयाइ पासओ ।
पिहियासवस्स दतस्स, पाव कम्म न बधइ ।।९।।

पढम नाण तओ दया, एव चिट्ठइ सव्वसजए ।
अन्नाणी कि काही ?, कि वा नाहिइ छेय पावग ? ।।१०।।

सोच्चा जाणइ कल्लाण, सोच्चा जाणइ पावग ।
उभय पि जाणइ सोच्चा, ज छेय त समायरे ।।११।।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणइ ।
जीवाजीवे अयाणतो, कह सो नाहिइ सजम ? ।।१२।।

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु नाहिइ सजम ।।१३।।

जया जीवे अजीवे य, दो वि एए वियाणइ ।
तया गइ बहुविह, सव्वजीवाण जाणइ ।।१४।।

जया गइ बहुविह, सव्वजीवाण जाणइ ।
तया पुण्ण च पाव च, बध मोक्ख च जाणइ ।।१५।।

जया पुण्ण च पाव च, बध मोक्ख च जाणइ ।
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।।१६।।

जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ सजोग, सब्भितर - बाहिर ।।१७।।

जया चयइ सजोग, सब्भितर - बाहिर ।
तया मु डे भवित्ताण, पव्वइए अणगारिय ।।१८।।

जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥१९॥

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ॥२०॥

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥२१॥

जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥२३॥

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥२४॥

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोग-मत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥२५॥

सुह-सायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणापहोयस्स, दुलहा सुगइ तारिसगस्स ॥२६॥

तवो-गुण-पहाणस्स, उज्जुमइ-खंति-संजम-रयस्स ।
परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगइ तारिसगस्स ॥२७॥

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर-भवणाइं ।
जेंसि पिओ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं च ॥२८॥

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मदिट्ठी सया जए ।
दुलहं लभित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहेज्जासि ॥२९॥

—त्ति बेमि

॥ चउत्थं छज्जीवणियऽज्झयणं ॥

उत्तरज्झयणाइं

तइयं अज्झयणं

चाउरंगिज्जं

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो ।
माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरिय ।।१।।

समावन्नाण ससारे, नाणागोत्तासु जाइसु ।
कम्मा नाणाविहा कट्टु, पुढो विस्सभिया पया ।।२।।

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया ।
एगया आसुर काय, आहाकम्मेहिं गच्छई ।।३।।

एगया खत्तिओ होइ, तओ चण्डाल-वोक्कसो ।
तओ कीडपयगो य, तओ कुथु-पिवीलिया ।।४।।

एवमावट्ट-जोणीसु, पाणिणो कम्मकिब्बिसा ।
न निविज्जति ससारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ।।५।।

कम्मसगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मति पाणिणो ।।६।।

कम्माण तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययति मणुस्सय ।।७।।

माणुस्स विग्गह लद्धु, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
ज सोच्चा पडिवज्जति, तव खतिमहिसय ।।८।।

आहच्च सवण लद्धु, सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा नेआउय मग्ग, बहवे परिभस्सई ।।९।।

सुइ च लद्धु सद्ध च, वीरिय पुण दुल्लह ।
बहवे रोयमाणा वि, नो एण पडिवज्जए ।।१०।।

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्म सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरिय लद्धु, सवुडे निद्धुणे रय ।।११।।

सोही उज्जुय-भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाण परम जाइ, घयसित्ति व्व पावए ।।१२।।

विगिंच कम्मुणो हेउ, जस सचिणु खतिए ।
पाढव सरीर हिच्चा, उड्ढ पक्कमई दिस ।।१३।।

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरउत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पता, मन्नता अपुणच्चव ।।१४।।

अप्पिया देवकामाण, कामरूव-विउव्विणो ।
उड्ढ कप्पेसु चिट्ठति, पुव्वा वाससया बहू ।।१५।।

तत्थ ठिच्चा जहाठाण, जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेति माणुस जोणि, से दसगेऽभिजायई ।।१६।।

खेत्त वत्थु हिरण्ण च, पसवो दासपोरुस ।
चत्तारि कामखधाणि, तत्थ से उववज्जई ।।१७।।

मित्तव नायव होइ, उच्चागोए य वण्णव ।
अप्पायके महापन्ने, अभिजाए जसोबले ।।१८।।

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउय ।
पुव्वि विसुद्धसद्धम्मे, केवल वोहि बुज्झिया ।।१९।।

चउरग दुल्लह णच्चा, सजम पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मसे, सिद्धे हवइ सासए ।।२०।।

—त्ति बेमि

नवमं अज्झयण
नमिपव्वज्जा

चइऊण देवलोगाश्रो, उववन्नो माणुसम्मि लोगम्मि ।
उवसत मोहणिज्जो, सरई पोराणिय जाइ ।।१।।

जाइ सरित्तु भयव, सहसबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्त ठवेत्तु रज्जे, अभिणिक्खमई नमी राया ।।२।।

सो देवलोगसरिसो, अतेउर-वरगश्रो वरे भोए ।
भु जित्तु नमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ।।३।।

मिहिल सपुर-जणवय, बलमोरोह च परियण सव्व ।
चिच्चा अभिणिक्खतो, एगतमहिट्ठिश्रो भयव ।।४।।

कोलाहलगभूय, श्रासी मिहिलाए पव्वयतम्मि ।
तइया रायरिसिमि, नमिमि अभिणिक्खमतमि ।।५।।

श्रब्भुट्ठिय रायरिसि, पव्वज्जा - ठाणमुत्तम ।
सक्को माहण - रूवेण, इम वयणमब्बवी ।।६।।

किण्णु भो ! अज्ज मिहिलाए, कोलाहलग-सकुला ।
सुव्वति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ? ।।७।।

एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊकारण - चोइश्रो ।
तश्रो नमी रायरिसी, देविन्द इणमब्बवी ।।८।।

मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्तपुप्फ - फलोवेए, बहूण बहुगुणे सया ।।९।।

वाएण हीरमाणमि, चेइयमि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कन्दति भो ! खगा ।।१०।।

एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊकारण-चोइश्रो ।
तश्रो नमि रायरिसि, देविन्दो इणमब्बवी ।।११।।

एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मंदिरं ।
भयवं ! अंतेउरं तेणं, कीस णं नावपेक्खसि ॥१२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी ॥१३॥

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचण ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचण ॥१४॥

चत्तपुत्त-कलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जए ॥१५॥

बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ ॥१६॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥१७॥

पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि च ।
उस्सूलग-सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥१८॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥१९॥

सद्धं नगरं किच्चा, तव-संवर-मग्गलं ।
खंतिं निउण-पागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥२०॥

धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च इरियं सया ।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमंथए ॥२१॥

तव नारायजुत्तेण, भेत्तूण कम्मकंचुयं ।
मुणी विगय-संगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥२२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥२३॥

पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाण-गिहाणि य ।
बालग्ग-पोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥२४॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी ॥२५॥

ससयं खलु सो कुणई, जो मग्गे कुणई घरं ।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासयं ॥२६॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥२७॥

आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे ।
नगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥२८॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्द इणमब्बवी ॥२९॥

असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छा दण्डो पजुंजई ।
अकारिणोऽत्थ बज्झंति, मुच्चई कारओ जणो ॥३०॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ॥३१॥

जे केइ पत्थिवा तुब्भं, नानमंति नराहिवा ! ।
वसे ते ठावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥३२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्द इणमब्बवी ॥३३॥

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥३४॥

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥३५॥

पचिन्दियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं ।।३६।।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ।।३७।।

जइत्ता विउले जन्ने, भोइत्ता समणमाहणे ।
दच्चा भोच्चा य जट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया ! ।।३८।।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्द इणमब्बवी ।।३९।।

जो सहस्सं सहस्साणं, मासे-मासे गवं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ, अदितस्स वि किंचण ।।४०।।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ।।४१।।

घोरासमं चइत्ताणं, अन्नं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा ! ।।४२।।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी ।।४३।।

मासे-मासे तु जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए ।
न सो सुयक्खाय - धम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ।।४४।।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी ।।४५।।

हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं ।
कोसं वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ! ।।४६।।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्द इणमब्बवी ।।४७।।

सुवण्ण-रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि,
इच्छा उ आगास-समा अणन्तिया ।।४८।।

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्ण पसुभिस्सह।
पडिपुण्ण नालमेगस्स, इइ विज्जा तव चरे ।।४९।।

एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ।
तओ नमिं रायरिसि, देविन्दो इणमब्बवी ।।५०।।

अच्छेरग-मब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा!।
असते कामे पत्थेसि, सकप्पेण विहन्नसि ।।५१।।

एयमट्ठ निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्द इणमब्बवी ।।५२।।

सल्ल कामा विस कामा, कामा आसी-विसोवमा।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जति दोग्गइ ।।५३।।

अहे वयइ कोहेण, माणेण अहमा गई।
माया गई-पडिग्घाओ, लोभाओ दुहओ भय ।।५४।।

अवउज्झिऊण माहणरूव, विउव्विऊण इन्दत्त।
वदइ अभित्थुणतो, इमाहि महुराहिं वग्गूहि ।।५५।।

अहो ते निज्जिओ कोहो, अहो माणो पराजिओ।
अहो निरक्किया माया, अहो लोभो वसीकओ ।।५६।।

अहो ते अज्जव साहु, अहो ते साहु मद्दव।
अहो ते उत्तमा खती, अहो ते मुत्ति उत्तमा ।।५७।।

इहसि उत्तमो भते, पेच्चा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तम ठाण, सिद्धि गच्छसि नीरओ ।।५८।।

एव अभित्थुणतो, रायरिसि उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिण करेंतो, पुणो-पुणो वदई सक्को ।।५६।।

तो वदिऊण पाए, चक्क-कुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासे-णुप्पइओ, ललिय-चवल-कु डल-तिरीडी ।।६०।।

नमी नमेइ अप्पाण, सक्ख सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेह वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ।।६१।।

एव करेंति सबुद्धा, पडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से नमी रायरिसि ।।६२।।

-त्ति बेमि

दसम अज्झयण

दुमपत्तए

दुमपत्तए पडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एव मणुयाण जीविय, समय गोयम ! मा पमायए ।।१।।

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोव चिट्ठइ लम्बमाणए ।
एव मणुयाण जीविय, समय गोयम ! मा पमायए ।।२।।

इइ इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए ।
विहुणाहि रय पुरे कड, समय गोयम ! मा पमायए ।।३।।

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिण ।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समय गोयम ! मा पमायए ।।४।।

पुढविक्कायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईय, समय गोयम ! मा पमायए ।।५।।

आउक्कायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईय, समय गोयम ! मा पमायए ।।६।।

तेउक्कायमइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईय, समय गोयम ! मा पमायए ।।७।।

वाउक्कायमइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखाईय, समय गोयम ! मा पमायए ।।८।।

वणस्सइकायमइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
कालमणतदुरत, समय गोयम ! मा पमायए ।।९।।

बेइदियकायमइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखिज्जसन्निय, समय गोयम ! मा पमायए ।।१०।।

तेइदियकायमइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखिज्जसन्निय, समय गोयम ! मा पमायए ।।११।।

चउरिंदियकायमइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
काल सखिज्जसन्निय, समय गोयम ! मा पमायए ।।१२।।

पंचिंदियकायमइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
सत्तट्ठभवग्गहणे, समय गोयम ! मा पमायए ।।१३।।

देवे नेरइए य अइगग्रो, उक्कोस जीवो उ सवसे ।
इक्किक्कभवग्गहणे, समय गोयम ! मा पमायए ।।१४।।

एव भवससारे, ससरइ सुहासुहेहिं कम्मेहि ।
जीवो पमायबहुलो, समय गोयम ! मा पमायए ।।१५।।

लद्धूण वि माणुसत्तण, आरिअत्त पुणरावि दुल्लह ।
बहवे दसुया मिलेक्खुया, समय गोयम ! मा पमायए ।।१६।।

लद्धूण वि आरियत्तण, अहीणपचिदियया हु दुल्लहा ।
विगलिंदियया हु दीसई, समय गोयम ! मा पमायए ।।१७।।

अहीणपंचिंदियत्त पि से लहे, उत्तम-धम्म-सुई हु दुल्लहा ।
कुतित्थिनिसेवए जणे, समय गोयम ! मा पमायए ।।१८।।

लद्धूण वि उत्तम सुइ, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समय गोयम ! मा पमायए ।।१९।।

धम्म पि हु सद्दहतया, दुल्लहया काएण फासया ।
इह कामगुणेहि मुच्छिया, समय गोयम ! मा पमायए ।।२०।।

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पंडुरया हवति ते ।
से सोयवले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ।।२१।।

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते ।
से चक्खुवले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ।।२२।।

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते ।
से घाणवले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ।।२३।।

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते ।
से जिब्भवले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ।।२४।।

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते ।
से फासवले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ।।२५।।

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते ।
से सव्ववले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ।।२६।।

अरई गण्ड विसूइया, आयका विविहा फुसति ते ।
विवडइ विद्ध सइ ते सरीरय, समय गोयम ! मा पमायए ।।२७।।

वोछिंद सिणेहमप्पणो, कुमुय सारइय व पाणिय ।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समय गोयम ! मा पमायए ।।२८।।

चिच्चाण धण च भारिय, पव्वइओ हि सि अणगारिय ।
मा वत पुणो वि आइए, समय गोयम ! मा पमायए ।।२९।।

अवउज्झिय मित्तवधव, विउल चेव धणोहसचय ।
मा त विइय गवेसए, समय गोयम ! मा पमायए ।।३०।।

न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए ।
सपइ नेयाउए पहे, समय गोयम ! मा पमायए ।।३१।।

अवसोहिय कंटगापह, ओइण्णो सि पह महालय ।
गच्छसि मग्ग विसोहिया, समय गोयम ! मा पमायए ।।३२।।

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमे वगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए, समय गोयम ! मा पमायए ।।३३।।

तिण्णो हु सि अण्णव मह, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पार गमित्तए, समय गोयम ! मा पमायए ।।३४।।

अकलेवरसेणिमुस्सिया, सिद्धि गोयम ! लोय गच्छसि ।
खेम च सिव अणुत्तर, समय गोयम ! मा पमायए ।।३५।।

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गामगए नगरे व सजए ।
सतिमग्ग च बूहए, समय गोयम ! मा पमायए ।।३६।।

बुद्धस्स निसम्म भासिय, सुकहियमट्ठपओवसोहिय ।
राग दोस च छिंदिया, सिद्धिगइ गए गोयमे ।।३७।।

—त्ति बेमि

वीसइमं अज्झयणं

महानियंठिज्जं

सिद्धाण नमो किच्चा, सजयाण च भावओ ।
अत्थधम्मगइ तच्च, अणुसट्ठि सुणेह मे ।।१।।

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्त निज्जाओ, मण्डिकुच्छिसि चेइए ।।२।।

नाणादुमलयाइण्ण, नाणापक्खिनिसेविय ।
नाणाकुसुमसछन्न, उज्जाण नदणोवम ।।३।।

तत्थ सो पासई साहु, संजय सुसमाहियं ।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥४॥

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।
अच्चन्तपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ ॥५॥

अहो ! वण्णो अहो ! रूवं, अहो ! अज्जस्स सोमया ।
अहो ! खन्ती अहो ! मुत्ती, अहो ! भोगे असंगया ॥६॥

तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छई ॥७॥

तरुणो सि अज्जो ! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया ।
उवट्ठिओ सि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि ता ॥८॥

अणाहो मि महाराय !, नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पगं सुहिं वावि, कंचि नाभिसमेमऽहं ॥९॥

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स, कहं नाहो न विज्जई ? ॥१०॥

होमि नाहो भयंताणं ! भोगे भुंजाहि संजया !
मित्तनाईपरिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥११॥

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं नाहो भविस्ससि ? ॥१२॥

एवं वुत्तो नरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ ॥१३॥

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे, आणाइस्सरियं च मे ॥१४॥

एरिसे सम्पयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ ?, मा हु भन्ते ! मुसं वए ॥१५॥

न तुम जाणे अणाहस्स, अत्थ 'पोत्थ व' पत्थिवा ! ।
जहा अणाहो भवई, सणाहो वा नराहिवा ? ।।१६।।

सुणेह मे महाराय !, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवई, जहा मे य पवत्तिय ।।१७।।

कोसबी नाम नयरी, पुराण पुरभेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूयधणसचओ ।।१८।।

पढमे वए महाराय !, अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगेसु य पत्थिवा ! ।।१९।।

सत्थ जहा परमतिक्ख, सरीरविवरतरे ।
पवेसेज्ज अरी कुद्धो, एव मे अच्छिवेयणा ।।२०।।

तिय मे अतरिच्छ च, उत्तमग च पीडई ।
इदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ।।२१।।

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामततिगिच्छगा ।
अबीया सत्थकुसला, मतमूलविसारया ।।२२।।

ते मे तिगिच्छ कुव्वति, चाउप्पाय जहाहिय ।
न य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया ।।२३।।

पिया मे सव्वसार पि, दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ।।२४।।

माया य मे महाराय !, पुत्तसोगदुहट्टिया ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ।।२५।।

भायरो मे महाराय !, सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया ।।२६।।

भइणीओ मे महाराय !, सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया ।।२७।।

भारिया मे महाराय !, अणुरत्ता अणुव्वया ।
असुपुण्णेहिं नयणेहि, उरं मे परिसिंचई ॥२८॥

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गंधमल्लविलेवणं ।
मए नायमणायं वा, सा बाला नोवभुंजई ॥२९॥

खणं पि मे महाराय !, पासाओ वि न फिट्टई ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥३०॥

तओ हं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो-पुणो ।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए ॥३१॥

सइं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ ।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वए अणगारियं ॥३२॥

एवं च चिंतइत्ताणं, पसुत्तो मि नराहिवा ! ।
परियट्टंतीए राईए, वेयणा मे खयं गया ॥३३॥

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बंधवे ।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइओऽणगारियं ॥३४॥

ततो हं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाण थावराण य ॥३५॥

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥३६॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ ॥३७॥

इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !
तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि ।
नियंठधम्मं लहियाण वी जहा,
सीयंति एगे बहुकायरा नरा ॥३८॥

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइ,
सम्म च नो फासयई पमाया।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
न मूलओ छिंदइ बधण से ।।३९।।

आउत्तया जस्स न अत्थि काइ,
इरियाए भासाए तहेसणाए।
आयाणनिक्खेव - दुगु छणाए,
न वीरजाय अणुजाइ मग्ग ।।४०।।

चिर पि से मु डरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे।
चिर पि अप्पाण किलेसइत्ता,
न पारए होइ हु सपराए ।।४१।।

पोल्ले व मुट्ठी जह से असारे,
अयंतिए कूडकाहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु ।।४२।।

कुसीललिंग इह धारइत्ता,
इसिज्झय जीविय वूहइत्ता।
असजए सजयलप्पमाणे,
विणिघायमागच्छइ से चिर पि ।।४३।।

विस तु पीय जह कालकूड,
हणाइ सत्थ जह कुग्गहीय।
एसो वि धम्मो विसओववन्नो,
हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ।।४४।।

जे लक्खणं सुविणं पउजमाणे,
निमित्त - कोऊहल - संपगाढे ।
कुहेड - विज्जा - सवदारजीवी,
न गच्छई सरणं तम्मि काले ।।४५।।

तमतमेणेव उ से असीले,
सया दुही विप्परियासुवेइ ।
सधावई नरग - तिरिक्खजोणिंग,
मोणं विराहेत्तु असाहुरूवे ।।४६।।

उद्देसिय कीयगड नियाग,
न मुचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इम्रो चुम्रो गच्छइ कट्टु पाव ।।४७।।

न त अरी कठछेत्ता करेइ,
ज से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाहिई मच्चुमुह तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ।।४८।।

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठ विवज्जाससेई ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए,
दुहम्रो वि से भिज्जइ तत्थलोए ।।४९।।

एमेवऽहा छदकुसीलरूवे,
मग्ग विराहेत्तु जिणुत्तमाणं ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा,
निरट्ठसोया परियावमेइ ।।५०।।

सोच्चाण मेहावि सुभासिय इम,
अणुसासण नाणगुणोववेय ।
मग्ग कुसीलाण जहाय सव्व,
महानियठाण वए पहेण ।।५१।।

चरित्तमायार-गुणन्निए तओ,
अणुत्तर सजम पालियाण ।
निरासवे सखवियाण कम्म,
उवेइ ठाण विउलुत्तम धुव ।।५२।।

एवुग्गदते वि महातवोघणे,
महामुणी महापइन्ने महायसे ।
महानियठिज्जमिण महासुय,
से काहए महया वित्थरेण ।।५३।।

तुट्ठो य सेणिओ राया,
इणमुदाहु कयजली ।
अणाहत्त जहाभूय,
सुट्ठु मे उवदसिय ।।५४।।

तुज्भ सुलद्ध खु मणुस्सजम्म,
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी ।
तुब्भे सणाहा य सबधवा य,
ज भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाण ।।५५।।

त सि नाहो अणाहाण, सव्वभूयाण सजया ! ।
खामेमि ते महाभाग !, इच्छामि अणुसासिंउ ।।५६।।

पुच्छिऊण मए तुब्भ, झाणविग्घो उ जो कओ ।
निमतिओ य भोगेहिं, त सव्व मरिसेहि मे ।।५७।।

एव थुणित्ताण स रायसीहो,
अणगारसीह परमाइ भत्तिए।
सओरोहो य सपरियणो य,
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥५८॥

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिण।
अभिवदिऊण सिरसा, अइयाओ नराहिवो ॥५९॥

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदण्डविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुह विगयमोहो ॥६०॥

—त्ति बेमि

अट्ठावीसइमं अज्झयणं

मोक्खमग्गगई

मोक्खमग्गगइ तच्च, सुणेह जिणभासिय।
चउकारण-सजुत्त, नाण-दसण-लक्खण ॥१॥

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहि वरदसिहि ॥२॥

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छति सोग्गइ ॥३॥

तत्थ पचविह नाण, सुय आभिणिबोहिय।
ओहीनाण तइय, मणनाण च केवल ॥४॥

एय पचविह नाण, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाण च सव्वेसिं, नाण नाणीहि देसिय ॥५॥

गुणाणमासओ दव्व, एग-दव्वस्सिया गुणा।
लक्खण पज्जवाण तु, उभओ अस्सिया भवे ॥६॥

धम्मो अहम्मो आगास, कालो पुग्गलजतवो ।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदसिहिं ।।७।।

धम्मो अहम्मो आगास, दव्व इक्किक्कमाहिय ।
अणताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गलजतवो ।।८।।

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो ।
भायण सव्वदव्वाण, नह ओगाहलक्खण ।।९।।

वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो ।
नाणेण दसणेण च, सुहेण य दुहेण य ।।१०।।

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा ।
वीरिय उवओगो य, एय जीवस्स लक्खण ।।११।।

सद्दधयार-उज्जोओ, पहा छायातवे इ वा ।
वण्ण-रस-गध-फासा, पुग्गलाण तु लक्खण ।।१२।।

एगत्त च पुहत्त च, सखा सठाणमेव य ।
सजोगा य विभागा य, पज्जवाण तु लक्खण ।।१३।।

जीवाजीवा य बधो य, पुण्ण पावासवो तहा ।
सवरो निज्जरा मोक्खो, सतेए तहिया नव ।।१४।।

तहियाण तु भावाण, सब्भावे उवएसण ।
भावेण सद्दहतस्स, सम्मत्त त वियाहिय ।।१५।।

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्तबीयरुइमेव ।
अभिगमवित्थाररुई, किरियासखेवधम्मरुई ।।१६।।

भूयत्थेणाहिगया, जीवाजीवा य पुण्णपाव च ।
सहसम्मुइयासव-सवरो य, रोएइ उ निसग्गो ।।१७।।

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव नऽन्नह त्ति य, निसग्गरुइ त्ति नायव्वो ।।१८।।

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥१९॥

रागो दोसो मोहो, अन्नाण जस्स अवगय होइ।
आणाए रोयतो, सो खलु आणारुई नाम ॥२०॥

जो सुत्तमहिज्जतो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्त।
अगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुइ त्ति नायव्वो ॥२१॥

एगेण अणेगाइ, पयाइ जो पसरई उ सम्मत्त।
उदएव्व तेल्लबिंदू, सो बीयरुइ त्ति नायव्वो ॥२२॥

सो होइ अभिगमरुई, सुयनाण जेण अत्थओ दिट्ठ।
एक्कारस अगाइ, पइण्णग दिट्ठिवाओ य ॥२३॥

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहि जस्स उवलद्धा।
सव्वाहि नयविहीहि य, वित्थाररुइ त्ति नायव्वो ॥२४॥

दसण-नाण-चरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥२५॥

अणभिग्गहिय-कुदिट्ठी, सखेवरुइ त्ति होइ नायव्वो।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥२६॥

जो अत्थिकायधम्म, सुयधम्म खलु चरित्तधम्म च।
सद्दहइ जिणाभिहिय, सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो ॥२७॥

परमत्थसथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थ-सेवणा वा वि।
वावन्न-कुदसण-वज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२८॥

नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण, दसणे उ भइयव्व।
सम्मत्तचरित्ताइ, जुगव पुव्व व सम्मत्त ॥२९॥

नादसणिस्स नाण, नाणेण विणा न हुति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥३०॥

निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ।।३१।।

सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं ।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ।।३२।।

अकसायं अहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ।।३३।।

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ।।३४।।

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ।।३५।।

खवेत्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ।।३६।।

–त्ति बेमि

सुभासियं

जयइ जग जीव जोणी, वियाणओ जगगुरू जगाणंदो ।
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ।।१।।

जयइ सुआण पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ।।२।।

–(नंदी सूत्र)

पंच-महव्वय-सुव्वय-मूलं, समण-मणाइल साहु-सुचिन्नं ।
वेर-विरामण-पज्जवसाणं, सव्व-समुद्द-महोदधि-तित्थं ।।३।।

तित्थकरेहि सुदेसियमग्गं, नरय-तिरिक्ख विवज्जिय-मग्गं ।
सव्व-पवित्ति-सुनिम्मियसारं, सिद्धि-विमाण-अवगुयदारं ।।४।।

देव-नरिद नमसिय-पूय, सव्व-जगुत्तम-मगल-मग्ग ।
दुद्धरिस गुणनायकमेक्क, मोक्ख-पहस्स-वडिसगभूय ।।५।।

—(प्रश्न व्याकरण सूत्र स ४)

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ।।६।।

वर मे अप्पा दतो, सजमेण तवेण य ।
माह परेहि दम्मतो, बधणेहि वहेहि य ।।७।।

—(उत्तराध्ययन सूत्र १/१५-१६)

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो ।
माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरिय ।।८।।

चउरग दुल्लह णच्चा, सजम पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मसे, सिद्धे हवइ सासए ।।९।।

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाण परम जाइ, घयसित्तिव्व पावए ।।१०।।

—(वही ३/१-२०-१२)

ताणि ठाणाणि गच्छति, सिक्खित्ता सजम तव ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे सति परिनिव्वुडा ।।११।।

—(वही ५/२८)

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नाल ते मम ताणाय, लुप्पतस्स सकम्मुणा ।।१२।।

-(वही ६/३)

माणुसत्त भवे मूल, लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेएण जीवाण, नरग-तिरिक्खत्तण धुव ।।१३।।

बालस्स पस्स बालत्त, अहम्म पडिवज्जिया ।
चिच्चा धम्म अहम्मिट्ठे, नरएसूववज्जई ।।१४।।
धीरस्स पस्स धीरत्त, सव्वधम्माणुवत्तिणो ।
चिच्चा अधम्म धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जई ।।१५।।
-(वही ७/१६-२८-२९)

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ।
दो-मास-कय-कज्ज, कोडीए वि न निट्ठिय ।।१६।।
-(वही ८/१७)

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोव चिट्ठइ लबमाणए ।
एव मणुयाण जीविय, समयं गोयम ! मा पमायए ।।१७।।
परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते ।
से सव्वबले य हायई, समय गोयम ! मा पमायए ।।१८।।
-(वही १०/२-२६)

अह पचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई ।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणाऽलस्सएण य ।।१९।।
अह अट्ठहि ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।
अहस्सिरे सया दते, न य मम्ममुदाहरे ।।२०।।
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।।२१।।
-(वही ११/३-४-५)

वसे गुरुकुले निच्च, जोगव उवहाणव ।
पियकरे पियवाई, से सिक्ख लद्धुमरिहई ।।२२।।
-(वही ११/१४)

सव्व विलविय गीय, सव्व नट्ट विडविय ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥२३॥

अच्चेइ कालो तूरति राइओ,
न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उविच्चभोगा पुरिस चयति,
दुम जहा खीणफल व पक्खी ॥२४॥
—(वही १३/१६-३१)

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जति राइओ ॥२५॥

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्म च कुणमाणस्स, सफला जति राइओ ॥२६॥
—(वही १४/२४-२५)

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइम धम्मसारही ।
धम्मारामे रए दते, बभचेर-समाहिए ॥२७॥

देव-दाणव-गधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा ।
बभयारिं नमसति, दुक्कर जे करति त ॥२८॥

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झति चाणेण, सिज्झिस्सति तहावरे ॥२९॥
—(वही १६/१५-१६-१७)

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बधवा ।
जीवतमणुजीवति, मय नाणुव्वयति य ॥३०॥
—(वही १८/१४)

जहा किंपाग-फलाण, परिणामो न सुदरो ।
एव भुत्ताण भोगाण, परिणामो न सुदरो ॥३१॥
—(वही १९/१७)

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नदण वण ।।३२।।

अप्पा कत्ता-विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ ।।३३।।

—(वही २०/३६-३७)

जरा-मरण-वेगेण, वुज्झमाणाण पाणिण।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तम ।।३४।।

—(वही २३/६८)

कम्मुणा बभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।३५।।

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई।
भोगी भमइ ससारे, अभोगी विप्पमुच्चई ।।३६।।

—(वही २५/३३-४१)

नाण च दसणं चेव, चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छति सोग्गइ ।।३७।।

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
वीरिय उवओगो य, एय जीवस्स लक्खण ।।३८।।

नाणेण जाणई भावे, दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ।।३९।।

—(वही २८/३-११-३५)

रागो य दोसो वि य कम्मबीय,
कम्म च मोहप्पभव वयति।
कम्म च जाईमरणस्स मूल,
दुक्ख च जाईमरण वयति ।।४०।।

—(वही ३२/७)

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयण जे करेति भावेण ।
अमला असकिलिट्ठा, ते होंति परित्तससारी ।।४१।।

—(वही ३६/२६१)

वित्त सोयरिया चेव, सव्वमेय न ताणइ ।
सखाए जीविय चेव, कम्मुणा उ तिउट्टइ ।।४२।।

—(सूयगडाग सूत्र १/१/१/५)

सबुज्झह किं न बुज्झह, संवोही खलु पेच्च दुल्लहा ।
नो हूवणमति राइयो, नो सुलभ पुणरावि जीविय ।।४३।।

—(वही १/२/१/१)

एय खु नाणिणो सार, ज न हिंसइ कचण ।
अहिंसा समय चेव, एयावत वियाणिया ।।४४।।

—(वही १/११/१०)

अह ण वयमावन्न, फासा उच्चावया फुसे ।
न तेसु विणिहण्णेज्जा, वाएण व महागिरी ।।४५।।

—(वही १/११/३७)

एव तक्काइ साहेता, धम्माधम्मे अकोविया ।
दुक्ख ते नाइतुट्टति, सउणी पजर जहा ।।४६।।

—(वही १/१/२/२२)

सीह जहा खुड्डमिगा चरता, दूरे चरति परिसकमाणा ।
एव तु मेहावि समिक्ख धम्म, दूरेण पाव परिवज्जएज्जा ।।४७।।

—(वही १/१०/२०)

सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य सजमे ।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ।।४८।।

—(भगवती सूत्र २/५)

जाइ च वुड्ढि च इहऽज्ज पासे,
भूएहिं जाणे पडिलेह साय ।
तम्हाऽतिविज्जो परमति णच्चा,
सम्मत्तदसी न करेइ पाव ।।४९।।

उम्मु च पास इहमच्चिएहिं,
आरभजीवी उभयाणुपस्सी ।
कामेसु गिद्धा निचय करेति,
ससिच्चमाणा पुणरेति गब्भ ।।५०।।

—(आचाराग सूत्र १/३/२)

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायति, ताव धम्म समायरे ।।५१।।

कोह माण च माय च, लोभ च पाव-वड्ढण ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छतो हियमप्पणो ।।५२।।

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व-विणासणो ।।५३।।

उवसमेण हणे कोह, माण मद्दवया जिणे ।
माय अज्जव-भावेण, लोभ सतोसओ जिणे ।।५४।।

—(दशवैकालिक सूत्र ८/३६-३७-३८-३९)

जे य चडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।
वुज्झइ से अविणीयप्पा, कट्ठ सोयगय जहा ।।५५।।

—(वही ९/२/३)

जे आयरिय-उवज्झायाण, सुस्सूसा-वयणकरा ।
तेसिं सिक्खा पवड्ढति, जलसित्ता इव पायवा ।।५६।।

—(वही ९/२/१२)

लोगस्स सार धम्मो, धम्म पि य नाणसारिय विति ।
नाण सजम सार, सजमसार च निव्वाण ।।५७।।

—(आ भद्रबाहु-आचा नि २४४)

जहा खरो चदण-भारवाही, भारस्स भागी न हु चदणस्स ।
एव खु नाणी चरणेण हीणो, नाणस्स भागी न हु सोग्गईए ।।५८।।

—(वही, आव. नि. १००)

जह जह सुज्झइ सलिल, तह तह रूवाइ पासई दिट्ठी ।
इय जह जह तत्तरुई, तह तह तत्तागमो होइ ।।५९।।

—(वही आव नि ११६३)

जागरह णरा ! णिच्च, जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धी ।
जो सुवति न सो सुहितो, जो जग्गति सो सया सुहितो ।।६०।।
णालस्सेण सम सोक्ख, ण विज्जा सह णिद्दया ।
ण वेरग्ग ममत्तेण, णारभेण दयालुआ ।।६१।।

—(बृह. भा ३२८३-३३८५)

धीरेण वि मरियव्व, काउरिसेण वि अवस्स मरियव्व ।
दुण्ह पि हु मरियव्वे, वर खु धीरत्तणे मरिउ ।।६२।।

—(आतुर प्रत्याख्यान ६४)

सोच्चाण मेहावि सुभासिय इम,
अणुसासण नाणगुणोववेय ।
मग्ग कुसीलाण जहाय सव्व,
महानियठाण वए पहेण ।।६३।।

—(उत्तराध्ययन सूत्र २०/५१)

स्तोत्र विभाग

मंगलाचरणं

मगल भगवान् वीरो, मगल गौतमः प्रभु ।
मगल स्थूलिभद्राद्या, जैनधर्मोऽस्तु मगलम् ।।१।।

सर्व-मगल-मागल्य, सर्व-कल्याण-कारणम् ।
प्रधान सर्वधर्माणा, जैन जयतु शासनम् ।।२।।

अर्हंतो भगवत इद्रमहिता , सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा पूज्या उपाध्यायका ।
श्री सिद्धात-सुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधका ,
पचैते परमेष्ठिन प्रतिदिन, कुर्वंतु नो मगलम् ।।३।।

वीर सर्वसुरासुरेंद्रमहितो, वीर बुधा सश्रिता ,
वीरेणाभिहत. स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्री-धृति-कीर्ति-काति-निचयो, हे वीर! भद्र दिश ।।४।।

ब्राह्मीश्चदनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा ।
कु ती शीलवती नलस्य दयिता, चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सु दरी दिनमुखे, कुर्वंतु नो मगलम् ।।५।।

मोक्षमार्गस्य नेतार, भेत्तार कर्म-भूभृताम् ।
ज्ञातार विश्व-तत्त्वाना, वदे तद्गुण-लब्धये ।।६।।

भवबीजाकुर-जनना, रागाद्या क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।७।।

ससार - दावानल - दाह नीर,
सम्मोह - धूली - हरणे समीरम् ।
मायारसादारण - सार - सीर,
नमामि वीर गिरिसार - धीरम् ॥८॥

पन्नगे च सुरेन्द्रे च, कौशिके पादसस्पृशि ।
निर्विशेपमनस्काय, श्री वीर-स्वामिने नमः ॥९॥



भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर-प्रणत - मौलिमणि - प्रभाणा-
मुद्योतक दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युग युगादा-
वालम्वन भवजले पतता जनानाम् ॥१॥

यः सस्तुत सकल-वाड्मय-तत्त्व-वोधा-
दुद्भूत-वुद्धि-पटुभि सुर-लोक-नाथै ।
स्तोत्रैर्जगत् - त्रितय - चित्त हरैरुदारै
स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेन्द्रम् ॥२॥

वुद्ध्या विनाऽपि विवुधार्चित्त-पादपीठ !
स्तोतु समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम् ।
वाल विहाय जल-सस्थितमिन्दु-विम्व-
मन्य क इच्छति जन सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

वक्तु गुणान् गुण-समुद्र ! शशाङ्ककातान्
कस्ते क्षम सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि वुद्धया ।
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्रचक्र
को वा तरीतुमलमम्वु-निधि भुजाभ्याम् ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्त. ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ।।५।।

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम
त्वद्-भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र - चारु - कलिका-निकरैक-हेतु ।।६।।

त्वत्-संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीर-भाजाम् ।
आक्रान्त - लोक - मलिनील - मशेषमाशु
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ।।७।।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ताफल-द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दु ।।८।।

आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं
त्वत्-संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ।।९।।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर् भुवि भवन्त-मभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।।१०।।

दृष्ट्वा भवन्त-मनिमेष-विलोकनीय
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षु ।
पीत्वा पय शशिकर-द्युति दुग्ध-सिन्धो.
क्षार जल जल-निधेरसितु क इच्छेत् ॥११॥

यै शात-राग-रुचिभि परमाणुभिस्त्व
निर्मापितस् - त्रिभुवनैक - ललाम-भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपर नहि रूपमस्ति ॥१२॥

वक्त्र क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि
नि शेष-निर्जित-जगत् - त्रितयोपमानम् ।
बिम्ब कलक-मलिन क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाक - कला-कलाप
शुभ्रा गुणास्-त्रिभुवन तव लङ्घयन्ति ।
ये सश्रितास्-त्रिजगदीश्वर ! नाथमेक
कस्तान् निवारयति सचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

चित्र किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग-नाभिर्
नीत मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन
कि मन्दराद्रि-शिखर चलित कदाचिद् ॥१५॥

निर्धूम - वर्ति - रपवर्जित - तैलपूर
कृत्स्न जगत्-त्रयमिद प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुता चलिता-चलाना
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्-प्रकाश ॥१६॥

नास्त कदाचिदुपयासि न राहुगम्य
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्-जगन्ति ।
नाम्भो - धरोदर - निरुद्ध - महाप्रभाव
सूर्यातिशायि-महिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥

नित्योदय दलित-मोह-महान्धकार
गम्य न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्पकान्ति
विद्योतयज् जगदपूर्व-शशाक-बिम्बम् ॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा
युष्मन्-मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ !
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव लोके
कार्यं कियज्-जलधरैर्-जल-भार-नम्रैं ॥१९॥

ज्ञान यथा त्वयि विभाति कृतावकाश
नैव तथा हरि-हरादिषु नायकेषु ।
तेज स्फुरन्-मणिषु याति तथा महत्त्व
नैव तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा—
दृष्टेषु येषु हृदय त्वयि तोषमेति ।
कि वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य
कश्चिन्-मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुत त्वदुपम जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मि
प्राच्येव दिग्-जनयति स्फुरदशु-जालम् ॥२२॥

त्वामामनन्ति मुनय परम पुमास–
मादित्य-वर्णममल तमसः परस्तात् ।
त्वामेव-सम्य-गुपलभ्य जयन्ति मृत्यु
नान्य शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र ! पन्था ॥२३॥

त्वामव्यय विभु-मचिन्त्य-मसख्य-माद्य
ब्रह्माण - मीश्वर-मनन्त-मनङ्ग-केतुम् ।
योगीश्वर विदित-योग-मनेकमेक
ज्ञान-स्वरूप-ममल प्रवदन्ति सन्त. ॥२४॥

बुद्धस्-त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्
त्व शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्ग-विधेर्-विधानाद्
व्यक्त त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

तुभ्य नमस्-त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्य नम क्षिति-तलामल-भूषणाय !
तुभ्य नमस्-त्रिजगत परमेश्वराय !
तुभ्य नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ! ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्
त्व सश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्त - विविधाश्रय - जात - गर्वै
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

उच्चैरशोक - तरु - सश्रित - मुन्मयूख–
माभाति रूपममल भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्-किरणमस्त-तमो वितान
बिम्ब रवेरिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति ॥२८॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपु कनकावदातम् ।
बिम्ब वियद्-विलसदशु-लता-वितान
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्ररश्मे ।।२९।।

कुन्दावदात - चल - चामर - चारु - शोभ
विभ्राजते तव वपु कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्-छशाक-शुचि-निर्झर-वारि - धार -
मुच्चैस्तट सुरगिरे-रिव शातकौम्भम् ।।३०।।

छत्र-त्रय तव विभाति शशाक-कान्त-
मुच्चै स्थित-स्थगित-भानुकर-प्रतापम् ।
मुक्ताफल - प्रकर - जाल - विवृद्ध - शोभ
प्रख्यापयत्-त्रिजगत परमेश्वरत्वम् ।।३१।।

गम्भीर-तार-रव - पूरित-दिग् - विभागस्
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सगम - भूति - दक्ष ।
सद्धर्मराज - जयघोषण - घोषक सन्
खे दुन्दुभिर्-ध्वनति ते यशस प्रवादी ।।३२।।

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा ।
गन्धोद - बिन्दु - शुभमन्द - मरुत्-प्रपाता
दिव्या दिव पतति ते वचसा ततिर्वा ।।३३।।

शुम्भत्-प्रभा-वलय भूरि-विभा विभोस्ते
लोक-त्रय-द्युतिमता द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद् - दिवाकर - निरन्तर-भूरि-सख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ।।३४।।

स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्ट
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस् - त्रिलोक्या
दिव्य-ध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणै प्रयोज्य ।।३५।।

उन्निद्र - हेम - नव - पकज-पुञ्ज-कान्ती
पर्यु ल्लसन्-नख-मयूख - शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्त.
पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति ।।३६।।

इत्थ यथा तव विभूति-रभूज्-जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य ।
याद्दक्-प्रभा दिनकृत प्रहतान्धकारा-
ताद्दक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ।।३७।।

श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोल - मूल-
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध - कोपम् ।
ऐरावता - भमिभमुद्धत - मापतन्त
द्दष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।३८।।

भिन्नेभ - कुम्भ -गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त
मुक्ता - फल - प्रकर-भूषित-भूमि-भाग ।
बद्धक्रम क्रमगत हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम-युगाचल-सश्रित ते ।।३९।।

कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - वह्नि-कल्प
दावानल ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिगम् ।
विश्व जिघत्सुमिव सम्मुख-मापतन्त
त्वन्नाम-कीर्त्तनजल शमयत्यशेषम् ।।४०।।

रक्तेक्षरा समद-कोकिल-कण्ठ-नील
क्रोधोद्धत फरिगन-मुत्फरा-मापतन्तम् ।
आक्रामति क्रम-युगेन निरस्तशकस्-
त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुस ।।४१।।

वल्गत् - तुरग - गज-गर्जित - भीमनाद-
माजौ बल बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद् - दिवाकर - मयूख - शिखापविद्ध
त्वत्कीर्तनात्-तम इवाशु भिदामुपैति ।।४२।।

कुन्ताग्र - भिन्न - गज-शोरिगत-वारिवाह-
वेगावतार - तररगातुर - योध - भीमे ।
युद्धे ज़य विजित-दुर्जय-जेय-पक्षास्
त्वत्पाद-पकज-वनाश्रयिरगो लभन्ते ।।४३।।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषरग-नक्र-चक्र
पाठीन - पीठ-भयदोल्वरग - वाडवाग्नौ ।
रगत्तरग - शिखर - स्थित-यान-पात्रास्
त्रास विहाय भवत स्मररगाद् व्रजन्ति ।।४४।।

उद्भूत-भीषरग - जलोदर - भार-भुग्ना
शोच्या दशा-मुपगताश्-च्युत-जीविताशा ।
त्वत्-पाद-पकज-रजोऽमृत - दिग्ध - देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्य-रूपा ।।४५।।

आपाद - कण्ठ-मुरु - शृ खल-वेष्टितागा
गाढ बृहन्-निगड-कोटि-निघृष्ट-जघा ।
त्वन्नाम-मत्रमनिश मनुजा स्मरन्त
सद्य स्वय विगत-बन्ध-भया-भवन्ति ।।४६।।

मत्त - द्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
सग्राम - वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भय भियेव
यस्तावक स्तवमिम मतिमानधीते ॥४७॥

स्तोत्र-स्रज तव जिनेन्द्र ! गुणैर्-निबद्धा
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गता-मजस्र
त मानतु ग-मवशा समुपैति लक्ष्मी ॥४८॥

इति श्री मानतु गाचार्य-विरचितं भक्तामर-स्तोत्रम्



वीर-भक्तामर-स्तोत्र

राज्यर्द्धि-वृद्धि-भवनाद् भवने पितृभ्या,
श्री 'वर्द्धमान' इति नाम कृत कृतिभ्याम् ।
यस्याद्य शासनमिद वरिवर्ति भूमा-
वालम्बन भवजले पतता जनानाम् ॥१॥

श्री 'आर्षभि.' प्रणमतिस्म भवे तृतीये,
गर्भस्थित तु मघवाऽस्तुत सप्तविंशे ।
य श्रेणिकादिक नृपा अपि तुष्टुवुश्च,
स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेन्द्रम् ॥२॥

वीर ! त्वया विदधताऽऽमलिकी सुलीला,
बालाऽऽकृतिश्छलकृद्दारुरुहे सुरो य ।
तालायमान-वपुष त्वदृते तमुच्च-
मन्य क इच्छति जन. सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

शक्रेण पृष्टमखिलं त्वमुवक्थ यत् तज्-
जैनेन्द्र-सञ्ज्ञकमिहाजनि शब्दशास्त्रम् ।
तस्यापि पारमुपयाति न कोऽपि बुद्धया,
को वा तरीतुमलमम्बु-निधिं भुजाभ्याम् ।।४।।

धर्मस्य वृद्धिकरणाय जिन ! त्वदीया
प्रादुर्भवत्यमल-सद्गुण-दायिनी गौः ।
पेयूष पोषणपरा वर-कामधेनुर्,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।।५।।

छिद्येत कर्मनिचयो भविना यदाशु,
त्वन्नाम धाम किल कारणमीश तत्र ।
कण्ठे पिकस्य कफजालमुपैति नाशं,
तच्चारुचाम्र - कलिका - निकरैकहेतु ।।६।।

'देवार्य' देव ! भवता कुमतं हतं तन्
मिथ्यात्ववत्सु सततं शतशः सुरेषु ।
सन्तिष्ठतेऽतिमलिनं गिरि-गह्वरेषु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।।७।।

त्वन्नाम 'वीर' इति देव ! सुरे परस्मिन्
केनाऽपि यद्यपि धृतं न तथापि शोभाम् ।
प्राप्नोत्यमुत्र मलिने किमृजीषपृष्ठे,
मुक्ताफल - द्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ।।८।।

ज्ञाने जिनेन्द्र ! तव केवलनाम्नि जाते,
लोकेषु कोमलमनासि भृशं जहर्षुः ।
प्रद्योतने समुदिते हि भवन्ति किं नो,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ।।९।।

वादाय देव ! समियाय य 'इन्द्रभूति'
स्तस्मै प्रधानपदवी प्रददे स्वकीयाम् ।
धन्य स एव भुवि तस्य यशोऽपि लोके,
भूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति ॥१०॥

गोक्षीर - सत्सिलसिताधिकमृष्टमिष्ट-
माकर्ण्य ते वच इहेप्सति नो परस्य ।
पीयूषक शशिमयूख - विभ विहाय,
क्षार जल जलनिधेरसितु क इच्छेत् ॥११॥

अगुष्ठमेक-मणुभि-र्मणिजै सुरेन्द्रा
निर्माय चेत् तव पदस्य पुरो धरेयु ।
पूष्णोऽग्र उल्मुकमिवेश ! स दृश्यते वै,
यत् ते समानमपर न हि रूपमस्ति ॥१२॥

उज्जाघटीति तमसि प्रचुर - प्रचार
मिथ्यात्विना मतमहो न तु दर्शने ते ।
काकारि-चक्षुरिव वा न हि चित्रमत्र-
यद् वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥

वन्या द्विपा इव सदैव कषायवर्गा,
भञ्जन्ति नूतन-तरूनिव सर्वजन्तून् ।
सिंहातिरेकनरस हि विना भवन्त
कस्तान्निवारयति सचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

द्विट् सगमेन महतामुपसर्गकारणा,
या विंशतिस्तु ससृजे जिन ! नक्तमेकम् ।
चित्तं चचाल न तया तव भञ्भया तु,
किं मदराद्रि-शिखर चलित कदाचिद् ॥१५॥

नि स्नेह ! निर्दंश ! निरञ्जन ! नि स्वभाव !
निष्कृष्ण-वर्त्म ! निरमत्र ! निरकुशेश ! ।
नित्यद्युते ! गत-समीर - समीरणात्र,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाश ॥१६॥

विस्तारको निजगवा तमस प्रहर्त्ता
मार्गस्य दर्शक इहासि च सूर्य एव
स्थाने च दुर्दिनहते करणाद् विजाने,
सूर्यातिशायि महिमासि मुनीद्र लोके ॥१७॥

प्रह्लादकृत् कुवलयस्य कलानिधान,
पूर्णश्रिय च विदधञ्च यशस्त्वदीयम् ।
वर्वर्ति लोक बहुकोक सुखकरत्वाद् ,
विद्योतयज्जगदपूर्व - शशाकबिम्बम् ॥१८॥

यद्-देहिना जिनवराब्दिक-भूरिदानैर् ,
दौस्थ्य हत हि भवता किमु तत्र चित्रम् ।
दुर्भिक्ष-कष्ट-दलनात् क्रियते सदौप–
कार्यं कियज्जलधरैर् जलभारनम्रै ॥१९॥

यादृक् सुख भवति ते चरणेऽत्र दृष्टे,
तादृक् परभु-वदनेऽपि न देह-भाजाम् ।
प्राप्ते यथा सुरमणौ भवति प्रमोदो,
नैव तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

एव प्रसीद जिन ! येन सदा भवेऽत्र,
त्वच्छासन लगति मे सुमनोहर च ।
त्वत्-सेवको भवति य स जनो मदीय,
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

भामण्डल जिन ! चतुर्मुख ! दिक्चतुष्के,
तुल्य चकासदवलोक्य सभा-व्यमृक्षत् ।
सूर्य समा अपि दिशो जनयन्ति किं वा,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

शम्भुर्गिरीश इह दिग्वसन स्वयम्भूर् ,
मृत्यु जयस्त्वमसि नाथ ! महादिदेव ।
तेनाम्बिका निज-कलत्रमकारि तत् त्वन् ,
नान्य शिव शिवपदस्य मुनीद्रपथा ॥२३॥

जानन्ति यद्यपि चतुर्दश चारु विद्या
देशोनपूर्व-दशक च पठन्ति सार्थम् ।
सम्यक्त्वमीश ! न धृत तव नैव तेषा,
ज्ञानस्वरूपममल प्रवदन्ति सन्त ॥२४॥

नृणा गणा गुणचणा पतयोऽपि तेषा,
ये ये सुरा सुरवरा सुखदास्तकेऽपि ।
कृत्वाञ्जलिं जिन चरिक्रति ते स्तुतिं तद्,
व्यक्त त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

रोगा झषा बहुमहामकरा कषायाश्,
चिन्तैव यत्र वडवाग्नि-रसातमम्भ ।
वार्धिर्भव. सर इव त्वयका कृतस्तत्,
तुभ्य नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

यद् यस्य तस्य च जनस्य हि पारवश्य,
मावश्यक जिन ! मया वरिवस्ययाप्तम् ।
तत् तर्कयामि बहुमोहतया मया त्व,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

रम्येन्द्र - नील - रुचिवेषभृतो जनन्या,
पार्श्वं श्रितस्य धयतश्च पयोधर ते।
रूप रराज नवकाञ्चनरुक् तमोघ्न,
विम्ब रवेरिव पयोधर - पार्श्ववर्ति ॥२८॥

इक्ष्वाकु-नामनि कुले विमले विशाले,
सद्रत्न - राजिनि विराजत उद्भवस्ते।
दोषापहारकरण प्रकटप्रकाशस्,
तुङ्गोदयाद्रि - शिरसीव सहस्ररश्मे ॥२९॥

स्नानोदकैर्जनिमहे सुरराजिमुक्तै र्,
गात्रे पतद्भिरपि नूनमनेजमानम्।
दृष्ट्वा भवन्तममरा प्रशशसुरीश–
मुच्चैस्तट सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

ये त्रि-प्रदक्षिणतया प्रभजन्ति वीर,
ते स्युर्नरा अहमिवाद्भुत-कातिभाज।
वप्रत्रय वददिति प्रविभाति तेऽत्र,
प्रख्यापयत् - त्रिगत परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

कान्तार-वर्त्मनि नरा पतिता कदाचिद्,
दैवात् क्षुधा च तृषया परिपीडिताङ्गा।
ये त्वा स्मरन्ति च गृहाणि सरासि भूरि–
पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति ॥३२॥

सनिश्चला जिन ! यथा तव चित्तवृत्ति
कस्यापि नैवमपरस्य तपस्विनोऽपि।
यादृक् सदा जिनपते ! स्थिरता ध्रुवस्य,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३३॥

श्रोत्वाखवोऽहि - गरुडा पुनरेणसिंहा,
अन्येऽङ्गिनोऽपि च मिथो जनिवैरबन्धा ।
तिष्ठन्ति ते समवसृत्य विरोधिन त्वा
दृष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।३४।।

यस्ते प्रणश्य चमरोऽह्लितले प्रविष्टस्,
त हन्तुमीश ! न शशाक भिदुश्च शक्र ।
तद्युक्तमेव विवुधा प्रवदन्ति कोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचल-सश्रित ते ।।३५।।

पूर्वं त्वया सदुपकारपरेण तेजो–
लेश्या हता जिन ! विधाय सुशीतलेश्याम् ।
अद्यापि युक्तमिदमीश ! तथा भयाग्नि,
त्वन्नाम-कीर्तन-जल शमयत्यशेषम् ।।३६।।

ऊर्ध्वस्य ते विलमुखे वचन निशम्य,
यच्चण्डकौशिक-फणी शमतामवाप ।
तत्साम्प्रत तमपि नो स्पृशतीह नागस्,
त्वन्नाम-नागदमनी हृदि यस्य पुस. ।।३७।।

तुर्यारके विचरसिस्म हि यत्र देशे,
तत्र त्वदागमत ईतिकुल ननाश ।
अद्यापि तद्भयमह - र्मणिधामरूपात्,
त्वत्कीर्तनात्-तम इवाशु भिदामुपैति ।।३८।।

निर्विग्रहा सुगतय शुभमानसाशा,
सच्छुक्लपक्ष - विभवाश्चरणेषु रक्ता ।
रम्याणि मौक्तिकफलानि च साधुहसास्,
त्वत्पाद - पकजवनाश्रयिणो लभन्ते ।।३९।।

ससार - कानन - परिभ्रमण - श्रमेण,
क्लान्ता. कदापि दधते वचन कृत ते ।
ते नाम कामितपदे जिन ! देहभाजस्,
त्रास विहाय भवत स्मरणाद् व्रजन्ति ।।४०।।
सर्वेन्द्रियै पटुतर चतुरस्रशोभ,
त्वा सत्प्रशस्यमिह दृश्यतर प्रदृश्य ।
तेऽपि त्यजन्ति निजरूपमद विभो ! ये,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपा ।।४१।।
छित्त्वा दृढानि जिन ! कर्म-निबधनानि,
सिद्धस्त्वमापिथ च सिद्धपद प्रसिद्धम् ।
एव तवानुकरण दधते तकेऽपि,
सद्य· स्वय विगतबन्धभया भवन्ति ।।४२।।
न व्याधिराधिरतुलोऽपि न मारिरार,
नो विड्वरोऽशुभतरो न दरो ज्वरोऽपि ।
व्यालोऽनलोऽपि न हि तस्य करोति कष्ट,
यस्तावक स्तवमिम मतिमानधीते ।।४३।।
त्वत्स्तोत्र-मौक्तिक-लता सुगुणा सुवर्णा,
त्वन्नाम-धाम सहिता रहिता च दोषै ।
कण्ठे य ईश ! कुरुते धृतधर्मवृद्धिस्,
त मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मी ।।४४।।
रस-गुण-मुनि-भूमेऽब्देऽत्र भक्तामरस्थै
चरम-चरम-पादै पूरयन् सत्समस्या ।
सुगुरु 'विजयहर्षा' वाचकास्तद्विनेयश्,
चरम-जिननुतिं ज्ञो 'धर्मसिहो' व्यधत्त ।।४५।।

इति उपाध्याय श्री धर्मवर्धनगणि-कृत

वीरभक्तामर-स्तोत्रम्

कल्याणमंदिर-स्तोत्र

कल्याण - मदिर - मुदार - मवद्य - भेदि
भीताभय-प्रद-मनिन्दित-मङ्घ्रि - पद्मम् ।
संसार - सागर - निमज्जदशेष - जन्तु–
पोतायमान - मभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

यस्य स्वय सुरगुरुर् - गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्र सुविस्तृत-मतिर् न विभुर्-विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठ - स्मय - धूमकेतोस्
तस्याहमेष किल सस्तवन करिष्ये ॥२॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितु स्वरूप–
मस्मादृशा. कथमधीश ! भवन्त्यधीशा. ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर् यदि वा दिवान्धो
रूप प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मे. ? ॥३॥

मोह - क्षया - दनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो
नून गुणान् गणयितु न तव क्षमेत ।
कल्पान्त-वान्त-पयस. प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर् ननु रत्न - राशिः ॥४॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तव लसदसख्य - गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहु-युग वितत्य
विस्तीर्णता कथयति स्वाधियाम्बु-राशे. ॥५॥

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश !
वक्तु कथ भवति तेषु ममावकाश ?
जाता तदेव - मसमीक्षित - कारितेय
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

आस्ता-मचिन्त्य-महिमा जिन ! सस्तवस्ते
नामाऽपि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहत - पान्थ - जनान् निदाघे
प्रीणाति पद्म - सरस सरसोऽनिलोऽपि ।।७।।

हृद्-वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिली भवन्ति
जन्तो क्षणेन निविडा अपि कर्म-बन्धाः ।
सद्यो भुजगममया इव मध्य - भाग–
मभ्यागते वन - शिखण्डिनि चन्दनस्य ।।८।।

मुच्यत एव मनुजा सहसा जिनेन्द्र !
रौद्ररुपद्रव - शतैस् - त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गो - स्वामिनि स्फुरित - तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशव प्रपलायमानै ।।९।।

त्व तारको जिन ! कथ भविना त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून–
मन्तर्गतस्य मरुत. स किलानुभाव ।।१०।।

यस्मिन् हर - प्रभृतयोऽपि हत - प्रभावा.
सोऽपि त्वया रति-पति क्षपित क्षणेन ।
विध्यापिता हुत - भुज पयसाऽथ येन
पीत न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ।।११।।

स्वामिननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्नास्–
त्वा जन्तव. कथमहो हृदये दधाना ?
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महता यदि वा प्रभाव ।।१२।।

क्रोधस्त्वया यदि विभो ! प्रथम निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथ किल कर्म-चौरा ?
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिराऽपि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ।।१३।।

त्वा योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप—
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज-कोश-देशे ।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य—
दक्षस्य सम्भवि पद ननु कर्णिकाया ।।१४।।

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविन. क्षणेन
देह विहाय परमात्म-दशा व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपल - भावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदा. ।।१५।।

अन्त सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्व
भव्यै कथ तदपि नाशयसे शरीरम् ?
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि
यद् विग्रह प्रशमयन्ति महानुभावा ।।१६।।

आत्मा मनीषिभिरय त्वदभेदबुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभाव ।
पानीयमप्यमृत - मित्यनुचिन्त्यमान
किं नाम नो विषविकार-मपाकरोति ।।१७।।

त्वामेव वीततमस परवादिनोऽपि
नून विभो हरिहरादि-धिया प्रपन्ना ।
किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शखो
नो गृह्यते विविध - वर्णं - विपर्ययेण ।।१८।।

धर्मोपदेश - समये सविधानुभावा—
दास्ता जनो भवति ते तरुरप्यशोक ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोक ।।१९।।

चित्र विभो ! कथमवाङ्मुख - वृन्तमेव
विष्वक् पतत्यविरला सुर-पुष्प-वृष्टि ।
त्वद् - गोचरे सुमनसा यदि वा मुनीश !
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ।।२०।।

स्थाने गभीर - हृदयोदधि - सम्भवाया
पीयूषता तव गिर समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यत॰ परम - सम्मद - सङ्गभाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ।।२१।।

स्वामिन् ! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचय सुर - चामरौघा ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि - पुङ्गवाय
ते नूनमूर्ध्व - गतय खलु शुद्धभावा ।।२२।।

श्यामं गभीर - गिरमुज्ज्वल - हेमरत्न—
सिंहासनस्थमिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैश्—
चामीकराद्रि - शिरसीव नवाम्बुवाहम् ।।२३।।

उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन
लुप्तच्छदच्छविरशोक - तरुर्बभूव ।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग !
नीरागता व्रजति को न सचेतनोऽपि ।।२४।।

भो भो प्रमादमवधूय भजध्वमेन–
मागत्य निर्वृ तिपुरी प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभ सुर - दुन्दुभिस्ते ॥२५॥

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !
तारान्वितो विधुरय विहताधिकार ।
मुक्ताकलाप - कलितोल्लसि - तातपत्र–
व्याजात् त्रिधा धृततनुर् ध्रुवमभ्युपेत ॥२६॥

स्वेन प्रपूरित - जगत्त्रय - पिण्डितेन
कान्ति-प्रताप-यशसामिव सचयेन ।
माणिक्य - हेम - रजत - प्रविनिर्मितेन
साल-त्रयेण भगवन् ! नभितो विभासि ॥२७॥

दिव्य-स्रजो जिन ! नमत्-त्रिदशाधिपाना–
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलिबन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वाऽपरत्र
त्वत्-सगमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

त्व नाथ ! जन्म - जलधे-विपराङ्मुखोऽपि
यत्तारयस्यसुमतो निज - पृष्ठ-लग्नान् ।
युक्त हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव
चित्र विभो ! यदसि कर्म-विपाक-शून्य ॥२९॥

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक ! दुर्गतस्त्व
किं वाऽक्षर-प्रकृतिरप्य-लिपिस्त्वमीश !
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव
ज्ञान त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतु. ॥३०॥

प्राग्भार-सभृत-नभासि रजासि रोषा–
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायाऽपि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव पर दुरात्मा ।।३१।।

यद् गर्जदूर्जित - घनौघमदभ्र - भीम
भ्रश्यत्तडिन् मुसलमासल - घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारि दध्रे
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तर-वारि कृत्यम् ।।३२।।

ध्वस्तोर्ध्व-केश - विकृताकृति - मर्त्यमुण्ड–
प्रालम्बभृद्-भयद - वक्त्र विनिर्यदग्नि ।
प्रेतव्रज ´प्रति भवन्तमपीरितो य
सोऽस्याऽभवत् प्रतिभव भव - दु ख-हेतु ।।३३।।

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य–
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्यकृत्या. ।
भक्त्योल्लसत् पुलक-पक्ष्मल-देह-देशा
पादद्वय तव विभो ! भुवि जन्मभाज ।।३४।।

अस्मिन्नपार-भव - वारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवणगोचरता गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे
किं वा विपद्-विषधरी सविध समेति ।।३५।।

जन्मान्तरेऽपि तव पाद-युग न देव !
मन्ये मया महित-मीहित-दान-दक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवाना
जातो निकेतनमह मथिता - शयानाम् ।।३६।।

नून न मोह - तिमिरावृत - लोचनेन
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्था
प्रोद्यत् - प्रबन्ध - गतय कथमन्यथैते ।।३७।।

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव ! दु ख-पात्र
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्या ।।३८।।

त्व नाथ ! दु खि-जन-वत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्य - पुण्यवसते ! वशिना वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दया विधाय
दु खाकुरोद्दलन - तत्परता विधेहि ।।३९।।

नि.सख्य - सार - शरण शरण शरण्य-
मासाद्य सादित - रिपु - प्रथितावदातम् ।
त्वत् - पाद-पकजमपि प्रणिधान-वन्ध्यो,
वध्योऽस्मि चेद् भुवन-पावन! हा हतोऽस्मि ।।४०।।

देवेन्द्र - वन्द्य ! विदिताखिल-वस्तु-सार
ससार - तारक विभो भुवनाधिनाथ !
त्रायस्व देव करुणाह्रद ! मा पुनीहि
सीदन्तमद्य भयद - व्यसनाम्बु - राशे. ।।४१।।

यद्यस्ति नाथ ! भवदङ्घ्रि - सरोरुहाणा
भक्ते फल किमपि सन्तत-सचितायाः ।
तन्मे त्वदेक - शरणस्य शरण्य ! भूया.
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ।।४२।।

इत्थ समाहित-धियो विधिवज्-जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्-पुलक-कञ्चुकिताङ्गभागाः ।
त्वद्-बिम्ब-निर्मल - मुखाम्बुज - बद्धलक्ष्या
ये सस्तव तव विभो ! रचयन्ति भव्या ।।४३।।

जन - नयन - कुमुद - चन्द्र !
प्रभास्वरा. स्वर्ग-सम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलित - मल - निचया
अचिरान् - मोक्ष प्रपद्यन्ते ।।४४।।

इति श्री सिद्धसेनदिवाकर-विरचित कल्याणमदिर-स्तोत्रम्



चिंतामणि-पार्श्वनाथ-स्तोत्र

कि कर्पूर-मय सुधारस-मय कि चन्द्ररोचिर्मय
कि लावण्यमय महामणि-मय कारुण्यकेली-मयम् ।
विश्वानन्द-मय महोदय-मय शोभा-मय चिन्मय
शुक्लध्यान-मय वपुर्जिनपतेर् भूयाद् भवालम्बनम् ।।१।।

पाताल कलयन् धरा धवलयन् नाकाशमापूरयन्
दिक्चक्र क्रमयन् सुरासुरनर-श्रेणि च विस्मापयन् ।
ब्रह्माण्ड सुखयन् जलानि जलधे फेनच्छलाल्-लोलयन्
श्री चिंतामणि-पार्श्व-सभवयशो-हसश्चिर राजते ।।२।।

पुण्याना विपणिस्तमो-दिनमणि कामेभकुम्भे सृणिर्
मोक्षे निस्सरणि सुरेन्द्रकरिणी ज्योति प्रकाशारणि ।
दाने देवमणिर् नतोत्तमजन-श्रेणि. कृपासारिणी
विश्वानन्द-सुधा-घृणिर् भवभिदे श्री पार्श्वचितामणि ।।३।।

श्री चिंतामणि पार्श्व ! विश्वजनता-सजीवनस् त्व मया,
दृष्टस्तात ! तत. श्रिय समभवन्-नाशक्रमा-चक्रिणाम् ।
मुक्ति. क्रीडति हस्तयोर्-बहुविध सिद्ध मनोवाञ्छित
दुर्दैवं दुरित च दुर्दिनभय कष्ट प्रणष्ट मम ।।४।।

यस्य प्रौढतम-प्रतापतपन प्रोद्दामधामा जगज्-
जङ्घाल कलि-काल-केलि-दलनो मोहान्ध-विध्वसक' ।
नित्योद्योत-पद समस्त-कमला-केली-गृह राजते,
स श्रीपार्श्वजिनो जनेहितकरश् चितामणि. पातु माम् ।।५।।

विश्व-व्यापि-तमो हिनस्ति तरणिर् बालोऽपि कल्पाकुरो,
दारिद्र्याणि गजावली हरि-शिशु काष्ठानि वह्नेः कणः ।
पीयूषस्य लवोऽपि रोग-निवह यद्वत्-तथा ते विभो !
मूर्ति स्फूर्तिमती-सती त्रिजगती-कष्टानि हर्तुं क्षमा ।।६।।

श्री चिंतामणि - मत्रमोंकृति - युत ह्रींकार-साराश्रित,
श्रीमर्हन् - नमिऊण-पास-कलित त्रैलोक्य-वश्यावहम् ।
द्वेधाभूत - विषापह विषहर श्रेय - प्रभावाश्रय
सोल्लास व-स-हांकित जिनफुलिं-गानन्दद देहिनाम् ।।७।।

ह्रीं-श्रींकारवर नमोऽक्षरपर ध्यायन्ति ये योगिनो,
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्वमधिप चिंतामणी-सज्ञकम् ।
भाले वाम - भुजे च नाभि-करयोर्-भूयो भुजे दक्षिणे,
पश्चादष्ट-दलेषु ते शिव-पद द्वि-त्रैर्-भवैर्-यान्त्यहो ।।८।।

नो रोगा नैव शोका, न कलह-कलना, नारि-मारि-प्रचारा
नैवाधिर् नासमाधिर्, न च दर-दुरिते, दुष्ट-दारिद्रता नो ।
नो शाकिन्यो ग्रहा नो, न हरि-करि-गणा, व्याल-वेताल-जाला
जायन्ते पार्श्वचिंता-मणि-नति-वशत , प्राणिना भक्तिभाजाम् ।।

गीर्वाण - द्रुम - धेनु - कुभ-मणयस्-तस्यागणे रिंगिणो,
देवा दानव-मानवा सविनय तस्मै हित ध्यायिन ।
लक्ष्मीस्-तस्य वशाऽवशेव गुणिना ब्रह्माण्ड-सस्थायिनी,
श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथमनिश सस्तौति यो ध्यायति ।।१०।।

इति जिनपति पार्श्व पार्श्व - पार्श्वाख्य - यक्ष.
प्रदलित - दुरितौघ. प्रीणित - प्राणि - सार्थं ।
त्रिभुवन - जन - वाच्छा - दान - चिंतामणीक
शिव - पद - तरुबीज बोधिबीज ददातु ।।११।।

श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथ-महिमो-पेत पवित्र स्फुरत् ,
स्तोत्र सस्कृत-भाषयाऽत्र किमपि व्यावर्णित भावत ।
श्रीमत् प्रीतविनीत-सागर-कवेः शिष्येण भोजाब्धिनो–
पाध्यायेन सुखावबोध - विधये भव्यात्मना कारणम् ।।१२।।

इति श्री उपाध्याय-भोजसागर-विरचित
चिंतामणि-पार्श्वनाथ-स्तोत्रम्



महावीराष्टक-स्तोत्र

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश् चिदचित
सम भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसतोऽन्तरहिता ।
जगत् साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ।।१।।

अताम्र यच्चक्षु कमल-युगल स्पन्द-रहित
जनान् कोपाऽपाय प्रकटयति वाऽभ्यन्तरमपि ।
स्फुट मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाऽति-विमला
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ।।२।।

नमन् - नाकेन्द्राली - मुकुट - मणि - भा - जाल-जटिल,
लसत् पादाम्भोज-द्वयमिह यदीय तनु-भृताम् ।
भव-ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जल वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ।।३।।

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दु र इह,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुण-गण-समृद्ध सुख-निधि ।
लभते सद्भक्ता· शिव-सुख-समाज किमु तदा,
महावीर - स्वामी नयन - पथ -गामी भवतु मे ।।४।।

कनत् - स्वर्णाभासोऽप्यपगत - तनुर्ज्ञान - निवहो,
विचित्रात्माऽप्येको नृपतिवर - सिद्धार्थ - तनय. ।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगत-भव-रागोद्भुत-गतिर्
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ।।५।।

यदीया वाग्गगा विविध-नय-कल्लोल-विमला
बृहज्-ज्ञानाम्भोभिर्-जगति जनता या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालै परिचिता,
महावीर स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ।।६।।

अनिर्वारोद्रेकस् - त्रिभुवन - जयी काम - सुभट
कुमारावस्थायामपि निज - बलाद्येन विजित ।
स्फुरन् - नित्यानन्द - प्रशम - पद - राज्याय स जिनो
महावीर - स्वामी नयन - पथ-गामी भवतु मे ।।७।।

महामोहातक प्रशमन - पराऽऽकस्मिक - भिषग्
निरापेक्षो बन्धुर् विदित - महिमा - मगल - कर ।
शरण्य साधूना भव - भय - भृतामुत्तम - गुणो,
महावीर - स्वामी नयन - पथ - गामी भवतु मे ।।८।।

महावीराष्टक स्तोत्र, भक्त्या भागेन्दुना कृतम् ।
य पठेच्-छृणुयाच्-चापि, स याति परमा गतिम् ॥९॥

इति श्री पंडित भागचन्द्र-विरचित महावीराष्टक-स्तोत्रम्

उवसग्गहर-स्तोत्र

उवसग्ग-हर पास, पास वदामि कम्म-घण-मुक्क ।
विसहर - विस - निन्नास, मगल - कल्लाण - आवास ॥१॥
विसहर-फुल्लिग-मत, कण्ठे धारेइ जो सया मणुओ ।
तस्स गह - रोग - मारी, दुट्ठ-जरा जति उवसाम ॥२॥
चिट्ठउ दूरे मन्तो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ ।
नर - तिरिएसु वि जीवा, पावति न दुक्ख - दोहग्ग ॥३॥
तुह सम्मत्ते लद्धे, चिन्तामणि - कप्पपायवब्भहिए ।
पावति अविग्घेण, जीवा अयरामर ठाण ॥४॥
इअ सथुओ महायस !, भत्तिब्भर-निब्भरेण हियएण ! ।
ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे - भवे पास जिणचद ॥५॥

—आचार्य भद्रबाहु स्वामी

घंटाकर्ण-स्तोत्र

ॐ घटाकर्णो महावीर, सर्व-व्याधि-विनाशक ।
विस्फोटक भये प्राप्ते, रक्ष - रक्ष महाबल ॥
यत्र सतिष्ठसे देव, लिखितोऽक्षर पक्तिभि ।
रोगास्तत्र प्रणश्यन्ति, वात-पित्त-कफोद्भवा ॥

तत्र राजभय नास्ति, यान्ति कर्णजपा क्षयम् ।
शाकिनी-भूत-वैताला, राक्षसा प्रभवन्ति नो ।।

नाकाले मरण तस्य, न च सर्पेण दश्यते ।
अग्नि-चोर-भय नास्ति, नास्ति तस्याप्यरि-भयम् ।।

ॐ ह्रीँ श्रीँ घटाकर्ण ! नमोऽस्तुते ॐ नर वीर !
ठ ठ ठ स्वाहा

सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद् दीक्षा-ग्रहणोत्सवे यदखिल-ज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाण-गमोत्सवे जिनपते पूजाद्भुत तद्भवै,
सगीतस्तुतिमगलै प्रसरता मे सुप्रभातोत्सव ।।१।।

श्रीमन्नतामर - किरीट - मणि - प्रभाभि,
रालीढ - पादयुग - दुर्धर कर्मदूर !
श्री नाभिनदन ! जिनाजित ! सभवाख्य !
त्वद् - ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।२।।

छत्रत्रय - प्रचल - चामर - वीज्यमान !
देवाभिनदन ! मुने ! सुमते ! जिनेन्द्र ! ।
पद्मप्रभारुण - मणिद्युति भासुराङ्ग !
त्वद - ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।३।।

अर्हन् सुपार्श्व कदलीदल वर्ण गात्र !
प्रालेयतार गिरि मौक्तिक वर्ण गौर ! ।
चद्रप्रभ - स्फटिक पाण्डुर ! पुष्पदत !
त्वद् - ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।४।।

सतप्त-काचन-रुचे ! जिन ! शीतलाख्य !
श्रेयान् ! विनष्ट-दुरिताष्ट-कलक - पक !
बधूक - बधुर - रुचे ! जिन ! वासुपूज्य !
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।५।।

उद्दण्डदर्पकरिपो ! विमलामलाङ्ग !
स्थेमन् - ननतजिदनन्तसुखाम्बुराशे !
दुष्कर्म - कल्मष - विवर्जित ! धर्मनाथ !
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।६।।

देवामरी - कुसुम - सन्निभ ! शातिनाथ !
कुथो ! दयागुण - विभूषण - भूषिताङ्ग !
देवाधिदेव ! भगवन्नर ! तीर्थनाथ !
त्वद् - ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।७।।

यन्मोहमल्ल ! मदभञ्जन ! मल्लिनाथ !
क्षेमकरावितथशासन ! सुव्रताख्य !
सत्सपदा - प्रशमितो ! नमि - नामधेय !
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।८।।

तापिच्छ-गुच्छ-रुचिरोज्ज्वल ! नेमिनाथ !
घोरोपसर्ग-विजयिन् ! जिन ! पार्श्वनाथ !
स्याद्वाद-सूक्ति-मणि-दर्पण ! वर्द्धमान !
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।९।।

प्रालेयनील - हरितारुण - पीतभास
यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथ मुनीन्द्रा ।
ध्यायन्ति सप्ततिशत जिनवल्लभाना,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सतत मम सुप्रभातम् ।।१०।।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मागल्य परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशति - तीर्थाना, सुप्रभात दिने-दिने ।।११।।

सुप्रभात सुनक्षत्र, श्रेय प्रत्यभिनन्दिनम् ।
देवता ऋषय सिद्धा, सुप्रभात दिने-दिने ।।१२।।

सुप्रभात तवैकस्य, वृषभस्य महात्मन ।
येन प्रवर्तित तीर्थं, भव्य - सत्त्व - सुखावहम् ।।१३।।

सुप्रभात जिनेन्द्राणा, ज्ञानोन्मीलित-चक्षुषाम् ।
अज्ञान - तिमिरान्धाना, नित्यमस्तमितो रवि ।।१४।।

सुप्रभात जिनेन्द्रस्य, वीर कमललोचन ।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्ल-ध्यानोग्र - वह्निना ।।१५।।

सुप्रभात सुनक्षत्र, सुकल्याण सुमगलम् ।
त्रैलोक्य हितकर्तृणा, जिनानामेव शासनम् ।।१६।।



सती यंत्र स्तोत्र

आदौ सती सुभद्रा च, पातु पश्चात्तु सुदरी ।
ततश्चदनवाला च, सुलसा च मृगावती ।।१।।

राजीमती ततश्चूला, दमयती तत परम् ।
पद्मावती शिवा सीता, ब्राह्मी पुनश्च द्रौपदी ।।२।।

कौशल्या च तत कुन्ती, प्रभावती सती वरा ।
सती - नामाक - यन्त्रोऽय, चतुस्त्रिशत् - समुद्भव. ।।३।।

यस्य पार्श्वे सदा यन्त्रो, वर्तते तस्य साम्प्रतम् ।
भूरि निद्रा न चायाति, न याति भूतप्रेतकाः ।।४।।

ध्वजाया नृपतेर्यस्य, यन्त्रोऽय वर्तते सदा ।
तस्य शत्रुभय नास्ति, सग्रामेऽस्य जयः सदा ।।५।।

गृहद्वारे सदा यत्रो, यत्रोऽय ध्रियते वर ।
कार्मणादिकतत्रस्य, न स्यात् तस्य पराभव. ।।६।।

स्तोत्र सतीना सुगुरु - प्रसादात्
कृत मयोद्योत - मृगाधिपेन ।
य स्तोत्रमेतत् पठति प्रभाते
स प्राप्नुते श सतत मनुष्य ।।७।।

सुभाषितं

सर्वारिष्ट-प्रणाशाय, सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धि-निधानाय, गौतमाय नमो नम. ।।१।।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदय तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्, यावन्निर्वाण-सम्प्राप्ति ।।२।।

सर्वे भवन्तु सुखिन , सर्वे सन्तु निरामया. ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु खभाग् भवेत् ।।३।।

सुधर्म सेवनीयोऽस्ति, रोगार्त्तैरिव भेषजम् ।
कर्मकफादिक हन्ता, स एव परमौषधम् ।।४।।

—वैराग्यरसमजरी ३/६२

सुधर्मात्सुकुले जन्म, सपदारोग्यमेव च ।
विद्यासिद्धि प्रसिद्धिश्च, भवतीति स सेव्यताम् ।।५।।

धर्मादधिगतैश्वर्यो, यो नित्य त च सेवते ।
स हि शुभगतिर्भावी, कृतज्ञेषु शिरोमणि ।।६।।

धर्मादधिगतैश्वर्यो, यस्तमेव निहन्ति च ।
नास्य शुभगतेर्लाभोऽकृतज्ञाना शिरोमणि. ।।७।।

—वही ३/६३-८४-८५

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्य सन्निहितो मृत्यु, कर्त्तव्यो धर्मसग्रहः ।।८।।

संसारेऽस्मिन् जनिमृतिजरा - तापतप्ता मनुष्या.,
सम्प्रेक्षन्ते शरणमनघ दु:खतो रक्षणार्थम् ।
नो तद् द्रव्य न च नरपतिर्नापि चक्री सुरेन्द्रः,
किन्त्वेकोऽय सकलसुखदो धर्म एवास्ति नान्य. ।।९।।
—भावनाशतक १७

रोगादि - पीडितमतीव कृश विलोक्य
किं मूढ ! रोदिषि विहाय विचारकृत्यम् ।
नाशे तनोस्तव न नश्यति कश्चिदशो
ज्योतिर्मय स्थिरमज हि तव स्वरूपम् ।।१०।।
—वही ३७

मृत्युर्न जन्म न जरा न च रोगभोगौ,
ह्रासो न वृद्धिरपि नैव तवास्ति किंचिद् ।
एतान्नु कर्ममयपुद्गलजान् विकारान्,
मत्वा निजान् भजसि किं वहिरात्मभावम् ।।११।।
—वही ३८

पटोत्पत्तिमूल यथा तन्तुवृ द,
घटोत्पत्तिमूल यथा मृत्समूहः ।
तृणोत्पत्तिमूल यथा तस्य वीज,
तथा कर्ममूल च मिथ्यात्वमुक्तम् ।।१२।।
—वही ५०

विनौषध शाम्यति नो गदो यथा,
विनाशन शाम्यति नो क्षुधा यथा ।
विनाम्बु - पानेन तृपा-व्यथा यथा,
विना व्रत कर्मरुगास्रवस्तथा ।।१३।।
—वही ६०

सर्वान्तवत्तद्गुण - मुख्य - कल्प,
सर्वान्तशून्य च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वाऽऽपदामन्तकर निरन्त,
सर्वोदय तीर्थमिद तवैव ॥१४॥

—युक्त्यनुशासन ६१

यथा सुवर्णस्य शुचि - स्वरूप,
दीप्त कृशानुः प्रकटीकरोति ।
तथाऽऽत्मन. कर्मरजो निहत्य,
ज्योतिस्तपस्तद् विशदीकरोति ॥१५॥

—शातसुधारस भावना ७/२

विविधोपद्रव देहमायुश्च क्षणभगुरम् ।
कामालम्ब्य धृति मूढै , स्वश्रेयसि विलम्ब्यते ? ॥१६॥

—वही १२/७

व्याप्नोति महती भूमि, वटबीजाद् यथा वट ।
तथैकममता-बीजात्, प्रपचस्यापि कल्पना ॥१७॥

—अध्यात्मसार

अज्ञानान्धस्य लोकस्य, ज्ञानाञ्जन - शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन, तस्मै श्री - गुरुवे नम· ॥१८॥

य परात्मा स एवाऽह, योऽह स परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्यो, नान्य कश्चिदिति स्थितिः ॥१९॥

—समाधिशतक ३१

यो न वेत्ति पर देहादेवमात्मानमव्ययम् ।
लभते न स निर्वाण, तप्त्वापि परम तप ॥२०॥

अचेतनमिद दृश्यमदृश्य चेतन ततः ।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि,मध्यस्थोऽह भवाम्यत ॥२१॥

तद्ब्रूयात् तत्परान् पृच्छेत्, तदिच्छेत् तत्परो भवेत् ।
येनाऽविद्यामय रूप, त्यक्त्वा विद्यामय व्रजेत् ।।२२।।
—वही ३३-४६-५३

बहिस्तुष्यति मूढात्मा, पिहितज्योतिरन्तरे ।
तुष्यत्यन्त. प्रबुद्धात्मा, बहिर्व्यावृत्त-कौतुक. ।।२३।।

नष्टे वस्त्रे यथात्मान, न नष्ट मन्यते तथा ।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मान, न नष्ट मन्यते बुध. ।।२४।।

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य, चित्ते यस्याऽचला घृति ।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला घृति ।।२५।।
—वही ६०-६४-७१

आत्मन्येवाऽऽत्मधीरन्या, शरीरगतिमात्मन ।
मन्यते निर्भय त्यक्त्वा, वस्त्र वस्त्रान्तरग्रहम् ।।२६।।

व्यवहारे सुषुप्तो य, स जागर्त्यात्मगोचरे ।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन्, सुषुप्तश्चात्मगोचरे ।।२७।।
—वही ७७-७८

यत्रैवाहित धी पुस, श्रद्धा तत्रैव जायते ।
यत्रैव जायते श्रद्धा, चित्त तत्रैव लीयते ।।२८।।

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि, न नाशोऽस्ति यथात्मन ।
तथा जागरदृष्टेऽपि, विपर्यासो विशेषत ।।२९।।
—वही ९५-१०१

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते,
बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्,
किमात्मना यो न जितेंद्रियो भवेत् ।।३०।।

विद्या ददाति विनय, विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं तत. सुखम् ॥३१॥

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य, द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे, द्वितीयाद्रियते सदा ॥३२॥

—हितोपदेश

आहारनिद्राभय - मैथुन च,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनाः पशुभि समाना ॥३३॥

उद्यमेन हि सिध्यति, कार्याणि न मनोरथैं ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगा ॥३४॥

मातृवत्परदारेषु, पर-द्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु, य पश्यति स पण्डित ॥३५॥

—वही

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षण. सुत,
सुशासिता स्त्री नृपति सुसेवित. ।
सुचिन्त्य चोक्त सुविचार्य यत्कृत,
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥३६॥

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम. ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसन, श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिद हि महात्मनाम् ॥३७॥

—वही

तद्ब्रूयात् तत्परान् पृच्छेत्, तदिच्छेत् तत्परो भवेत् ।
येनाऽविद्यामय रूप, त्यक्त्वा विद्यामय व्रजेत् ।।२२।।
—वही ३३-४६-५३

वहिस्तुष्यति मूढात्मा, पिहितज्योतिरन्तरे ।
तुष्यत्यन्त· प्रबुद्धात्मा, वहिर्व्यावृत्त-कौतुक. ।।२३।।

नष्टे वस्त्रे यथात्मान, न नष्ट मन्यते तथा ।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मान, न नष्ट मन्यते बुध ।।२४।।

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य, चित्ते यस्याऽचला घृति ।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला घृति ।।२५।।
—वही ६०-६४-७१

आत्मन्येवाऽऽत्मधीरन्या, शरीरगतिमात्मन ।
मन्यते निर्भय त्यक्त्वा, वस्त्र वस्त्रान्तरग्रहम् ।।२६।।

व्यवहारे सुषुप्तो य, स जागर्त्यात्मगोचरे ।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन्, सुषुप्तश्चात्मगोचरे ।।२७।।
—वही ७७-७८

यत्रैवाहित धी पुस, श्रद्धा तत्रैव जायते ।
यत्रैव जायते श्रद्धा, चित्त तत्रैव लीयते ।।२८।।

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि, न नाशोऽस्ति यथात्मन ।
तथा जागरदृष्टेऽपि, विपर्यासो विशेपत ।।२९।।
-वही ९५-१०१

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते,
वलेन किं यश्च रिपून्न वाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्,
किमात्मना यो न जितेंद्रियो भवेत् ।।३०।।

विद्या ददाति विनय, विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं तत. सुखम् ॥३१॥

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य, द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे, द्वितीयाद्रियते सदा ॥३२॥

—हितोपदेश

आहारनिद्राभय - मैथुन च,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीना. पशुभि समाना ॥३३॥

उद्यमेन हि सिध्यति, कार्याणि न मनोरथै ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगा ॥३४॥

मातृवत्परदारेषु, पर-द्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु, य पश्यति स पण्डित· ॥३५॥

—वही

सुजीर्णमन्न सुविचक्षण सुत,
सुशासिता स्त्री नृपति सुसेवितः ।
सुचिन्त्य चोक्त सुविचार्य यत्कृत,
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥३६॥

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम. ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं, श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिद हि महात्मनाम् ॥३७॥

—वही

परोक्षे कार्यहतार, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृश मित्र, विपकुभ पयोमुखम् ।।३८।।

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्, कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येक वचस्येक, कर्मण्येक महात्मनाम् ।।३९।।

उपदेशो हि मूर्खाणा, प्रकोपाय न शान्तये ।
पय: पान भुजगाना, केवल विपवर्धनम् ।।४०।।

—वही

न पर वचन प्रेम्णो, न विष विषयात् परम् ।
न कोपादपर शत्रुर्न दु:ख जन्मन: परम् ।।४१।।

—चद्रप्रभचरितम् १५/१४३

उत्तमाऽध्यात्म-चिता च, मोह-चिता च मध्यमा ।
अधमा काम-चिता च, पर-चिताऽधमाधमा ।।४२।।

—परमानद पचविशतिका ४

इद तीर्थमिद तीर्थं, ये भ्रमति तमोवृता ।
आत्मतीर्थ न जानन्ति, तेपा तीर्थं निरर्थकम् ।।४३।।

विनयेन विद्या ग्राह्या, पुष्कलेन धनेन वा ।
अथवा विद्यया विद्या, चतुर्थं नैव कारणम् ।।४४।।

सत्त्वेपु मैत्री गुणिपु प्रमोद,
क्लिष्टेपु जीवेपु कृपा-परत्वम् ।
मध्यस्थ-भाव विपरीत-वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ! ।।४५।।

—अमितगति-द्वात्रिंशिका १

न सस्तरो भद्र ! समाधि-साधन,
न लोक-पूजा न च सघ-मेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्म-रतो भवाऽनिश,
विमुच्य सर्वामपि बाह्य-वासनाम् ॥४६॥

—वही २३

एक सदा शाश्वतिको ममात्मा,
विनिर्मल. साधिगम - स्वभाव ।
बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता.,
न शाश्वता: कर्मभवा स्वकीया ॥४७॥

—वही २६

कृत मयाऽमुत्र हित न चेह,
लोकेऽपि लोकेश ! सुख न मेऽभूत् ।
अस्मादृशा केवलमेव जन्म,
जिनेश ! जज्ञे भव - पूरणाय ॥४७॥

—रत्नाकर-पचविंशतिका ६

त्वत्त सुदुष्प्राप्यमिद मयाऽऽप्त,
रत्नत्रय भूरि - भव - भ्रमेण ।
प्रमाद - निद्रा - वशतो गतं तत् ।
कस्याऽग्रतो नायक ! पूत्करोमि ॥४९॥

—वही ८

आयुर्गलत्याशु न पाप - बुद्धिर्,
गत वयो नो विषयाऽभिलाष ।
यत्नश्च भैषज्य - विधौ न धर्मे,
स्वामिन् ! महा-मोह-विडम्बना मे ॥५०॥

—वही १६

श्री धर्मभूमीश्वर - राजधानी,
दुष्कर्म - पाथोज - वनी - हिमानी ।
सदेह - सदोह - लता - कृपाणी,
श्रेयासि पुष्णातु जिनेन्द्रवाणी ।।५१।।

—नमस्कार माहात्म्य, सिद्धसेन दिवाकर

ते धत्तूरतरु वपन्ति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुम,
चिन्तारत्नमपास्य काचशकल स्वीकुर्वते ते जडा. ।
विक्रीय द्विरद गिरीन्द्रसदृश क्रीणन्ति ते रासभ
ये लब्ध परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया. ।।५२।।

बुद्धे: फल तत्त्वविचारण च,
देहस्य सार व्रतधारण च ।
अर्थस्य सार किल पात्रदान
वाचा फल प्रीतिकर नराणाम् ।।५३।।

यो दर्शन - ज्ञान - सुख - स्वभाव ,
समस्त - ससार - विकार-बाह्य ।
समाधि - गम्य परमात्म - सज्ञ ,
स देवदेवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ।।५४।।

—अमितगति द्वात्रिंशिका १३

शिवमस्तु सर्वजगत , परहित-निरता भवतु भूतगणा ।
दोषा प्रयान्तु नाश, सर्वत्र सुखी भवतु लोका ।।५५।।



बड़ी साधु - वंदना

नमू अनत चौबीसी, ऋषभादिक महावीर।
इण आर्य क्षेत्र मा, घाली धर्म नी सीर ।।१।।

महाअतुल - बली नर, शूर - वीर ने धीर।
तीरथ प्रवर्तावी, पहुचा भव - जल - तीर ।।२।।

सीमधर प्रमुख, जघन्य तीर्थंकर बीस।
छै अढी द्वीप मा, जयवता जगदीश ।।३।।

एक सौ ने सत्तर, उत्कृष्ट पदे जगीश।
धन्य 'मोटा प्रभुजी, तेह ने नमाऊ शीश ।।४।।

केवली दोय कोडी, उत्कृष्टा नव कोड।
मुनि दोय सहस कोडी, उत्कृष्टा नव सहस कोड ।।५।।

विचरे छै विदेहे, मोटा तपसी घोर।
भावे करि वदू, टाले भव नी खोड ।।६।।

चौबीसे जिन ना, सगला ही गणधार।
चौदह सौ ने बावन, ते प्रणमू सुखकार ।।७।।

जिनशासन-नायक, धन्य श्री वीर जिनद।
गौतमादिक गणधर, बर्तायो आनद ।।८।।

श्री ऋषभदेव ना, भरतादिक सौ पूत।
वैराग्य मन आणी, सयम लियो अद्भूत ।।९।।

केवल उपजाव्यू, कर करणी करतूत।
जिनमत दीपावी, सगला मोक्ष पहूत ॥१०॥

श्री भरतेश्वर ना, हुआ पटोधर आठ।
आदित्यजशादिक, पहुत्या शिवपुर - वाट ॥११॥

श्री जिन-अंतर ना, हुआ पाट असख।
मुनि मुक्ति पहुत्या, टालि कर्म नो वक ॥१२॥

धन्य कपिल मुनिवर, नमी नमू अणगार।
जेणे तत्क्षण त्याग्यो, सहस-रमणी-परिवार ॥१३॥

मुनि वल हरिकेशी, चित्त मुनीश्वर सार।
शुद्ध सयम पाली, पाम्या भव नो पार ॥१४॥

वलि इखुकार राजा, घर कमलावती नार।
भग्गू ने जशा, तेहना दोय कुमार ॥१५॥

छये छती ऋद्ध छाडी, लीधो सयम-भार।
इण अल्पकाल मा, पाम्या मोक्ष-दुवार ॥१६॥

वलि सयति राजा, हिरण-आहिडे जाय।
मुनिवर गर्दभाली, आण्यो मारग ठाय ॥१७॥

चारित्र लेई ने, भेट्या गुरु ना पाय।
क्षत्री राज ऋषीश्वर, चर्चा करी चित लाय ॥१८॥

वलि दशे चक्रवर्ती, राज्य-रमणी-ऋद्धि छोड।
दशे मुक्ति पहुत्या, कुल ने शोभा च्होड ॥१९॥

इण अवसर्पिणी काल मा, आठ राम गया मोक्ष।
वलभद्र मुनीश्वर, गया पचमे देवलोक ॥२०॥

दशार्णभद्र राजा, वीर वाद्या धरि मान।
पछि इद्र हटायो, दियो छ काय - अभयदान ॥२१॥

करकडू प्रमुख, चारे प्रत्येक बुद्ध ।
मुनि मुक्ति पहुत्या, जीत्या कर्म महाजुद्ध ॥२२॥
धन्य मोटा मुनिवर, मृगापुत्र जगीश ।
मुनिवर अनाथी, जीत्या राग ने रीश ॥२३॥
बलि समुद्रपाल मुनि, राजमती रहनेम ।
केशी ने गौतम, पाम्या शिवपुर - खेम ॥२४॥
धन विजयघोष मुनि, जयघोष बलि जाण ।
श्री गर्गाचार्य, पहुत्या छै निर्वाण ॥२५॥
श्री उत्तराध्ययन मा, जिनवर करया बखाण ।
शुद्ध मन से ध्यावो, मन मे धीरज आण ॥२६॥
बलि खदक सन्यासी, राख्यो गौतम-स्नेह ।
महावीर समीपे, पच महाव्रत लेह ॥२७॥
तप कठिन करीने, झौसी आपणी देह ।
गया अच्युत देवलोके, चवि लेसे भव-छेह ॥२८॥
बलि ऋषभदत्त मुनि, सेठ सुदर्शन सार ।
शिवराज ऋषीश्वर, धन्य गागेय अणगार ॥२९॥
शुद्ध सयम पाली, पाम्या केवल सार ।
ये चारे मुनिवर, पहुच्या मोक्ष मझार ॥३०॥
भगवत नी माता, धन-धन सती देवानदा ।
बलि सती जयंती, छोड दिया घर - फदा ॥३१॥
सति मुक्ति पहुत्या, बलि ते वीर नी नद ।
महासती सुदर्शना, घणी सतियो ना वृद ॥३२॥
बलि कार्तिक सेठे, पडिमा वही शूर-वीर ।
जीम्यो मोरा ऊपर, तापस बलती खीर ॥३३॥

पछी चारित्र लीधू , मित्र एक सहस आठ धीर ।
मरी हुओ शक्रन्द्र, चवि लेसे भव - तीर ।।३४।।

वलि राय उदायन, दियो भाणेज ने राज ।
पछी चारित्र लेईने, सारचा आतम - काज ।।३५।।

गगदत्त मुनि आनद, तारण - तरण जहाज ।
मुनि कौशल रोहो, दियो घणा ने साज ।।३६।।

धन्य सुनक्षत्र मुनिवर, सर्वानुभूति अणगार ।
आराधक हुई ने, गया देवलोक मझार ।।३७।।

चवि मुक्ति जासे, वलि सिंह मुनीश्वर सार ।
वीजा पण मुनिवर, भगवती मा अधिकार ।।३८।।

श्रेणिक नो बेटो, मोटो मुनिवर मेघ ।
तजी आठ अतेउर, आण्यो मन सवेग ।।३९।।

वीर पै व्रत लेईने, वाधी तप नी तेग ।
गया विजय विमाने, चवि लेसे शिव - वेग ।।४०।।

धन्य थावच्चा पुत्र, तजी बतीसो नार ।
तेनी साथे निकल्या, पुरुष एक हजार ।।४१।।

शुकदेव सन्यासी, एक सहस शिष्य लार ।
पाच-सौ से शेलक, लीधो सयम - भार ।।४२।।

सव सहस अढाई, घणा जीवो ने तार ।
पु डरिकगिरि ऊपर, कियो पादोपगमन सथार ।।४३।।

आराधक हुई ने, कीधो खेवो पार ।
हुआ मोटा मुनिवर, नाम लिया निस्तार ।।४४।।

धन्य जिनपाल मुनिवर, दोय धन्ना हुआ साध ।
गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ।।४५ ।।

श्री मल्लीनाथ ना छह मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय ।
सर्वे मुक्ति सिधाव्या, मोटी पदवी पाय ।।४६।।

बलि जितशत्रु राजा, सुबुद्धि नामे प्रधान ।
पोते चारित्र लई ने, पाम्या मोक्ष-निधान ।।४७।।

धन्य तेतली मुनिवर, दियो छ काय अभयदान ।
पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवलज्ञान ।।४८।।

धन्य पाचे पाडव, तजी द्रौपदी नार ।
थेवरा नी पासे, लीधो सयम - भार ।।४९।।

श्री नेमि वदन नो, एहवो अभिग्रह कीध ।
मास-मासखमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध ।।५०।।

धर्मघोष तणा शिष्य, धर्मरुचि अणगार ।
कीडियो नी करुणा, आणी दया अपार ।।५१।।

कडवा तुंबा नो, कीधो सगलो आहार ।
सर्वार्थसिद्ध पहुच्या, चवि लेसे भव - पार ।।५२।।

बलि पु डरिक राजा, कु डरिक डिगियो जाण ।
पोते चारित्र लेई ने, न घाली धर्म मा हाण ।।५३।।

सर्वार्थसिद्ध पहुच्या, चवि लेसे निर्वाण ।
श्री ज्ञातासूत्र मा, जिनवर करघा बखाण ।।५४।।

गौतामादिक कुंवर, सगा अठारे भ्रात ।
सब अधकविष्णु - सुत, धारिणी ज्यारी मात ।।५५।।

तजी आठ अतेउर, काढी दीक्षा नी बात ।
चारित्र लेई ने, कीधो मुक्ति नो साथ ।।५६।।

श्री अनीकसेनादिक, छहे सहोदर भाय ।
वसुदेव ना नदन, देवकी ज्यारी माय ।।५७।।

भद्दिलपुर नगरी, नाग गाहावई जाण ।
सुलसा - घर वधिया, साभली नेम नी वाण ।।५८।।
तजी बत्तीस-बत्तीस अतेउर, नीकलिया छिटकाय ।
नल कूवेर समाना, भेटचा श्री नेमि ना पाय ।।५६।।
करी छठ - छठ पारणा, मन मे वैराग्य लाय ।
एक मास सथारे, मुक्ति विराज्या जाय ।।६०।।
वलि दारुक सारण, सुमुख - दुमुख मुनिराय ।
वलि कु वर अनाधृष्ट, गया मुक्ति-गढ माय ।।६१।।
वसुदेव ना नदन, धन-धन गजसुकुमाल ।
रूपे अति सु दर, कलावन्त वय वाल ।।६२।।
श्री नेमि समीपे, छोडचो मोह-जजाल ।
भिक्षु नी पडिमा, गया मसाण महाकाल ।।६३।।
देखी सोमिल कोप्यो, मस्तक वाधी पाल ।
खेरा ना खीरा, शिर ठविया असराल ।।६४।।
मुनि नजर न खडी, मेटी मन नी झाल ।
परीषह सही ने, मुक्ति गया तत्काल ।।६५।।
धन जाली मयाली, उवयाली आदि साध ।
साब ने प्रद्युम्न, अनिरुध साधु अगाध ।।६६।।
बलि सतनेमि दृढनेमि, करणी कीधी निर्बाध ।
दशे मुक्ति पहुच्या, जिनवर-वचन आराध ।।६७।।
धन अर्जुनमाली, कियो कदाग्रह दूर ।
वीर पै व्रत लई ने, सत्यवादी हुआ शूर ।।६८।।
करी छठ-छठ पारणा, क्षमा करी भरपूर ।
छह मासा माही, कर्म किया चकचूर ।।६९।।

कुंवर अइमुत्ते, दीठा गौतम स्वाम ।
सुणि वीर नी वाणी, कीधो उत्तम काम ।।७०।।

चारित्र लेई ने, पहुच्या शिवपुर - ठाम ।
धुर आदि मकाई, अन्त अलक्ष मुनि नाम ।।७१।।

बलि कृष्णराय नी, अग्रमहिषी आठ ।
पुत्र - बहू दोय, सच्या पुण्य ना ठाठ ।।७२।।

जादव-कुल सतिया, टाल्यो दुख उचाट ।
पहुची शिवपुर मा, ए छे सूत्र नो पाठ ।।७३।।

श्रेणिक नी राणी, काली आदिक दश जाण ।
दशे पुत्र - वियोगे, साभली वीर नी वाण ।।७४।।

चदनबाला पै, सयम लेई हुई जाण ।
तप कर देह झौसी, पहुची छै निर्वाण ।।७५।।

नदादिक तेरह, श्रेणिक नृप नी नार ।
सगली चदनबाला पै, लीधो सयम - भार ।।७६।।

एक मास सथारे, पहुची मुक्ति मझार ।
ए नेउ जणा नो, अतगड मा अधिकार ।।७७।।

श्रेणिक ना बेटा, जाली आदिक तेवीस ।
वीर पै व्रत लेईने, पाल्यो विसवावीस ।।७८।।

तप कठिन करी ने, पूरी मन जगीश ।
देवलोके पहुच्या, मोक्ष जासे तजी रीश ।।७९।।

काकन्दी नो धन्नो, तजी बतीसो नार ।
महावीर समीपे, लीधो सयम भार ।।८०।।

करी छठ-छठ पारणा, आयबिल उज्झित आहार ।
श्री वीर बखाण्यो, धन धन्नो अणगार ।।८१।।

एक मास सथारे, सर्वार्थसिद्ध पहुत ।
महाविदेह क्षेत्र मा, करसे भव नो अत ।।८२।।

धन्ना नी रीते, हुआ नव्वे सत ।
श्री अनुत्तरोववाई मा, भाखि गया भगवत ।।८३।।

सुवाहु प्रमुख, पाच - पाच सौ नार ।
तजी वीर पै लीधा, पाच महाव्रत सार ।।८४।।

चारित्र लेई ने, पाल्यो निर - अतिचार ।
देवलोके पहुच्या, सुखविपाके अधिकार ।।८५।।

श्रेणिक ना पोता, पउमादिक हुआ दस ।
वीर पै व्रत लेई ने, काढचो देह नो कस ।।८६।।

सयम आराधी, देवलोक मा जई बस ।
महाविदेह क्षेत्र मा, मोक्ष जासे लेई जस ।।८७।।

वलभद्र ना नदन, निषधादिक हुआ बार ।
तजी पचास अतेउरी, त्याग दियो ससार ।।८८।।

सहु नेमि समीपे, चार महाव्रत लीध ।
सर्वार्थसिद्ध पहुच्या, होसे विदेहे सिद्ध ।।८९।।

धन्ना ने शालिभद्र, मुनीश्वरो नी जोड ।
नारी ना बधन, तत्क्षरण नाख्या तोड ।।९०।।

घर - कुटुम्ब - कबीलो, धन - कचन नी कोड ।
मास - मासखमरण तप, टालसे भव नी खोड ।।९१।।

स्वामी सुधर्मा ना शिष्य, धन-धन जबू स्वाम ।
तजी आठ अतेउरी, मात-पिता धन-धाम ।।९२।।
प्रभवादिक तारी, पहुच्या शिवपुर - ठाम ।
सूत्र प्रवर्तावी, जग मा राख्यू नाम ।।९३।।

धन ढढण मुनिवर, कृष्णराय ना नद।
शुद्ध अभिग्रह पाली, टाल दियो भव-फद ।।९४।।
बलि खदक ऋषि नी, देह उतारी खाल।
परीषह सही ने, भव - फेरा दिया टाल ।।९५।।
बलि खदक ऋषि ना, हुआ पाच सौ शीश।
घाणी मा पील्या, मुक्ति गया तज रीश ।।९६।।
सभूति विजय - शिष्य, भद्रबाहु मुनिराय।
चौदह पूर्वधारी, चद्रगुप्त आण्यो ठाय ।।९७।।
बलि आर्द्रकुवर मुनि, स्थूलभद्र नदिषेण।
अरणक अइमुत्तो, मुनीश्वरो नी श्रेण ।।९८।।
चौबीसे जिन ना मुनिवर, सख्या अठावीश लाख।
ऊपर सहस अडतालीस, सूत्र परपरा भाख ।।९९।।
कोई उत्तम वाचो, मोढे जयणा राख।
उघाडे मुख बोल्या, पाप लगे इम भाख ।।१००।।
धन्य मरुदेवी माता, ध्यायो निर्मल ध्यान।
गज - होदे पायो, निर्मल केवल ज्ञान ।।१०१।।
धन आदीश्वर नी पुत्री, ब्राह्मी सुदरी दोय।
चारित्र लेई ने, मुक्ति गई सिद्ध होय ।।१०२।।
चौबीसे जिन नी, बडी शिष्यणी चौबीस।
सती मुक्ति पहुच्या, पूरी मन जगीश ।।१०३।।
चौबीसे जिन ना, सर्व साधवी सार।
अडतालीस लाख ने, आठ से सत्तर हजार ।।१०४।।
चेडा नी पुत्री, राखी धर्म नी प्रीत।
राजीमती विजया, मृगावती सुविनीत ।।१०५।।

पद्मावती मयणरेहा, द्रौपदी दमयती सीत ।
इत्यादिक सतिया, गई जमारो जीत ।।१०६।।

चौवीसे जिन ना, साधु - साधवी सार ।
गया मोक्ष देवलोके, हृदय राखो धार ।।१०७।।

इण अढी द्वीप मा, घरडा तपसी वाल ।
शुध पच महाव्रत धारी, नमो-नमो तिहु काल ।।१०८।।

इण यतियो सतियो ना, लीजे नित प्रति नाम ।
शुद्ध मन थी ध्यावो, एह तिरण नो ठाम ।।१०९।।

इण यतियो सतियो सू, राखो उज्ज्वल भाव ।
इम कहे ऋषि "जयमल", एह तिरण नो दाव ।।११०।।

संवत अठारा ने, वर्षं साते सिरदार ।
गढ जालोर माही, एह कह्यो अधिकार ।।१११।।

—आचार्यप्रवर श्री जयमलजी म॰ सा

साधु - वंदना

नित करू साधु जी ने वदना ।।
प्रहसम ऊठ्या भाव सु,
सुमरो पच नवकारो ए ।
सूत्र-सिद्धात ज्यारे मुख वसे,
चवदे पूरव धारो ए नित ।।१।।

नित करू साधु जी ने वदना,
आणी हरख - उमेदो ए ।
सफल करू भव नर तणो,
मिट जावे दुःख-खेदो ए · नित ।।२।।

बारह गुणो करि दीपता,
पहले पद जगदीशो ए।
देव आराधू एहवा,
जीत्या राग ने रीसो ए नित ॥३॥

गुण आठ सिद्धा तणा,
अतिशय छे इकतीसो ए।
दोय पदा रा भेला किया,
गुण हुआ पूरा बीसो ए नित ॥४॥

आचारज तीजे पदे,
दीपे गुण छत्तीसो ए।
उपाध्यायजी ने वंदना,
होइजो म्हारी निश-दीसो ए नित ॥५॥

द्वादशागी सूत्रा प्रते,
भणे ने भणावे ए।
गुण पच्चीस करि शोभता,
सेवा किया सुख पावे ए नित ॥६॥

गुण सत्ताइस करी दीपता,
विचरे छै अबारू ए।
हो जो ज्या ने म्हारी वदना,
अट्ठोत्तर सौ बारू ए नित ॥७॥

एक सौ आठ ज गुण कह्या,
नवकरवाली ना पूरा ए।
एकाग्र चित करी सुमरलो,
आखर छे अति रूडा ए नित ॥८॥

पहला जिनवर नित नमू,
आदीश्वर ना पाया ए।
शासन शुद्ध वरताय ने,
मोक्ष नगर सीधाया ए नित ॥९॥

प्रथम जिनेश्वर-सुत नमू,
एक सौ ने पूरा ए।
इण भव मुक्ति सिधाविया,
करणी कर हुआ शूरा ए नित ॥१०॥

चौरासी गणधर हुआ,
लब्धि तणा भडारो ए।
सहस चौरासी शिष्य हुआ,
लीधो सजम-भारो ए नित ॥११॥

तीन लाख शिष्यणी हुई,
सहस चालीस शिव पहुची ए।
पहली तो हुई बाई मोटकी,
जिण रो नाम छै ब्राह्मी ए नित ॥१२॥

कपिल ब्राह्मण मोटको,
सोनो लाऊ दोय मासो ए।
क्रोड़ा ही पाछो वल्यो नही,
तृष्णा रो बडो हि तमासो ए नित ॥१३॥

होवे इच्छा सो ही मागले,
बोले एम नरेशो ए।
ममता पाछी मूकि ने,
लू च्या सिर ना केसो ए नित ॥१४॥

पाच सौ भील प्रतिबोध ने,
कह्यो जिनेश्वर एमो ए।
कर्म खपावी मुगते गया,
पाम्या पदवी खेमो ए नित ॥१५॥

नमिराय हुआ मोटका,
प्रत्येक बुद्ध श्रीकारी ए।
छोडी घणी ऋद्धि - साहबी,
एक सहस अठ नारी ए नित ॥१६॥

शक्रेन्दर तिहा आविया,
करि ब्राह्मण नो रूपो ए।
दश प्रश्न तिहा पूछिया,
साभल जो तुम भूपो ए नित ॥१७॥

हेतु - कारण कह्या घणा,
न्यारा - न्यारा भेदो ए।
उत्तर दीधो आछी तरह,
आणी न मन मे खेदो ए नित ॥१८॥

इन्द्र सुणी हर्षित हुओ,
धन - धन आप री वाणी ए।
अठे ही आप उत्तम हुआ,
आगे पद निरवाणी ए नित ॥१९॥

वीर कहे गोयम भणी,
साभल जो तुम साधो ए।
पाचो इन्द्रिय पाय ने,
मत करो परमादो ए नित ॥२०॥

बहुश्रुत सब साधा भणी,
होजो म्हारो नमस्कारो ए।
आपरा गुण कहिया घणा,
सोलह उपमा श्रीकारो ए नित ॥२१॥

हरिकेशी नामे जती,
जाति तणा चडालो ए।
सेवा करे ज्या री देवता,
छ काया रा प्रतिपालो ए नित ॥२२॥

यज्ञवाडे ऊठ्या गोचरी,
बोल्या अनारज तड़की ए।
देवता भीड आया थका,
छाती घणा री धडकी ए नित ॥२३॥

डरिया ब्राह्मण तिण समै,
रायऋषीश्वर रूठा ए।
विनती कर प्रतिलाभिया,
पच द्रव्य तिहा बूठा ए नित ॥२४॥

जाति रो कारण को नही,
करणी रा फल सारो ए।
हरिकेशी मोटा मुनी,
पहुच्या मुक्ति मझारो ए नित ॥२५॥

चित्त उपदेश दियो आय ने,
ब्रह्मदत चक्रवर्ति आगे ए।
पेली वधन पड गयो,
अब कारी कैसे लागे ए नित ॥२६॥

हाथी कादा मे कळ रह्यो,
तिम मुझ ने तुम जाणो ए ।
चित्त उत्कृष्टी आदरी,
पहुत्या छे निर्वाणो ए नित ॥२७॥

इक्षुकार राजा तिहा,
राणी कमलावती सारो ए ।
भृगु पुरोहित यशा भारिया,
तेहना दोय कुमारो ए नित ॥२८॥

अनुक्रमे छ ही नीसरचा,
लीधो सजम-भारो ए ।
कर्म खपावी मुगते गया,
चवदमे अध्ययन विस्तारो ए नित ॥२९॥

सजती आहिडे नीसरचो,
मारचो मृग ने बाणो ए ।
गर्दभाली गुरु देखने,
मन मे घणो शकाणो ए नित ॥३०॥

खमजो अपराध माहरो,
इण अवसर हूँ चूको ए ।
कृपा करो हे महामुने !,
थारी वाणी रो भूखो ए नित ॥३१॥

म्हासु थे राजा डरपिया,
थासु डरपे घणा जीवो ए ।
सुणलो राजा मोटका,
मत दो नरक री नीवो ए नित ॥३२॥

भय सात ससार मे,
मरण तणो भय भारी ए।
ऋषीश्वर कोप्या पछे,
क्रोडा री कर दे छारी ए नित ।।३३।।

अभय हो राजा तुम भणी,
म्हारो भय मत राखो ए।
ओछा जीतब कारणे,
समता-रस तुम चाखो ए…नित ।।३४।।

अस्थिर राजा थारो आउखो,
जीवा ने मत सतापो ए।
थारे तो राजा साथे चालसी,
पुण्य एक, बीजो पापो ए नित.... ।।३५।।

बिजली रो झबकार ज्यो,
जैसो सझा रो भाणो ए।
डाभ - अणी जल - बिदुओ,
जैसो कु जर रो कानो ए ·नित… ।।३६।।

हय-गय-रथ-पायक दल,
सेना चार प्रकारो ए।
थे ही राजा छोड़ ने,
लेवो नी संजम-भारो ए नित… ।।३७।।

इत्यादि उपदेश दियो,
खुली अभ्यतर गाठो ए।
सजती राजा सजम लियो,
कोरे घड़े लाग्यो छाटो ए….नित… ।।३८।।

अनेक चक्रवर्ती नीसरचा,
छोडी राज - भण्डारो ए।
चौसठ सहस अतेउरी,
दो-दो वारागरण लारो ए नित ॥३९॥

भरतेश्वर जी आद दे,
दशो ही चक्रवर्ती सारो ए।
शुद्ध सजम पाल ने,
कर दियो खेवो पारो ए नित ॥४०॥

इरण सर्पिरणी माहे हुआ,
आठ राम निरवारणो ए।
बलभद्र दीक्षा आदरी,
ब्रह्मलोके सुर जारणो ए नित ॥४१॥

करकण्डू आदिक हुआ,
प्रत्येक बुद्ध श्रीकारो ए।
राय उदायी हुआ मोटका,
सोलह देश सिरदारो ए ··नित··· ॥४२॥

राय ऋषीश्वर चर्चा करी,
टाल्या आत्मिक दोषो ए।
दोनो ही कर्म खपाय ने,
जाय विराज्या मोक्षो ए···नित · ॥४३॥

दशार्णभद्र राजा नीसरचा,
कीनो महोच्छव भारी ए।
रथ सिरणगारचा बाजरणा,
साथे पाच सौ नारी ए नित · ॥४४॥

मो सम किण ही न वादिया,
मन मे एम विचारी ए।
शक्रेन्दर तिहा आय ने,
दियो मान उतारी ए नित ॥४५॥

आज्ञा एरावत ने दिवी,
हाथी (वैक्रिय) साठ हजारो ए।
एक - एक हाथी तणा,
मूण्डा पाच सौ बारो ए नित ॥४६॥

देखी ऋद्धि इदर तणी,
चित्त पाम्यो चमत्कारो ए।
इहा तो मान रहे नही,
हूँ लेऊ सजम भारो ए नित ॥४७॥

इन्द्र आय वदना करी,
धन दशारणभद्र राजा ए।
थे तो सजम आदरयो,
थारा अधिक गुण गाजा ए नित ॥४८॥

मृगापुत्र महला बैठा,
दीठा श्री अणगारो ए।
जाति - सुमिरण पामि ने,
हेठा उतरया तिण वारो ए नित ॥४९॥

आय माता ने इम कहे,
हूँ लेसू सजम - भारो ए।
ज्या ने माता जी बोलिया,
थे छो राजकुमारो ए नित ·· ॥५०॥

सजम छे वत्स दोहिलो,
जैसी खाडा नी धारो ए।
कायर ने माता दोहिलो,
सूरा ने सुखकारो ए' नित ' ॥५१॥

नरक - निगोदा दुख सह्या,
अनताऽनत विचारो ए।
उत्तर - प्रत्युत्तर हुआ घणा,
लीनो सजम - भारो ए नित ' ॥५२॥

मास संथारो आदरयो,
पहुत्या मुक्ति - मझारो ए।
सूत्र उत्तराध्ययन मे,
अध्ययन उगणीस मे भारो ए नित ॥५३॥

श्रेणिक रेवाडी नीसरयो,
दीठा अनाथी अणगारो ए।
रूप देखी अचरज थयो,
हेठो उतरयो तिण वारो ए नित ॥५४॥

कर जोडी प्रश्न पूछियो,
वय थारी सुकुमालो ए।
सजम किम धारण कियो,
क्यो भोग तज्यो इण कालो ए नित" ॥५५॥

वळता मुनिवर इम कहे,
सुण राजा मुझ बातो ए।
रक्षा करे जैसो को नही,
म्हारे माथे पर नाथो ए···नित ·· ॥५६॥

एक वचन श्री सतगुरु केरो,
जो पैठे दिल माय रे प्राणी ।
नरक गति मा ते नही जावे,
एम कहे जिनराय रे प्राणी ॥८॥

प्रात उठी ने उत्तम प्राणी,
सुणो साधुजी रो व्याख्यान रे प्राणी ।
एवा पुरुषा नी सेवा करता,
पावे अमर - विमान रे प्राणी ॥९॥

सवत् अठारह ने वर्ष अडतीसे,
बूसी गाव चौमास रे प्राणी ।
ऋषि आसकरण जी इण पर जपे,
हु तो उत्तम साधा रो दास रे प्राणी ॥१०॥

—पूज्य आ प्र श्री आसकरणजी म. सा



शांति - जाप

श्री शातिनाथ को कीजे जाप,
कोड भवा रा काटे पाप ।
शातिनाथ जी मोटा देव,
सुर - नर सारे जेहनी सेव ॥१॥

दुख - दारिद सब जावे दूर,
सुख-सपति होवे भरपूर ।
ठग फासी - गर जावे भाग,
जलती होवे शीतल आग ॥२॥

राजलोक मा कीरति घणी,
शाति जिनेश्वर माथे धणी।
जो राखे प्रभुजी नो ध्यान,
राजा देवे अधिको मान ॥३॥

गड - गूमड पीडा मिट जाय,
दोषी दुश्मन लागे पाय।
सगलो भाग्यो मन नो भर्म,
पाम्यो समकित काटो कर्म ॥४॥

सुणो प्रभु मेरी अरदास,
हूँ सेवक तुम पूरो आस।
मुझ मन - चिंतित कारज करो,
चिंता - आरति विघन हरो ॥५॥

मेटो म्हारा आल - जजाल,
प्रभु मुझने तू नयन निहाल।
आपनी कीर्ति ठामोठाम,
प्रभुजी सुधारो म्हारो काम ॥६॥

जो नित - नित प्रभुजी ने रटे,
मोती - बघा फूला कटे।
चेप लावण दोनो झड जाय,
विन औषध कट जावे छाय ॥७॥

प्रभु-नाम से आँखे निर्मल थाय,
धुंध पटल जाला कट जाय।
कमलो - पीळचो जळ-जळ झरे,
शाति जिनेश्वर साता करे ॥८॥

जग मे कोई केहनो नही,
निज अनुभव करि दीठो ए।
तिण कारण सजम लियो,
उत्तर दियो अति मीठो ए नित ॥५७॥

लाभालाभ हर्ष शोक नहि,
इत्यादिक गुण भारी ए।
कर्म खपाय मुगते गया,
ज्यारी जाऊ बलिहारी ए नित ॥५८॥

चदन सू कोई चरच ने,
कोई वसोला सू छेदे ए।
मुनिवर समता आणने,
राग-द्वेष नहि वेदे ए नित··· ॥५९॥

सवत अठारे पचावने,
फलोदी गाम चौमासो ए।
पूज्य जयमलजी रा प्रसाद सूं,
"रायचद" भणे छे हुलासो ए नित···· ॥६०॥

—स्व पू आ प्र श्री रायचद जी म सा.

लघु साधु-वन्दना

साधु जी ने वदना नित-नित कीजे,
प्रात उगन्ते सूर रे प्राणी।
नीच गति मा ते नही जावे,
पामे ऋद्धि भरपूर रे प्राणी ॥१॥

मोटा ते पच महाव्रत पाले,
छह काया रा प्रतिपाल रे प्राणी ।
भ्रमर-भिक्षा मुनि सूझती लेवे,
दोष बियालीस टाल रे प्राणी ॥२॥

ऋद्धि-सपदा मुनि कारमी जाणी,
दीधी ससार ने पूठ रे प्राणी ।
एवा पुरुषा नी सेवा करता,
आठ कर्म जाय टूट रे प्राणी ॥३॥

एक एक मुनिवर रसना - त्यागी,
एक एक ज्ञान - भडार रे प्राणी ।
एक एक वैयावच्चिया वैरागी,
जेना गुणा नो नही पार रे प्राणी ॥४॥

गुण सत्तावीस करी ने दीपे,
जीत्या परीषह बावीस रे प्राणी ।
बावन तो अनाचीरण टाले,
तेने नमाऊँ म्हारो शीश रे प्राणी ॥५॥

जहाज समान ते सत-मुनीश्वर,
भव्य जीव बेसे आय रे प्राणी ।
पर उपकारी मुनि दाम न मागे,
देवे मुक्ति पहुचाय रे प्राणी ॥६॥

साधु-चरणे जीव साता पावे,
पावे ते लील - विलास रे प्राणी ।
जन्म-जरा अने मरण मिटावे,
नावे फरी गर्भावास रे प्राणी ॥७॥

एक वचन श्री सतगुरु केरो,
जो पैठे दिल माय रे प्राणी।
नरक गति मा ते नही जावे,
एम कहे जिनराय रे प्राणी ॥८॥

प्रात उठी ने उत्तम प्राणी,
सुणो साधुजी रो व्याख्यान रे प्राणी।
एवा पुरुषा नी सेवा करता,
पावे अमर - विमान रे प्राणी ॥६॥

सवत् अठारह ने वर्ष अडतीसे,
बूसी गाव चौमास रे प्राणी।
ऋषि आसकरण जी इण पर जपे,
हु तो उत्तम साधा रो दास रे प्राणी ॥१०॥

—पूज्य आ. प्र श्री आसकरणजी म. सा



शांति - जाप

श्री शातिनाथ को कीजे जाप,
कोड भवा रा काटे पाप।
शातिनाथ जी मोटा देव,
सुर - नर सारे जेहनी सेव ॥१॥

दुख - दारिद सब जावे दूर,
सुख-सपति होवे भरपूर।
ठग फासी - गर जावे भाग,
जलती होवे शीतल आग ॥२॥

राजलोक मा कीरति घणी,
शाति जिनेश्वर माथे धणी।
जो राखे प्रभुजी नो ध्यान,
राजा देवे अधिको मान ।।३।।

गड - गूमड पीडा मिट जाय,
दोषी दुश्मन लागे पाय।
सगलो भाग्यो मन नो भर्म,
पाम्यो समकित काटो कर्म ।।४।।

सुणो प्रभु मेरी अरदास,
हूँ सेवक तुम पूरो आस।
मुझ मन - चिंतित कारज करो,
चिंता - आरति विघन हरो ।।५।।

मेटो म्हारा आल - जजाल,
प्रभु मुझने तू नयन निहाल।
आपनी कीर्ति ठामोठाम,
प्रभुजी सुधारो म्हारो काम ।।६।।

जो नित - नित प्रभुजी ने रटे,
मोती - बघा फूला कटे।
चेप लावण दोनो झड जाय,
विन औषध कट जावे छाय ।।७।।

प्रभु-नाम से आँखे निर्मल थाय,
धुध पटल जाला कट जाय।
कमलो - पीळचो जळ-जळ झरे,
शाति जिनेश्वर साता करे ।।८।।

गरमी व्याधि मिटावे रोग,
सज्जन मित्र नो मिले सयोग।
ऐसा देव न दीखे और,
नही चाले दुश्मन को जोर ॥६॥

लूटेरा सब जावे नाश,
दुर्जन फीटा होवे दास।
शातिनाथ की कीर्ति घणी,
कृपा करो तुम त्रिभुवन-धणी ॥१०॥

अरज करू छू जोडी हाथ,
नही आप सू छानी बात।
देख रह्या छो पोते आप,
काटो प्रभुजी म्हारा पाप ॥११॥

मुझ मन-चितित करिये काज,
राखो प्रभुजी म्हारी लाज।
तुम-सम जग माही नहि कोय,
तुम भजवा थी साता होय ॥१२॥

तुम पास चले नही मृगी रोग,
ताव-तेजरो न्हाखे तोड।
मरी मिटाई कीधी प्रभु सत,
तुम गुण नो नही आवे अत ॥१३॥

तुमने सुमरे साधु-सती,
तुमने सुमरे जोगी-जती।
काटो सकट राखो मान,
अविचल पद नो आपो स्थान ॥१४॥

सवत् अठारे चौराणु जाण,
देश मालवो अधिक बखाण।
शहर जावरे चातुर्मास,
हूँ प्रभु तुम चरणा रो दास ।।१५।।

"ऋषि रघुनाथ" कीधो छद,
काटो प्रभु जी म्हारा फद।
हूँ जोऊ प्रभु जी नी वाट,
मुझ आरति - चिंता सब काट ।।१६।।

—स्व पू आ प्र श्री रघुनाथ जी म सा



सीमंधर-स्तवन

पुरी 'पुखलावती' विजय कही,
पुडरिकणी नामे नगरी लही।
जिहा जिनजी उतपति पामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ।।१।।

श्रेयास पिता रुकमणी माया,
चवदे सुपना मोटा पाया।
जिण जन्म्यो पुत्र मुगत-गामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ।।२।।

घर त्यागी ने वैराग्य लियो,
दीक्षा - महोत्सव इद्र कियो।
गया ठिकाणे सिर नामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ।।३।।

देह पाच सौ धनुष तणी,
हेमवरण उपमा सु घणी।
सहस आठ लक्षण नामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥४॥

हुओ हुवे होसी रे सही,
जिन जी सू छानी बात नही।
सर्वज्ञ हुआ केवल पामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥५॥

जस-महिमा थारी अति हि घणी,
कहूँ केतली त्रिभुवन-धणी।
नाथ हुवा मोटा नामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥६॥

एक-मना हुई शुद्ध भजे,
कारा कलिया दूर तजे।
मोक्ष तणा हुवे झट कामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥७॥

राच रह्या मिथ्या-मत माही,
ए रुले जीव चउ गति माही।
भूला ने आणे है ठामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥८॥

मोक्ष तणा जो सुख चाहो,
तो तपस्या कर ल्योनी लाहो।
पाचू ही इद्रिय ने दामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥९॥

ए मानव-भव दुरलभ लाधो,
तुम दया धरम शुध आराधो।
मुगती आवे ज्यू सामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१०॥

तुम नामे दोहग - दुख टले,
तुम नामे मुगती सौख्य मिले।
टल जाय नरक तणी धामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥११॥

कदाच ससार माहि रहै,
तो उत्तम कुल मे जनम लहै।
ऋद्ध - वृद्ध बहु - धन - धामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१२॥

चौरासी लाख पूरब आयू,
वृषभ लछ्रण तन मे साहू।
मोटा प्रभु अतरजामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१३॥

चौतिस अतिशय पैतिस वाणी,
चऊ दिश मे मुख ही से जाणी।
ऊँची अति पदवी प्रभु पामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१४॥

जिन जी रा वचन हिया मे धरो,
शुद्ध मारग है सरल खरो।
मिथ्या मत ने द्यो वामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१५॥

जघन्य साधु हुवे सौ कोडी,
दश लाख जघन्य केवलि जोडी।
झाली मोटा नी झामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१६॥

हिंसा धर्म करि हुवो गहलो,
अजू वहै धुर-दिन पहलो।
दो हिव दुक्कड मिच्छामि,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१७॥

है आडा नदिया पहाड घणा,
जाणु वचन सुणू जिनराज तणा।
छै थारी छतर-छाया हामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१८॥

महाविदेह खेतर सारो,
रहे सदा चौथो आरो।
जीव घणा जिहा शिवगामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥१९॥

"ऋषि जयमल" विनती एम कहे,
कोई थारी सरधा माहि रहे।
भव-भव नी टल जाये खामी,
सुमरो श्री सीमधर स्वामी ॥२०॥

—पूज्य जैनाचार्यप्रवर श्री जयमल्लजी म सा

गौतम-रास

गुण गाऊ गौतम तणा, लब्धि तणा भडार ।
बडा शिष्य भगवत रा, जाणे सब ससार ॥१॥

प्रतिबुध्या प्रभुजी कन्हे, गणधर गौतम स्वाम ।
सयम पाली सिद्ध हुआ, लीजे नितप्रति नाम ॥२॥

श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा ॥
तीर्थनाथ त्रिभुवन धणी,
प्रभु शासन ना सरदार ।
भक्ति किया भगवत री,
मन-वाछित फल दातार जी ।
प्रभु पहुच्या मुक्ति मझार जी,
(ज्या) तीरथ थाप्या चार जी ।
चारो सघ माहे सिरिकार जी,
गौतम नाम गणधार जी ।
ज्या ने होजो म्हारो नमस्कार जी,
दाहडा मे दस-दस वार जी ॥१॥

सोलमा सोना सारिखो जी,
सुदर रूप शरीर ।
कनक कसोटी चढावियो,
भगवती मे भाख्यो वीर जी ।
दीठा हरखे हिवडो हीर जी,
स्वामी सायर जेम गभीर जी ।
वलि खम शम दम ने धीर जी,
ज्या री वाणी मीठी खीर जी ।

मीठो खीर-समुद्र नो नीर जी,
षट्काय जीवा रा पीर जी।
हुआ वीर रे तन्नु वजीर जी ॥२॥

गोरा ने घणा फूटरा जी,
कचन कोमल गात।
देह ज्या री दिपुं-दिपु करे जी,
देवता पिण कितरीक वात जी।
रोग रहित काया सात हाथ जी,
सेवा कीधी ज्या दिन ने रात जी।
घणा रह्या गुरुजी रे साथ जी,
पूछा कीधी जोडी दोनू हाथ जी।
कहि जावे कठा तक वात जी,
ज्या रे वीर माथे दिया हाथ जी" ॥३॥

प्रथम सघयण सठाण छे,
स्वामी घोर गुणे भरपूर।
घोर ब्रह्मचर्य मे भरचा,
वलि तपसी महा सूर जी।
कायर पुरुप कपे जावे दूर जी,
आठो कर्म किया चकचूर जी।
वीर रे हुआ हुकम हजूर जी,
म्हारी वदना उगते सूर जी ॥४॥

अभिग्रह कीवा आकरा,
विस्तार भगवती रे माय।
चार ज्ञान चौदह पूर्व धणी,
वलि तेजोलेश्या पिंड माय जी।

दपट राखी क्षमा मन लाय जी,
उकडू बैठा शीश नमाय जी।
वीर सू नेडा, अलगा नही थाय जी,
ज्या री करणी मे कमिय न काय जी ।।५।।

पूछा ज्या कीधी घणी जी,
आणी मन आनद।
श्रद्धा मे सशय ऊपनो,
उपज्यो कुतुहल उछरग जी।
वाद्या श्री वीर जिनद जी,
पूछिया देश - प्रदेश ने खध जी।
अनत ज्ञानी त्रिशला - नद जी,
सूत्र मेल दिया सघोसघ जी।
ज्या ने सेवे सुर - नर - वृ द जी,
जिम शोभे तारा बिच चद जी ।।६।।
सूत्र भगवती मे पूछिया जी,
प्रश्न अनेक प्रकार।
वलि अग-उपाग मे पूछिया जी,
पूछा कीधी पेले पार जी।
तीर्थनाथ काढ्यो निस्तार जी,
गौतम लीधो हृदये धार जी।
ज्यारी बुद्धि को छेह न पार जी,
गावा-नगरा किया उपकार जी।
भव जीवा रा तारणहार जी,
ज्या पुरुषा री हूँ बलिहार जी ।।७।।
इद्रभूति इम चितवे,
मोने किम नही उपजे ज्ञान।

खेद पामी प्रभु देखने,
बोलाय लिया वर्द्धमान जी।
गौतम ऊभा सन्मुख आन जी,
प्रभु दियो आदर - सम्मान जी।
मन-वाछित फल दियो दान जी,
चित्त निर्मल ज्यारो ध्यान जी।
गौतम गुण-रतना री खान जी ॥८॥
थारे ने म्हारे गोयमा,
घणा जूना काल री प्रीत।
आगे आपा भेला रह्या,
रही ल्होड - बडाई री रीत जी।
मोहनी कर्म लेवो थे जीत जी,
केवल आडी आ ही भीत जी।
शिष्य थे छो म्हारे सुविनीत जी,
रूडी छे थारी रीत जी।
पूरी थारी परतीत जी ॥९॥
अबके इण भव आतरे,
आपा दोनू बराबर होय।
वीर - वचन श्रवण सुणी,
गौतम हिवडे हर्षित होय जी।
गुरु मोटा मिलिया मोय जी,
म्हारे कमिय न राखी कोय जी।
रह्या वीर रे सामो जोय जी,
राग - द्वेष खपाया दोय जी ॥१०॥
सम्मुख वीर बखाणियो जी,
गौतम ने तिण वार।

तो सरिखो बीजो नही,
पाखड्या रो जीतनहार जी।
चर्चावादी तुरत तैयार जी,
हेतु - युक्ति अनेक प्रकार जी।
चौदह सहस्र साधु मझार जी,
बीजा साधु सहू थारे लार जी।
गौतम ! सारा मे थे सरदार जी,
हुओ हियडे हर्ष अपार जी ॥११॥
कार्तिक वद अमावसे जी,
मुक्ति गया वर्द्धमान।
इद्रभूति ने ऊपनो,
तब निर्मल केवल ज्ञान जी।
धर्म दीपायो नगर-पुर-गाम जी,
सिद्ध कीधा आतम-काम जी।
गौतम पहुच्या शिवपुर-ठाम जी,
रिख "रायचद" किया गुणग्राम जी।
धन-धन श्री गौतम स्वाम जी ॥१२॥
पूज्य जयमल्लजी रा प्रसाद थी,
कियो ज्ञान - अभ्यास।
सवत् अठारे चौतीस मे,
नवमी सुद भाद्रवे मास जी।
ए कीधो गौतम - रास जी,
सुणजो सहु मन उल्लास जी।
पायो अविचल लील-विलास जी,
शहर बीकानेर चौमास जी ॥१३॥

—स्व पूज्य आ प्र श्री रायचद्रजी म सा

गौतम-चालीसा

सद्गुरु पद-कज मधुव्रती, हृदय मधुरता लेय ।
वर्द्धमान यश विस्तरु, जो शिव-पदवी देय ॥

विनयादिक गुण पाइवे, प्रणमूं गौतम स्वामि ।
प्राप्त बुद्धि-बल-ज्ञान को, फल पाऊ शुभ कामि ॥

जय तुम गणधर गौतम स्वामी,
जय मुनीश विनयी गुणधामी ॥
वीर-शिष्य अनुपम छवि धारी,
पृथ्वी-सुत जग जिय हितकारी ॥
महा - ज्ञानि - ध्यानी सतसगी,
आतम-गुण सब ही किय अगी ॥
वज्रऋषभनाराच सघैणी,
समचउरस सठाण धरैणी ॥
सोवन तन मुनिवर के वेशा,
आनन मुखपति लुचित केशा ॥
रजोहरण कक्षागत राजे,
जीव-दया को है शुभ साजे ॥
वसुभूति - सुत जगदानन्दन,
त्रिभुवन भविकवृद के वदन ॥
विनयवान शिरोमणि गणधर,
सघ सकल के सदा सुखकर ॥
प्रभु - दर्शन - पद - परसन प्रेमी,
समकित-ज्ञान-चरण-हित क्षेमी ॥
अहंकार धारण कर आये,
अतिशय देख चरण शिर नाये ॥

संशय आप मेटि हुय सीसा,
सेवे वर्द्धमान जगदीसा ।।
जे हि दीख ते केवल दीधा,
सबके काज मनोरथ सीधा ।।
महावीर भगवान भलेरे,
गुण - बखान किये बहुतेरे ।।
सहस - नयन तेरे जस भासे,
तो दरशन अति ही अभिलासे ।।
साधु सकल मिल करत बडाई,
संघ माहि तुव कीर्ति सवाई ।।
सुर असुर नर नारक माहि,
पसरी इक तेरी महिमा हि ।।
ऋद्धि-वृद्धि सुखसिद्धि प्रसिद्धि,
तोर चरण-रज सब हि समृद्धि ।।
तन मन वचन सुमरिहे लोगा,
पावत सब विधि शुभ संजोगा ।।
तुम गणपति गणधर गण-ईशा,
तू सब दायक है असरीसा ।।
जे इ धरे तुव ध्यान हमेशा,
पारिवारिक सुख लहत अशेषा ।।
तुमहि सीस समुदाय बढाई,
त्रिपदी महिं सब कीन पढाई ।।
चार ज्ञान पूरब दश-चारा,
श्रुतज्ञान तव मुख पर सारा ।।
जे हि मंद जग जंतु दुख पावा,
किंतु ते हि तुव प्रभुहि मिलावा ।।

भगवत वाणी वागरी जी,
वरसै अमृतधार ।
वाणी सुणी वैरागिया जी
जाण्यो अथिर ससार जबू · ।।३।।
माता मोरी साभलो जल्दी,
लेसू सजम भार ।।
घर आया माता कने जी,
विनवे वारवार ।
अनुमत दीजो मातजी,
म्हे तो लेसू सजम-भार माता · ।।४।।
ये आठू ही कामणी जबू,
अपसर रे उणिहार ।
परणी ने किम परिहरो,
ज्या रो किम निकले जमार जंबू ।।५।।
ये आठू ही कामणी जबू,
तुझ बिन विलखी थाय ।
रमिया-ठमिया सु नीसरे,
ज्यारा वदन-कमल विलखाय जबू · ।।६।।
मत - हीणो कोई मानवी माता,
मिथ्या मत भरपूर ।
रूप रमणी सू राचिया ज्यारा,
नही हुवे दुरगत दूर·· माता ।।७।।
पाल-पोष मोटो कियो जबू,
इम किम दो छिटकाय ।
मात-पिता मेले झूरता थाने,
दया नहिं आवे दिल माय · जबू ।।८।।

एक लोटो पानी पियो माता,
माय रु बाप अनेक।
सगला री दया पालसू माता,
आणी चित्त विवेक माता ॥९॥

ज्यू आधा रे लाकडी जबू,
तू म्हारे प्राण आधार।
तुझ बिन म्हारे जग सूनो जाया,
जननी जीतब राख जबू ॥१०॥

रतन-जडत रो पीजरो माता,
सुओ जाणे फद।
काम-भोग ससार ना ज्ञानी,
जाणे झूठो बद माता ॥११॥

पच महाव्रत पालणा जबू,
पाचू हि मेरु-समान।
दोष बयालिस टालणा जबू,
लेणो सूझतो आहार जबू ॥१२॥

पच महाव्रत पालसू माता,
पाचू ही सुख-समान।
दोष बयालिस टालसू माता,
लेसू सूझतो आहार माता ॥१३॥

सजम-मारग दोहिलो जबू,
चलणो खाडे री धार।
नदी-किनारे रू खडो जबू,
जद-तद होय विनास जबू ॥१४॥

जे हि रुदन वधि करम अघोरा,
ते हि नाश किय तुमहि वहोरा ।।
अद्भुत चरित निखिल तव आवा,
समरथ कौन विदुप तेहि गावा ।।
मान हि को तुम विनय वनावा,
तिहि तें अथ-इति शुभ फल पावा ।।
छट्ठ - छट्ठ तप करत सदाई,
पारण तृतीय पहर खुद जाई ।।
आलस नहि नहि हुकुम चलावा,
नायक चउद सहस मुनि व्हावा ।।
प्रकृति - सुलभ बालहि वतलावा,
इद्रभूति इन्द्रादि नमावा ।।
जहाँ खले तह जव सुधि लेइ,
आनद श्रावक को खामेइ ।।
प्रतिबोधक तुम निज-पर जन के,
कई प्रमाण है सूत्र-वचन के ।।
गुरु दीक्षित श्री केशि मुनीसा,
पास जिनेसर के शुभ सीसा ।।
सावत्थी पुरि तिन्दुक वन मे,
सुर-नर स्व-परमती मुद मन मे ।।
केशी किय नाना विध प्रश्ना,
समाधान द्वादशाग धिषणा ।।
निज गुरु के अनुयायी कीने,
महावीर सिस विनये भीने ।।
वर्द्धमान किय निज कुल देवा,
सफल होय रहे तव सेवा ।।

जगति अनेक हुए है गणधर,
चौदह सौ बावन है ऊपर ।।
गौतम - सम नही कोई और,
महिमा पसरी है सहु ठोर ।।
बखतावर यह पाठ त्रिकाला,
ताके मन - वाछित तत्काला ।।
"श्रमणलाल" सतत सुखशाति,
पावे जय निर्भय विश्राति ।।
छबीस एक पैसठ को,
फरमकुड मद्रास ।
कविता यह पूरण हुई,
मन मे अमित उलास ।।

—उपाध्याय प्रवर श्री लालचदजी म सा



जंबू कह्यो मानले जाया

जबू कह्यो मानले जाया, मत ले सजम-भार ।।

राजगृही ना वासिया जी,
'जबू' नाम कुमार ।
ऋषभदत्त ना डीकरा जी,
भद्रा ज्या री माय जबू ।।१।।

सुधर्मास्वामी पधारिया जी,
राजगृही रे माय ।
कौणिक वादण चालियो जी,
जबू वादण जाय जबू ।।२।।

भगवत वाणी वागरी जी,
वरसै अमृतधार ।
वाणी सुणी वैरागिया जी
जाण्यो अथिर ससार जबू ॥३॥
माता मोरी साभलो जल्दी,
लेसू सजम भार ॥
घर आया माता कने जी,
विनवे वारवार ।
अनुमत दीजो मातजी,
म्हे तो लेसू सजम-भार माता ॥४॥
ये आठू ही कामणी जबू,
अपसर रे उणिहार ।
परणी ने किम परिहरो,
ज्या रो किम निकले जमार जबू ॥५॥
ये आठू ही कामणी जबू,
तुझ बिन विलखी थाय ।
रमिया-ठमिया सु नीसरे,
ज्यारा वदन-कमल विलखाय जबू ॥६॥
मत - हीणो कोई मानवी माता,
मिथ्या मत भरपूर ।
रूप रमणी सू राचिया ज्यारा,
नही हुवे दुरगत दूर…माता ॥७॥
पाल-पोष मोटो कियो जबू,
इम किम दो छिटकाय ।
मात-पिता मेले झूरता थाने,
दया नहि आवे दिल माय जबू ॥८॥

एक लोटो पानी पियो माता,
माय रु बाप अनेक ।
सगला री दया पालसू माता,
आणी चित्त विवेक माता ॥९॥

ज्यू आधा रे लाकडी जबू,
तू म्हारे प्राण आधार ।
तुझ बिन म्हारे जग सूनो जाया,
जननी जीतब राख जबू ॥१०॥

रतन-जडत रो पीजरो माता,
सुओ जाणे फद ।
काम-भोग ससार ना ज्ञानी,
जाणे झूठो बद माता ॥११॥

पच महाव्रत पालणा जबू,
पाचू हि मेरु-समान ।
दोष बयालिस टालणा जबू,
लेणो सूझतो आहार जबू ॥१२॥

पच महाव्रत पालसू माता,
पाचू ही सुख-समान ।
दोष बयालिस टालसू माता,
लेसू सूझतो आहार माता ॥१३॥

सजम-मारग दोहिलो जबू,
चलणो खाडे री धार ।
नदी-किनारे रूखडो जबू,
जद-तद होय विनास जबू ॥१४॥

चांद बिना किसी चांदणी जबू,
तारा बिन 'किसी रात।
वीरा विना किसी बेनडी जबू,
झुरसो वार-तिवार 'जबू' ॥१५॥

दीपक बिन मदिर सूनो जबू,
पुत्र बिना परिवार।
कत बिना किसी कामणी जबू,
झुरसी बारू मास जबू' ॥१६॥

मात-पिता मेलो मिल्यो माता,
गौरी अनती वार।
तारण समरथ कोई नहि माता,
पुत्र-पिता-परिवार माता ॥१७॥

मोह मत कर मोरी मात जी,
मोह किया बधे 'कर्म।
हालर-हूलर काई करो माता,
करजो जिन जी रो धर्म माता ॥१८॥

ये आठू ही कामणी जबू,
सुख विलसो ससार।
दिन पीछा पडिया पछे थे तो,
लीजो सजम-भार' जबू ॥१९॥

ए आठू ही कामणी माता,
समझाई एकण रात।
जिन जी रो धर्म पिछाणियो माता,
सजम लेसी म्हारे साथ 'माता ॥२०॥

जबू भलो चेतियो और, लीनो सजम-भार ।।
मात - पिता ने तारिया जबू,
तारी छे आठू नार ।
सासू - सुसरा ने तारिया जबू,
पाचसे प्रभव - परिवार जबू ।।२१।।

पाच सौ ने सत्ताइस जरगा सु जबू,
लीनो सजम - भार ।
इग्यारे जीव मुगते गया साधु,
बाकी स्वर्ग मझार जबू ।।२२।।

मृगापुत्र की सज्झाय

ए माता ! क्षरग लाखीरगी जाय… ।।
सुग्रीव नगर सुहामरगो जी,
राजा बलभद्र नाम ।
तस घर रारगी मृगावती जी,
तस नदन गुरग धाम, ए माता ।।१।।

एक दिन बैठा गोखडे जी,
राण्या रे परिवार ।
शीश दाझे ने रवि तपे जी,
वे दीठा अरगगार, ए माता ।।२।।

मुनि देखी भव साभल्यो जी,
मन बसियो रे वेराग ।
हरख धरी ने ऊठिया जी,
पाय माता रे लाग, ए माता ।।३।।

रे जाया ! तुझ बिन घडी रे छः मास ॥
तूं सुकुमाल सुहामणो जी,
भोगो ससार ना भोग ।
जोबन वय पाछी पड़े जब,
तुम आदरजो जोग, रे जाया ॥४॥

पाव पलक री खबर नही ए,
करे काल को जी साज ।
काल अजाण्यो झडपड़े जी,
ज्यू तीतर पर बाज, ए माता ॥५॥

रतन - जडत घर आगणा जी,
सुदर अप्सरा नार ।
मोटा कुल री ऊपनी जी,
काई छोडो निराधार, रे जाया ॥६॥

वाजीगर वाजी रचे जी,
खिण मे खेरू जी थाय ।
ज्यु ससार नी सपदा जी,
देखतडा विलजाय, ए माता ॥७॥

पीलग - पथरणे पोढणो जी,
तू भोगी रे रसाल ।
कनक - कचोले जीमणो जी,
काछलडी मे आहार, रे जाया ॥८॥

सागर - जल पीया घणा ए,
चूंग्या माता रा थान ।
तिरपत नही हुओ जीवडो जी,
अधिक अरोग्या धान, ए माता ॥९॥

चारित्र छे जाया दोहिलो जी,
जिम खाडा री धार।
विन अपराधे जूझणो जी,
औषध नही है लिगार, रे जाया ॥१०॥

चारित्र छे माता सोहिलो जी,
शिव - सुख नो दातार।
चवदे हि राजलोक ना जी,
फेरा टालणहार, ए माता ॥११॥

सीयाले सी लागसी जी,
उन्हाले लू री वाय।
चौमासे मैला कापडा जी,
ए दुख सह्या नहिं जाय, रे जाया ॥१२॥

वन मे छै एक मिरगलो जी,
कुण करे उण री सार।
मिरगा नी परे विचरसू जी,
एकलडो अणगार, ए माता ॥१३॥

मात - वचन ले नीसरचा जी,
मृगापुत्र कुमार।
पच महाव्रत आदरचा जी,
लीधो सजम - भार, ए माता ॥१४॥

एक मास नी सलेखणा जी,
उपन्यो केवल ज्ञान।
कर्म खपाय मुगते गया जी,
कीजे नित-प्रति ध्यान, ए माता ॥१५॥

रे जाया ! तुझ विन घडी रे छः मास ।।
तू सुकुमाल सुहामणो जी,
भोगो ससार ना भोग ।
जोबन वय पाछी पडे जब,
तुम आदरजो जोग, रे जाया ।।४।।

पाव पलक री खवर नही ए,
करे काल को जी साज ।
काल अजाण्यो झडपडे जी,
ज्यू तीतर पर वाज, ए माता ।।५।।

रतन - जडत घर आगणा जी,
सुदर अप्सरा नार ।
मोटा कुल री ऊपनी जी,
काई छोडो निराधार, रे जाया ।।६।।

वाजीगर वाजी रचे जी,
खिण मे खेरू जी थाय ।
ज्यु ससार नी सपदा जी,
देखतडा विलजाय, ए माता ।।७।।

पीलग - पथरणे पोढणो जी,
तूं भोगी रे रसाल ।
कनक - कचोले जीमणो जी,
काछलडी मे आहार, रे जाया ।।८।।

सागर - जल पीया घणा ए,
चूंग्या माता रा थान ।
तिरपत नही हुओ जीवडो जी,
अधिक अरोग्या धान, ए माता ।।९।।

चारित्र छे जाया दोहिलो जी,
जिम खाडा री धार।
विन अपराधें जूझणो जी,
औषध नहीं है लिगार, रे जाया ॥१०॥

चारित्र छे माता सोहिलो जी,
शिव - सुख नो दातार।
चवदे हि राजलोक ना जी,
फेरा टालणहार, ए माता ॥११॥

सीयाले सी लागसी जी,
उन्हाले लू री वाय।
चौमासे मैला कापडा जी,
ए दुख सह्या नहिं जाय, रे जाया ॥१२॥

वन मे छै एक मिरगलो जी,
कुण करे उण री सार।
मिरगा नी परे विचरसू जी,
एकलडो अणगार, ए माता ॥१३॥

मात - वचन ले नीसरया जी,
मृगापुत्र कुमार।
पच महाव्रत आदरया जी,
लीधो सजम - भार, ए माता ॥१४॥

एक मास नी सलेखणा जी,
उपन्यो केवल ज्ञान।
कर्म खपाय मुगते गया जी,
कीजे नित-प्रति ध्यान, ए माता ॥१५॥

नेम जी की जान

(तर्ज . लावणी)

नेम जी की जान वनी भारी, देखन कू आवे नर-नारी ।
अनेको घोडा रथ हाथी, मनुष की गिनती नही आती ।
ऊंट पर धजा जो फहराती, धमक से धरती थर्राती ।
समुद्रविजय के लाडले, नेमकुँवर है नाम ।
राजलदे को आये परणवा, उग्रसेन के धाम ।
प्रसन्न भइ नगरी सब सारी देखन कू आवे नर-नारी ॥

कसू बल बागा अति भारी, कान मे कु डल छबि न्यारी ।
किलगी तुर्रा सुखकारी, माल गल मोतियन की डारी ।
काने कु डल झिगमिगे, शीश मुकुट झलकार ।
कोड भानु की करू ओपमा, शोभा अधिक अपार ।
वाज रहे वाजे टकसारी देखन कू आवे नर-नारी ॥

छूट रही उनकी बरराई, व्याह मे आये वडे भाई ।
झरोखे राजुल दे आई, जान को देखत सुख पाई ।
उग्रसेन जी देख के, मन मे करचो विचार ।
वहुत जीव कर एकठा रे, वाडो भरियो अपार ।
करी सब भोजन की त्यारी देखन कू आवे नर-नारी ॥

नेमजी तोरण पर आये, पशु-जीव सब ही कुरलाये ।
नेमजी वचन ज फरमाये, पशु तुम काहे को लाये ।
इनको भोजन होवसी, जान वास्ते एह ।
यह वचन सुणि नेमजी रे, थर-थर कापे देह ।
भाव से चढ गये गिरनारी देखन कू आवे नर-नारी ॥

पिछे से राजुल दे आई, हाथ फिर पकड्यो छिन माही ।
कहाँ तू जावे मेरी जाई, और वर हेरू सुखदाई ।
मेरे तो वर एक ही, हो गये नेमकुमार ।
और भुवन मे वर नही सरे, कोटी करो विचार ।
दीक्षा फिर राजुल ने धारी देखन कू आवे नर-नारी ।।

सहेल्या सब ही समझावे, हिये राजुल के नहिं आवे ।
जगत सब झूठो दरसावे, मेरे मन नेमकुवर भावे ।
तोड्या काकरण - डोरडा, तोड्यो नवसर - हार ।
काजल - टीकी - पान - सुपारी, छोड्यो सब सिरणगार ।
करी अब सयम की त्यारी देखन कू आवे नर-नारी ।।

तज्या सब सोले सिरणगारा, आभूषण रत्न - जडित सारा ।
लगे मोहे सब ही सुख खारा, छोडकर चली है परिवारा ।
मात - पिता परिवार को, तजता न लागी वार ।
विजोग कर चली आपसु रे, जाय चढी गिरनार ।
झूरती छोडी माँ प्यारी देखन कू आवे नर-नारी ।।

दया दिल पशुओ की आई, त्याग जब कीनो छिन माही ।
नेमजी गिरनारे जाई, पशु के बधन छुडवाई ।
नेम-राजुल गिरनार पे, कीनो अविचल ध्यान ।
"नवल मल्ल" करि लावरणी रे, उपन्यो केवल ज्ञान ।
जिन्हो की किरिया बुध सारी देखन कू आवे नर-नारी ।।

—कवि नवलमल्ल जी



धन्ना-शालिभद्र की सज्झाय

साभल हो सुरता, सूरा ने लागे वचन ज्यू ताजरणा ।
कायर ने लागे नही कोय साभल हो सुरता ॥

नगरी तो राजगृही ना वासिया,
सेठ धन्नाजी जग में सार ।
पूर्व पुण्य से वहु रिधि पामिया,
आठ नारया रा भरतार ॥१॥

एक दिन धन्नाजी वैठा पाटिये,
स्नान करे तिरण वार ।
आठो नारया मिली प्रेम सू,
कूढ रही है जल - धार ॥२॥

सुभद्रा नारी चौथी तेहनी,
मन मे हुई रे दिलगीर ।
आँसू तो निकले तेहना नैना सु,
सजम लेवे मुझ वीर ॥३॥

प्रेम धरी ने धन्नाजी पूछियो,
कामरण क्यू हुई हो उदास ।
शका मत राखो थे मुझ आगले,
कारण तो कहो नी विमास ॥४॥

कामरण कहे यू कता माहरा,
वीरा ने चढयो है वैराग ।
एक - एक नारी नित की परिहरे,
सयम लेवा की रही लाग ॥५॥

घन्ना कहे तू भोली-बावली,
कायर दीसे है थारो वीर ।
सजम लेणो जद मन मे घारियो,
तो फिर किम करणी ढील ॥६॥

सुभद्रा नारी कहे यू कत ने,
मुख से बणावो फोगट बात ।
इण सुख ने छाडी बाजो सूरमा,
जद जाणू ला थारी बात ॥७॥

तत् खिण घन्नाजी उठ कर बोलिया,
कामण रही जो म्हासू दूर ।
सजम लेवाला इण अवसरे,
जद मे बाजाला जग मे सूर ॥८॥

बेकर जोडी ने सुदर वीनवे,
हासी रे वश कडवा बोल ।
काची री साची न कीजे साहिबा,
हिवडे विमासी बाहर खोल ॥९॥

सजम लेणो तो साहब सोहिलो,
ममता मारी ने समता घार ।
बावीस परीषह सहणा दोहिला,
सजम खाडे री घार ॥१०॥

पाव उबराणा पिउजी चालणो,
दोरो छै पाद - विहार ।
घर-घर फिरणो साहब गौचरी,
नीरस मिलसी आहार ॥११॥

उत्तर - पडुत्तर हुआ अति घणा,
आया साला के भुवन उछाव ।
दोनो मिल साथे संजम आदरा,
कायर उतरो नी नीचे आव ॥१२॥

साला - बहनोई सजम आदर्यो,
वीर जिनद जी रे पास ।
शालिभद्रजी सर्वार्थसिद्ध गया,
धन्नाजी शिवपुर - वास ॥१३॥

सवत् उगणीसे इकसठ साल मे,
कीनो गढ चित्तौड चौमास ।
मुनि नदलाल तणा शिष्य गावियो,
वछित फलेगी सब आस ॥१४॥

—पू श्री खूबचदजी म सा

करम न छूटे रे प्राणिया

करम न छूटे रे प्राणिया ॥

नाम इलापुत्र जाणिये,
धनदत्त सेठ नो पूत ।
नटवी देखी रे मोहियो,
ते राखे घर सूत करम ॥१॥

करम न छूटे रे प्राणिया,
पूरव नेह विकार ।
निज कुल छोडी रे नट थयो,
नाणी शरम लगार करम ॥२॥

एक पुर आयो रे नाचवा,
ऊचो वस विवेक ।
तिहा राय जोवा रे आवियो,
मिलिया लोक अनेक करम ॥३॥

दोय पग पहरी रे पावडी,
वश चढ्या गज गेलि ।
निरधारा ऊपरि नाचतो,
खेले नव-नवा खेलि करम ॥४॥

ढोल बजावे रे नाटकी,
गावे किन्नर साद ।
पाय तलि घूघरा घम - घमे,
गाजे अबर नाद करम ॥५॥

तिहा राय चिंते रे राजियो,
लुब्ध्यो नटवी रे साथ ।
जो पड़े नटवो रे नाचतो,
तो नटवी मुझ हाथ करम ॥६॥

दान न आपे रे भूपति,
नटे जाणी ते बात ।
हू धन वछू रे राय नु,
राय वछे मुझ घात करम ॥७॥

तिहा थी मुनिवर पेखियो,
धन - धन साधु नीराग ।
धिग् - धिग् विषया रे जीवडा,
मन आण्यो वेराग करम ॥८॥

सवर भावे रे केवली,
तत्खिण करम खपाय।
केवलि महिमा रे सुर करे,
"समयसुदर" गुण गाय करम ॥६॥

—महोपाध्याय समयसुदर जी म.

अरणक मुनिवर चाल्या गोचरी

अरणक मुनिवर चाल्या गोचरी,
तडके दाझे शीशो जी।
पाय उभराणा रे वेलु पर जले,
तन सुकुमाल मुनीशो जी'' ॥

मुख कुमलाणो रे मालती फूल ज्यु,
ऊभो गोख नी हेठो जी।
खरे दुपहरे दीठो एकलो,
मोही मानिनी मीठो जी अरणक ॥

वयण रगीली रे नयणे वेधियो,
ऋषि थभ्यो तिणे ठाणो जी।
दासी ने कहे जाय उतावली,
ओ मुनि तेड़ी आणो जी अरणक ॥

पावन कीजे रे ऋषि घर आगणो,
वेहरो मोदक सारो जी।
नव यौवन रस काया कइ दहो,
सफल करो अवतारो जी'' अरणक ॥

चद्रवदनी ये चारित चूकव्यो,
सुख विलसे दिन - रातो जी।
इक दिन गोखे रमतो सौगठे,
तब दीठो निज मातो जी अरणक ' ॥
अरणक अरणक करती मा फिरे,
गलिये - गलिये मझारो जी।
कहो केणे दीठो रे म्हारो अरणलो,
पूछे लोक हजारो जी अरणक ॥
उतर तिहा थी रे जननी पाय नमे,
मन मे लाज्यो तिवारो जी।
धिग - धिग पापी म्हारा रे जीव ने,
एह मैं अकारज धारयो जी अरणक ॥
अगन तपती रे सिला ऊपरे,
अरणक अनशन लीधो जी।
"समयसुदर" कहे धन्य ते मुनिवरो,
मन-वछित-फल सीधो जी अरणक ॥

—महोपाध्याय समयसुदर जी म



धन्नामुनि की सज्झाय

(तर्ज · नाथ कैसे गज को फद)

धन्ना मुनि धन मानव-भव पायो श्रीमुख यू फरमायो ॥

श्रेणिक पूछे वीरजी भाखे,
उत्तम मुनिवर सारा।
रज मे तज है तरतम जोगे,
अधिक धन्नो अणगारा ॥

श्रेणिक राजा आतम-हित काजा,
धन्ना मुनि पै आवे ।
शीश नमावे मुख-गुण गावे,
जोता तृपति न थावे ॥

नार बत्तीसे अपछर सिरखी,
धन बत्तीसे कोडो ।
जग ने पूठ दीवी मुनिवर जी,
शिवपुर सामा दोडो ॥

निरतर तपस्या वेले-वेले,
पारणे उज्झित आहारो ।
वणिमग काग श्वान नही वछै,
किम तुम कठ उतारो ॥

बार इक्कीस जल मांही धोई,
ते अन्न खाई जल पीयो ।
ऐसो कठिन तप सुणी उर कपे,
धन्य - धन्य थारो जीयो ॥

चवदे हजार मुनिसर माहे,
आपने वीर वखाण्या ।
दर्शन आपको पुण्यवत पावे,
मैं पिण आज पिछाण्या ।

नव मासे शुद्ध सजम पाली,
सर्वार्थसिद्ध जावे ।
"रामचद्र" कहे ऐसे मुनिवर जी,
क्यो नही मोक्ष सिधावे ॥

—पू. रामचद्र जी म सा.

अयवंता मुनिवर की सज्झाय

अयवता मुनिवर, नाव तिराई बहता नीर मे ।।

पोलासपुरी नगरी को राजा, विजयसेन भूपाल ।
श्रीदेवी के अग ऊपन्या, अयवता कुमार हो ।।

बेले - बेले करे पारणो, गणघर पदवी पाया ।
महावीर की आज्ञा लेकर, गौतम गौचरी आया जी ।।

खेल रह्या था खेल कवर जी, देख्या गौतम आता ।
घर-घर माहि फिरो हिडता, पूछे इसरी बाता जी ।।

अशनादिक लेने के काजे, निर्दोषन हम बहरां ।
अगुली पकडी कुवर अयवता, लाया गौतम लारा जी ।।

माता देखी कहे पुण्यवता, भली जहाज घर आणी ।
हर्ष-भाव घर निज हाथन से, बहराया अन्न-पाणी जी ।।

लारे - लारे चाल्या कवर जी, भेट्या मोटा भाग ।
भगवता की वाणी सुणने, उपनो मन वैराग जी ।।

घर आवी माता सु कीनी, अनुमति की अरदास ।
बात सुनी माता पुत्र की, मन मे आई हास जी ।।

तू क्या जाणे साधुपणा मे, बाल - अवस्था थारी ।
ऐसो उत्तर दियो कवर जी, मात कहे बलिहारी रे ।।

मोच्छव करी ने सजम लीनो, हुआ बाल अणगार ।
भगवता का चरण भेटिया, धन ज्यारा अवतार जी ।।

वरसाकाल वरसिया पीछे, मुनिवर ठडिल जावे ।
पाल बाध पानी मे पातरा, नाव जान तिरावे जी ।।

म्हे तिरू म्हारी नाव तिरे यो, मुख से शब्द उचारे ।
साधा के मन शका उपनी, किरिया लागे थांरे जी ॥

भगवत भाखे सब साधा से, भक्ति करो तहे-दिल ।
हिलना-निंदा मती करो कोई, चरम शरीरी जीव जी ॥

शासनपति का वचन सुणीने, सब ही शीश चढाया ।
अयवता की हुण्डी सिकरी, आगम माहि गाया जी ॥

सवत उन्नीसे साल छियालिस, भीलवाडा शेखेकाल ।
रतनचद्र जी गुरु - प्रसादे, गाई हीरालाल जी ॥

—स्व हीरालाल जी म.



इम झूरे देवकी राणी

इम झूरे देवकी राणी, या तो पुत्र बिना बिलखाणी रे ॥

मैं तो सातों नंदन जाया,
पिण एक न गोद खिलाया रे ॥१॥

घर पालणो नही बधायो,
नही मधुर हालरियो गायो रे ॥२॥

घुघरा - चुखनी ना बसाई,
झूमर पिण नाहि बधाई रे ॥३॥

नही गहणा कपडा पहराया,
नही झगल्या-टोपी सिवाया रे ॥४॥

नही काजल आँख लगायो,
नही स्नान कराइ जीमायो रे ॥५॥

नही गाल दामरणा दीधा,
वलि चाद-सूरज नही कीधा रे ॥६॥
नही स्तन रो पान करायो,
रूठा ने नाहि मनायो रे ॥७॥
मैं तो कडिया नाहि उठायो,
नही अ गुली पकड ने चलायो रे ॥८॥
घू - घू कही नाहि डरायो,
नही गुदगुल्या से हसायो रे ॥९॥
नही मुख पे चुम्बा दीधा,
नही हरस - वारणा लीधा रे ॥१०॥
नही चकरी - भवरा मगाया,
नही गुलिया - गेद बसाया रे ॥११॥
म्हैं जन्म तरणा दुख देख्या,
गया निर्फल जन्म अलेख्या रे ॥१२॥
मैं पुण्य पूरा नही कीधा,
तिरण थी सुत-बिछडा लीधा रे ॥१३॥
गले हाथ, नजर है धरती,
आँखे आँसू भर झुरती रे ॥१४॥
पग - वदन कृष्ण पधारे,
मा जी ने उदास निहारे रे ॥१५॥
कहे "अमीरिख" किम दुख पाओ,
माता जी मुझ फरमाओ रे ॥१६॥

—पू अमीऋषि जी म

जीवा बयांलिसी

जीवा तू तो भोलो रे प्राणी, इम रुलियो ससार ।।

मोह - मिथ्यात्व री नीद मे जीवा,
सूतो काल अनत ।
भव-भव माही भटकियो जीवा,
ते साभल विरतत ।।१।।

अनत जिन हुवा केवली जीवा,
उत्कृष्टो ज्ञान अगाध ।
इण भव सू लेखो लियो जीवा,
तो ही न कही थारी आद ।।२।।

पृथ्वी - पाणी - अगनी मे जीवा,
चौथी वायु - काय ।
एकीकी तो काय मे जीवा,
काल असख्यातो जाय ।।३।।

पाचवी काय वनस्पती जीवा,
साधारण प्रत्येक ।
साधारण मे तू वस्यो जीवा,
तिणरो विवरो देख ।।४।।

सुई अग्र निगोद मे जीवा,
श्रेणी असख्याती जाण ।
असख्याता प्रतर कह्या जीवा,
गोला असख्य प्रमाण ।।५।।

एकीका गोला मध्ये जीवा,
शरीर असख्या ठाण ।

एकीका शरीर मे जीवा,
जीव अनत पिछाण ॥६॥

ते माही थी जीवडा जीवा,
मोक्ष जावे दग - चाल।
पिण एक शरीर खाली नही जीवा,
नही हुवे अनते काल ॥७॥

एक - एक अभवी सगे जीवा,
भवी अनता होय।
वलि विशेषे तेहना जीवा,
जन्म - मरण तू जोय ॥८॥

मोटा पाप करी तिहा जीवा,
• उपनो नरक मझार।
छेदन - भेदन वेदना जीवा,
ते सही निराधार ॥९॥

भूख - तृषा - शीत - ताप नी जीवा,
रोग - शोक - भय जाण।
दु ख भोगवे जे नारकी जीवा,
कर्म तणे अहिनाण ॥१०॥

नरक थकी निगोद मे जीवा,
अनत गुणो विस्तार।
अनेक पुद्गल पूरिया जीवा,
इम भमियो ससार ॥११॥

पैसठ हजार ने पाच सौ जीवा,
छत्तीस ऊपर धार।

जन्म-मरण इक मुहूर्त मे जीवा,
कर आयो बहु वार ॥१२॥
एकेंद्रिय सू नीकल्यो जीवा,
इद्रिय पाई दोय ।
पुण्याई अनती वधी जीवा,
बाल - शिखा न्याये जोय ॥१३॥
इम तेइद्रिय - चउरिद्रिय जीवा,
दोय लाखज जात ।
दु ख दीठा ससार मे जीवा,
सुनजो इचरज बात ॥१४॥
जीभ बेइद्रिय मे वधी जीवा,
नाक तेइद्रिय जाण ।
आँख चउरिद्रिय मे वधी जीवा,
कान पचेंद्रिय प्रमाण ॥१५॥
जलचर - थलचर - खेचरू जीवा,
उरपर - भुजपर लेख ।
सवल - निर्बल ने भखे जीवा,
वैर माहो - माही देख ॥१६॥
भव-भव भटकतो नीठ से जीवा,
पाई नर नी देह ।
गर्भावासे दु.ख सह्या जीवा,
काई सुनाऊ तेह ॥१७॥
माता रुधिर पिता वीर्य नो जीवा,
लीनो प्रथम आहार ।

भूल गयो जन्म्या पछे जीवा,
सेखी करे अपार ॥१८॥

अहुट्ठ कोड सुई लाल करी जीवा,
चापे रू - रू माय।
आठ गुणी हुवे वेदना जीवा,
गर्भावास रे माय ॥१९॥

जनमता कोड गुणी जीवा,
मरता कोडा - कोड।
जन्म-मरण नी जगत मे जीवा,
जाणो मोटी खोड ॥२०॥

पग ऊचा माथो तले जीवा,
आखा ऊपर हाथ।
जाल जजाल विष्टा मध्ये जीवा,
वसियो कही जगनाथ ॥२१॥

गर्भ माही ए दुख सह्या जीवा,
छोड रही वर्ष बार।
जिण थानक मर ऊपनो जीवा,
बारे वर्ष बलि धार ॥२२॥

देश अनार्य मे ऊपनो जीवा,
इन्द्रिय हीनो थाय।
आउखो ओछो थयो जीवा,
धर्म कियो किम जाय ॥२३॥

कदाच नरभव पामियो जीवा,
उत्तम कुल अवतार।

देह निरोगी पाय ने जीवा,
जाय जमारो हार ॥२४॥

ठग फासीगर चोरटा जीवा,
धीवर कसाई न्यात।
न उपज्यो जिण माय ने जीवा,
ऐसी न रही कोई जात ॥२५॥

चवदे ही राजू लोक मे जीवा,
जन्म - मरण री जोड़।
बालाग्र भाग जिती जीवा,
खाली न राखी ठोड ॥२६॥

ओहिज जीव राजा हुवो जीवा,
ओहिज हुवो फकीर।
ओहिज जीव हाथी चढ्यो जीवा,
मस्तक आण्यो नीर ॥२७॥

इम ससार मे भटकता जीवा,
पाई सामग्री सार।
आदर ने छिटकाय दी जीवा,
जावे बाजी हार ॥२८॥

खोटा देवज सरधिया जीवा,
लागो कुगुरु केड।
खोटो धर्मज आदरी जीवा,
दीधा चहु गति फेर ॥२९॥

कुगुरु भरोसे भूलने जीवा,
रडवडियो यू मूढ।

जीव हणी धर्म जाणियो जीवा,
करतो ऊधी रूढ ॥३०॥

कोलापाक 'रेवती' कियो जीवा,
भेल्यो भगवत भाव।
सिंह अणगार न वहरियो जीवा,
देखो सूत्र के न्याव ॥३१॥

पृथ्वी-पाणी-अगनी-वायरो जीवा,
वनस्पति त्रस काय।
धर्म-कार्य हेते हणे जीवा,
ते भव तरिया नाय ॥३२॥

ओघा ने वलि मुखपति जीवा,
मेरू जितरा लीध।
किरिया समकित बाहिरी जीवा,
एको काज न सीध ॥३३॥

चार ज्ञान गमाय ने जीवा,
नरक सातवी जाय।
चवदे पूर्व भणी करी जीवा,
पडिया दुर्गति माय ॥३४॥

भगवत-धर्म पाया पछे जीवा,
यू ही न जावे फोक।
कदाच जो जादा रुले जीवा,
'अर्धपुद्गल' मे मोक्ष ॥३५॥

सूक्ष्म ने बादर पणे जीवा,
मेली वर्गणा सात।

एक पुद्गलपरावर्त नी जीवा,
झीणी घणी छै बात ॥३६॥

अनता जीव मुक्ति गया जीवा,
टाली आतम - दोष।
न गया न जावसी जीवा,
एक मूळा रा मोक्ष ॥३७॥

एहवा भाव सुनी करी जीवा,
श्रद्धा आई नाय।
ज्यू आयो त्यू हिज गयो जीवा,
लख चौरासी माय ॥३८॥

तप जप सजम पाल ने जीवा,
टाली आतम - दोष।
जाय 'अर्ध पुद्गल' मध्य जीवा,
अनत चोईसी मोक्ष ॥३९॥

कवहिक तो नरक गया जीवा,
कबहिक हुवो देव।
पाप-पुण्य-फल भोगवी जीवा,
न मिटी मिथ्यात्व नी टेव ॥४०॥

केई उत्तम नर चेतिया जीवा,
लीधो सजम - भार।
साचो मार्ग पालने जीवा,
पहुँता मोक्ष मझार ॥४१॥

दान - शील - तप - भावना जीवा,
एह थी राखो प्रेम।

कोड कल्याण छै तेहने जीवा,
"ऋषि जयमल" कहे एम ।।४२।।

—आचार्यप्रवर श्री जयमल्लजी म सा

समकित-छप्पनी

इम समकित मन थिर करो, पालो निर अतिचार ।
मनुष-जनम छे दोहिलो, भमता जगत् मझार इम ।।१।।
नरभव आरज - कुल तिहाँ, सुणवो जिनवाण ।
होई यथारथ सद्दहा, चउ अग दुल्लह जाण इम ।।२।।
आरम्भ - परिग्रह दोइ ए, तेई विषय - कषाय ।
जब लग पतला ना पडे, नहिं समकित आय इम ।।३।।
आतम लोक कर्म क्रिया, शुद्ध वाद छे चार ।
चिंतवता समकित लहै, जीव जगत मझार इम ।।४।।
जीव अमूरत सासतो, तीन रत्न सुभाय ।
पर - सजोगे ऊपजे, तस विषय - कषाय इम ।।५।।
आतम - सम छहुँ काय छे, दु ख निर्-अभिलाष ।
परलोक पर-वस जाइवो, जिन-आगम-साख इम ।।६।।
सपत् - विपत, सुखी - दु खी, मूढ - चतुर - सुजान ।
नाटक कर्म नो जाणज्यो, जग नाना-विधान इम ।।७।।
बिन कीधाँ लागे नही, कीधाँ कर्मज होय ।
कर्म कमाया आपणा, तेहथी सुख-दुःख होय इम ।।८।।
जीव-अजीव बिहु मिल्या, खीर-नीर ने न्याय ।
अज्झत्त - गुण ने कारणे, तेथी बन्धन थाय इम ।।९।।

आस्रव हेतु छे बंध नो, शुभ - अशुभ दो भेद ।
क्रम थी पुण्य ने पाप छे, मोक्ष तेह नो छेद इम ॥१०॥

सवर रोके आवता, खीन तप थी होइ ।
तेहनो नाम छे निरजरा, मोक्ष-कारन दोइ इम ॥११॥

पहली त्रिक मन धारिये, ज्ञेय बीजी हेय ।
तीजी उपादेय जाणिये, इम समकित सेय…इम ॥१२॥

उपसम जेह कषाय नो, तेहनु 'सम' अभिधान ।
मुगति - पथ नी चाहना, 'सवेग' प्रधान इम ॥१३॥

होइ उदास विषै - विषै, जाणजो 'निरवेद' ।
पर-दुख देखी दुख-दया, ए छे चौथो भेद इम ॥१४॥

इह - परलोक छतापणो, होइ 'आस्तिक' भाव ।
करम करचा तेना फल सही, होइ पुण्य ने पाव इम ॥१५॥

तरक - अगोचर 'सद्दहो', द्रव्य धर्म - अधर्म ।
केइ 'प्रतीतो' युक्ति सो, पुण्य-पाप जु कर्म इम ॥१६॥

तप - चारित ने 'रोचवो', कीजे तस अभिलाख ।
'श्रद्धा' 'प्रत्यय' 'रुचि' तिहु, जिन-आगम-साख इम ॥१७॥

पथ, धर्म, जिय, साधु छे, सिद्ध सेतर जान ।
एह यथारथ जाणियै, 'सण्णा' दसविध मान इम ॥१८॥

जाति-स्मृति-अवधि आदि सो, उपजे बोध निसर्ग ।
छद्मस्थ जिन उपदेश सो, पावे भविजन वर्ग इम ॥१९॥

आदेश गुरुमुख सुनि लहै, 'आणारुचि' होइ ।
पढते श्रुत के ऊपजै, 'सुत्तरुचि' है सोइ इम ॥२०॥

तेल-सलिल के न्याय सो, बोधबीज को लाह ।
ते तुम जाणो 'बीजरुचि', भाषै जिनवर नाह इम ॥२१॥

अर्थ विचारै सूत्र के, 'अभिगमरुचि' जान ।
सब गुन-परजव-भाव-नय, 'विसतारे' मान इम ॥२२॥
'किरियारुचि' किरिया विषै, उद्यम करते होइ ।
चारित मे उद्यम कियै, 'धर्मरुचि' है सोइ इम ॥२३॥
जाँनै कुदर्शन ना ग्रह्यो, नाहि समय-प्रवीन ।
सखेपरुचि सो जानियै, भाषै बुद्धि-अहीन इम ॥२४॥
चार अनतानुबधिया, मिथ्या-मोहनी मीस ।
ए सब समकित को हनै, भाष्यौ श्री जगदीश इम ॥२५॥
देश हणै सम-मोहनी, सपतक ए जान ।
क्षय-उपसम इनका कहो, मीस-उदय-प्रमान इम ॥२६॥
उपसम-क्षय छे सात नो, क्षय-उपसम भेद ।
च्यारि अनतानुबधिया, निहचै इह छेद इम ॥२७॥
दर्शन एक-दुहून को, क्षय-उपसम शेष ।
समकित मोहनी उपसमै, नियमा तिहुँ लेप इम ॥२८॥
वेदक मे नियमा उदय, होय समकित मोह ।
शेष छ प्रकृति उपसमै, अथवा पावे छोह इम ॥२९॥
चार कषाय क्षय हुवै, दसरण दो उपशाम ।
अथवा मीसा उपसमै, पच पावे विराम इम ॥३०॥
ए नव भेद समकित कह्यो, जेथी शिवसुख थाइ ।
खय-उपसम-दोय-वेद छे, ए ही च्यारै भाइ इम ॥३१॥
सका-कखा कर रहित, वितिगिच्छा जी नाहि ।
दृष्टि अमूढ थिरीकरण, जिनमत के माहि इम ॥३२॥
धरम विषै उच्छाहना, तस उवबूह नाम ।
वच्छल-पभावन आठ ए, आचार ना ठाम इम ॥३३॥

सका ससय ऊपजै, सव-देसे होइ ।
सव थी अनाचार, देसथी, अतिचार छे सोइ इम ॥३४॥
धर्म करता मन धरै, देवादिक - भीति ।
अथवा लज्जा लोक नी, ए छै सका-रीति इम ॥३५॥
कखा परमत-वाछवो, सव-देसे होइ ।
सव थी अनाचार, देस थी, अतिचार छे सोइ इम ॥३६॥
साहज वाछे धरम मे, सुर-नर थी कोइ ।
लब्धादिक वाछा करै, एहै कखा जोइ इम ॥३७॥
तप-चारित के फल विपै, वितिगिच्छा सदेह ।
साधु-उपधि मलिन लखि, दुरगछा एह इम ॥३८॥
ससार - करतव - सिद्धि को, परजुँजै धर्म ।
सव ही अतिचार ऊपजै, सममोहनी कर्म इम ॥३९॥
पासत्थादि कुदर्शनी, जेह शिथिलाचार ।
निह्नव जे असाधु छे, जस परिहार इम ॥४०॥
एह पससै-सथवै, अतिचार छे पच ।
समदृष्टी ! तुम जाणज्यो, मति सेवो रच इम ॥४१॥
खिन-खिन क्रोध करै धरै अति दीरघ रोष ।
इह-पर-जग-जस-वदना-कारन तप-पोप इम ॥४२॥
निमित्त करी आजीविका, ए थी असुर ज थाय ।
चार पदे समोह छे, ते थी समकित जाय इम ॥४३॥
उन्मार्ग नी देसना, पथ - विघन - सुजान ।
गिरधीभाव विषय तणो, काम-भोग-निदान इम ॥४४॥
अरिहत - धर्म तथा गुरु, सघ - अवरनवाद ।
ए थी किलमपता लहै, मिथ्यामति-उत्पाद इम ॥४५॥

अपना गुण, पर-अवगुणो, भूति-कौतुकाकार।
अभियोगी जे हुवै, तेह चार प्रकार इम ॥४६॥

कन्दरपी विकथा करै, भण्ड-चेष्टा जान।
चपलाई - परिहास छे, कन्दरपी - थान इम ॥४७॥

आरम्भ - परिग्रह मोटको, पचेंद्रिय - घात।
निन्द्य आहार नरक तणा, हेतु चारे बात इम ॥४८॥

माया करै, तस गोपवै, कूडा देवे आल।
कूडा-मापा-तोल ते, तिर्यंच-बंध-काल इम ॥४९॥

चारित - दर्शन - ज्ञान को, कीजिए अभ्यास।
सगति कीजै साध नी, जे छै जग थी उदास इम ॥५०॥

भ्रष्ट - कुदर्शन की तजो, सगति ए व्यवहार।
समकित ना ए जाणज्यो, इम च्यारि प्रकार इम ॥५१॥

आनमति तस देवता, चैत्य वदे नाहि।
राजा-गण-सुर-गुरु-सबल-वृत्ति छीडी माहि इम ॥५२॥

न्याय करै, न्याय भाष ही, न्याय को पछपात।
न्याय विचारै, मन धरै, लज्जा-नीति की बात इम ॥५३॥

जाको वल्लभ न्याय है, न्याय ही को आचार।
न्याय ही सो सब ही करै, वृत्ति औ व्यवहार इम ॥५४॥

नौ तत्त जान, सहाय न वछै, डिगै नहि देव-अदेव डिगायै।
दोष विना धरै दर्शन कौ, निरनै सब अर्थ करै समुझायै।
धर्म के राग रग्यौ हिरदे अति, धर्म कहै आपस मे मिलायै।
निर्मल चित्त, अभग दुवार, अतेउर नाहि परे घर जायै ॥५५॥

पौषध छहु तिथ को करै, प्रतिलाभै शुभ साध।
ऐसे समदृष्टी तथा, श्रावक है आराध ॥५६॥

बृहद-आलोयणा

सिद्ध श्री परमात्मा, अरिगजन अरिहत ।
इष्टदेव वदू सदा, भय - भजन भगवत ॥१॥

अरिहत - सिद्ध सिमरू सदा, आचारज - उवझाय ।
साधु सकल के चरण कू, वदू शीश नमाय ॥२॥

शासन - नायक सिमरिये, भगवन वीर जिनद ।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानद ॥३॥

अगूठे अमृत वसे, लब्धि - तणा भडार ।
श्री गुरु गौतम सिमरिये, वाछित फल दातार ॥४॥

श्री गुरुदेव - प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध ।
ज्यो घन वरसत वेलि-तरु, फूल-फलन की वृद्ध ॥५॥

पच परमेष्ठी देव को, भजन पूर पहचान ।
कर्म - शत्रु भाजे सभी, होवे परम कल्याण ॥६॥

श्री जिन - युगपद - कमल मे, मुझ मन-भवर बसाय ।
कब ऊगे वो दिनकरू, श्रीमुख दर्शन पाय ॥७॥

प्रणमी पद - पकज भणी, अरिगजन अरिहत ।
कथन करू अब जीव को, किचित् मुझ विरतत ॥८॥

आरभ-विषय-कषाय-वश, भमियो काल अनत ।
लख चौरासी योनि से, अब तारो भगवत ॥९॥

देव - गुरु - धर्म सूत्र मे, नवतत्त्वादिक जोय ।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कड मोय ॥१०॥

मिथ्या - मोह - अज्ञान को, भरियो रोग अथाग ।
वैद्यराज - गुरु की शरण, औषध ज्ञान - विराग ॥११॥

बुरा - बुरा सर्ब को कहू, बुरा न दीसे कोय ।
जो घट शोधू आपणो, मुझ-सा बुरा न कोय ।।१२।।

कहवा मे आवे नही, अवगुण भरया अनत ।
लिखवा मे क्यो कर लिखू, जानो श्री भगवत ।।१३।।

करुणानिधि करुणा करी, कठिन कर्म मोय छेद ।
मिथ्या - मोह - अज्ञान को, करजो ग्रथि - भेद ।।१४।।

पतित - उद्धारण नाथ जी, अपनो विरुद विचार ।
भूल - चूक सब माहरी, खमिये बारम्बार ।।१५।।

माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष ।
दीन - दयाल देओ मुझे, श्रद्धा - शील सतोष ।।१६।।

आतम - निंदा शुध भणी, गुणवत - वदन - भाव ।
राग - द्वेष पतला करी, सब से खमत - खमाव ।।१७।।

छूटूं पिछला पाप से, नवा न बाधू कोय ।
श्री गुरुदेव - प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ।।१८।।

परिग्रह - ममता को तजी, पच महाव्रत धार ।
अत समय आलोयणा, करू सथारो सार ।।१९।।

तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित्य मन ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिव - सुख - घन ।।२०।।

अरिहत देव निर्ग्रन्थ गुरु, सवर - निर्जरा धर्म ।
केवलि - भाषित शासतर, यही जैनमत - मर्म ।।२१।।

आरभ-विषय-कषाय तज, शुध समकित व्रत धार ।
जिन-आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार ।।२२।।

क्षण निकमो रहणो नही, करणो आतम-काम ।
भणणो-गुणणो-सीखणो, रमणो ज्ञान-आराम ।।२३।।

बृहद-आलोयणा

सिद्ध श्री परमात्मा, अरिगजन अरिहत ।
इष्टदेव वदू सदा, भय - भजन भगवत ।।१।।

अरिहत - सिद्ध सिमरू सदा, आचारज - उवभाय ।
साधु मकल के चरण कूं, वदू शीश नमाय ।।२।।

शासन - नायक सिमरिये, भगवन वीर जिनद ।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानद ।।३।।

अगूठे अमृत वसे, लब्धि - तणा भडार ।
श्री गुरु गौतम सिमरिये, वाछित फल दातार ।।४।।

श्री गुरुदेव - प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध ।
ज्यो घन वरसत वेलि-तरु, फूल-फलन की वृद्ध ।।५।।

पच परमेष्ठी देव को, भजन पूर पहचान ।
कर्म - शत्रु भाजे सभी, होवे परम कल्याण ।।६।।

श्री जिन - युगपद - कमल मे, मुझ मन-भवर बसाय ।
कव ऊगे वो दिनकरू, श्रीमुख दर्शन पाय ।।७।।

प्रणमी पद - पकज भणी, अरिगजन अरिहत ।
कथन करू अव जीव को, किंचित् मुझ विरतत ।।८।।

आरभ-विषय-कषाय-वश, भमियो काल अनत ।
लख चौरासी योनि से, अव तारो भगवत ।।९।।

देव - गुरु - धर्म सूत्र मे, नवतत्त्वादिक जोय ।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कड मोय ।।१०।।

मिथ्या - मोह - अज्ञान को, भरियो रोग अथाग ।
वैद्यराज - गुरु की शरण, औषध ज्ञान - विराग ।।११।।

बुरा - बुरा सबं को कहू, बुरा न दीसे कोय ।
जो घट शोधू आपणो, मुझ-सा बुरा न कोय ।।१२।।

कहवा मे आवे नही, अवगुण भरया अनत ।
लिखवा मे क्यो कर लिखू, जानो श्री भगवत ।।१३।।

करुणानिधि करुणा करी, कठिन कर्म मोय छेद ।
मिथ्या - मोह - अज्ञान को, करजो ग्रथि - भेद ।।१४।।

पतित - उद्धारण नाथ जी, अपनो विरुद विचार ।
भूल - चूक सब माहरी, खमिये बारम्बार ।।१५।।

माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष ।
दीन - दयाल देओ मुझे, श्रद्धा - शील सतोष ।।१६।।

आतम - निंदा शुध भणी, गुणवत - वदन - भाव ।
राग - द्वेष पतला करी, सब से खमत - खमाव ।।१७।।

छूटू पिछला पाप से, नवा न बाधू कोय ।
श्री गुरुदेव - प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ।।१८।।

परिग्रह - ममता को तजी, पच महाव्रत धार ।
अत समय आलोयणा, करू सथारो सार ।।१९।।

तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित्य मन ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिव - सुख - घन ।।२०।।

अरिहत देव निर्ग्रन्थ गुरु, सवर - निर्जरा धर्म ।
केवलि - भाषित शासतर, यही जैनमत - मर्म ।।२१।।

आरभ-विषय-कषाय तज, शुध समकित व्रत धार ।
जिन-आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार ।।२२।।

क्षण निकमो रहणो नही, करणो आतम-काम ।
भणणो-गुणणो-सीखणो, रमणो ज्ञान-आराम ।।२३।।

अरिहत सिद्ध सब साधु जी, जिन-आज्ञा धर्म सार ।
मगलीक उत्तम सदा, निश्चय शरणा चार ।।२४।।

घडी-घडी पल-पल सदा, प्रभु सुमिरण को चाव ।
नरभव सफलो जो करे, दान - शील - तप - भाव ।।२५।।

सिद्धा जैसो जीव है, जीव सो ही सिद्ध होय ।
कर्म-मैल का अतरा, बूझे विरला कोय ।।२६।।

कम पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान ।
दो मिलकर बहुरूप है, बिछड्यां पद निरवाण ।।२७।।

जीव करम भिन-भिन करो, मनुष-जनम को पाय ।
ज्ञानातम वैराग्य से, धीरज ध्यान लगाय ।।२८।।

जीव द्रव्य से एक है, क्षेत्र असख्य प्रमाण ।
रहे सर्वदा काल से, भावे दर्शन - ज्ञान ।।२९।।

गर्भित पुद्गल - पिड मे, अलख अमूरति देव ।
फिरे - सहज भव-चक्र मे, यह अनादि की टेव ।।३०।।

फूल अतर, घी दूध मे, तिल मे तेल छिपाय ।
यू चेतन जड करम सग, बध्यो ममत दु ख पाय ।।३१।।

जो-जो पुद्गल की दशा, ते निज माने हस ।
या ही भरम विभाव ते, बढे करम को वश ।।३२।।

रतन बध्यो गठरी विषे, सूर्य छिप्यो घन माय ।
सिह पीजरा मे दियो, जोर चले कछु नाय ।।३३।।

ज्यो बदर मदिरा पीयाँ, बिच्छू डकित गात ।
भूत लग्यो कौतुक करे, (त्यो) कर्मों का उत्पात ।।३४।।

जीव मूढ है कर्म सह, पावे नाना रूप ।
कर्म रूप मल के टले, चेतन सिद्ध स्वरूप ।।३५।।

चेतन उज्ज्वल द्रव्य पर, रह्यो करम-मल छाय।
तप-सयम से घोवता, ज्ञान-ज्योति बढ जाय ।।३६।।

ज्ञान थकी जाने सकल, दर्शन श्रद्धा रूप।
चारित से आवत रुके, तपस्या क्षपरण स्वरूप ।।३७।।

कर्म रूप मल के शुधे, चेतन चादी रूप।
निर्मल ज्योति प्रकट भया, केवल ज्ञान अनूप ।।३८।।

मूसी पावक सोहगी, फूका तणो उपाय।
रामचरण चारू मिल्या, मैल कनक को जाय ।।३९।।

कर्म रूप बादल मिटे, प्रकटे चेतन - चद।
ज्ञान रूप गुण चादनी, निर्मल ज्योति अमद ।।४०।।

राग - द्वेष दो बीज से, कर्म - बध की व्याध।
ज्ञानातम वैराग्य से, पावे मुक्ति समाध ।।४१।।

अवसर बीत्यो जात है, अपने वश कछु होत।
पुण्य छता पुण्य होत है, दीपक दीपक - ज्योत ।।४२।।

कल्पवृक्ष चितामणी, इस भव मे सुखकार।
ज्ञान - वृद्धि इनसे अधिक, भव - दुख - भजनहार ।।४३।।

राई-सम घट-वध नही, देख्या केवल ज्ञान।
यह निश्चय कर जान के, तजिये पहलो ध्यान ।।४४।।

दूजा भी नहिं चिंतिये, कर्म - बध बहु दोष।
तीजा-चौथा घ्याय के, करिये मन सतोष ।।४५।।

गई वस्तु सोचे नही, आगम वछे नाय।
वर्तमान वरते सदा, सो ज्ञानी जग माय ।।४६।।

सम्यग्दृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अतर्गत न्यारो रहे, (ज्यो) धाय खिलावे बाल ।।४७।।

सुख - दुख दोनू वसत है, ज्ञानी के घट माय।
गिरि सर दीखे काच मे, भार भीजवो नाय ।।४८।।

जो - जो पुद्गल फरसना, निश्चय फरसे सोय।
ममता - समता - भाव से, कर्म वध - क्षय होय ।।४९।।

वाध्या सो ही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव।
सफल निर्जरा होत है, यह समाधि चित्त भाव ।।५०।।

वाध्यां विन भुगते नही, विन भुगत्या न छुड़ाय।
आप ही करता - भोगता, आप ही दूर कराय ।।५१।।

पथ - कुपथ घट - वध करी, व्याधि घट - वढ जाय।
पुण्य-पाप कर जीव यो, सुख - दुख जग मे पाय ।।५२।।

सुख दीयां सुख होत है, दुख दीया दुख होय।
आप हणे नही अवर कूं, निज को हणे न कोय ।।५३।।

ज्ञान गरीवी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोप।
इन कू कभी न छोडिये, श्रद्धा - शील - सतोष ।।५४।।

सत मत छोडो हो नरा, लक्ष्मी चौगुणी होय।
सुख - दुख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय ।।५५।।

गो-धन गज-धन रतन-धन, कचन खान सुखान।
जव आवे सतोष धन, सव धन धूल समान ।।५६।।

शील - रतन मोटो रतन, सव रतना की खान।
तीन लोक की सपदा, रही शील मे आन ।।५७।।

शीले सर्प न आभडे, शीले शीतल आग।
शीले अरि - करि - केसरी, भय जावे सव भाग ।।५८।।

शील रतन के पारखी, मीठा वोले वैण।
सव जग से ऊचा रहे, नीचा राखे नैण ।।५९।।

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दु ख ।
कर्म - रोग पातक झरे, देखत वा का मुख ।।६०।।

पान खिरतो इम कहे, सुन तरुवर वनराय ।
अब के बिछुडे कब मिले, दूर पडेगे जाय ।।६१।।

तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र इक बात ।
इण घर एही रीत है, इक आवत इक जात ।।६२।।

वरस दिना की गाठ को, उच्छव गाय-बजाय ।
मूरख नर समझे नही, वरस गाठ को जाय ।।६३।।

किण कारण ते दृढ कियो, पवन तणो विश्वास ।
आवे के आवे नही, इनकी एही आश ।।६४।।

करज विराणा काढ के, खरच किया बहु दाम ।
जब मुद्दत पूरी हुवे, देणा पडसी दाम ।।६५।।

बिन दिया छूटे नही, यह निश्चय कर मान ।
हस - हस क्यो खरचिये, दाम विराणा जान ।।६६।।

ससारी सुख भोगता, लागे मिष्ट अज्ञान ।
ज्ञानी इम जाने सही, विष मिलियो पकवान ।।६७।।

काम - भोग प्यारा लगे, फल किंपाक समान ।
मीठी खाज खुजालता, पीछे दु ख की खान ।।६८।।

जप - तप - सजम दोहिलो, औषध कडवी जाण ।
सुख कारण पीछे घणो, निश्चय पद निरवाण ।।६९।।

डाभ अणी जल - बिदुवो, सुख विषयन को चाव ।
भवसागर दुख - जल भरयो, यह ससार - स्वभाव ।।७०।।
चढ उत्तग जहा से पतन, शिखर नही वो कूप ।
जिस सुख अदर दुख बसे, सो सुख भी दुख रूप ।।७१।।

जब लग जिसके पुण्य का, पहुचे नही करार।
तब लग उसकू माफ है, अवगुण करे हजार ॥७२॥

पुण्य क्षीण जब होत है, उदय होत है पाप।
दाझै वन की लाकड़ी, प्रजले आपो - आप ॥७३॥

पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दाबी - दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग ॥७४॥

बहु बीती थोड़ी रही, अब तो सुरत सभार।
परभव निश्चय चालणो, वृथा जन्म मत हार ॥७५॥

चार कोश ग्रामान्तरे, खरची बाधे लार।
परभव निश्चय जावणो, करिये धर्म विचार ॥७६॥

'रज्जब' रज ऊची चढे, नरमाई के पाण।
पत्थर ठोकर खात है, करडाई के तान ॥७७॥

अवगुण उर धरिये नही, जो हो वृक्ष बबूल।
गुण लीजे कालू कहे, नही छाया मे शूल ॥७८॥

जैसी जिन पै वस्तु है, वैसी दे दिखलाय।
वां का बुरा न मानिये, (वो) लेन कहा से जाय ॥७९॥

गुरु कारीगर सारिखा, टाची वचन विचार।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार ॥८०॥

सतन की सेवा किया, प्रभु रीझत है आप।
जाँ का बाल खिलाइये, ताँ का रीझत बाप ॥८१॥

भव - सागर ससार मे, द्वीपा श्री जिनराज।
उद्यम कर पहुचे तिरे, बैठ धर्म की जहाज ॥८२॥

निज आतम कू दमन कर, पर आतम कूं चीन।
परमातम को भजन कर, सो ही मत परवीन ॥८३॥

समझू शके पाप से, अणसमझू हरषत ।
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कर्म बधत ।।८४।।

समझ सार ससार मे, समझू टाले दोष ।
समझ-समझ कर जीव ही, गया अनता मोक्ष ।।८५।।

उपशम विषय-कषाय नो, सवर तीनू योग ।
किरिया जतन-विवेक से, मिटे कर्म दु:ख-रोग ।।८६।।

रोग मिटे समता बधे, समकित व्रत आराध ।
निर्वैरी सब जीव से, पावे मुक्ति समाध ।।८७।।

—इति भूल-चूक मिच्छा मि दुक्कड

सिद्ध श्री परमातमा अरिगजन अरिहत ।
इष्टदेव वदू सदा, भयभजन भगवत ।।१।।

अनत चौवीसी जिन नमू, सिद्ध अनता कोड ।
वर्तमान जिनवर सभी, केवली दो-नव कोड़ ।।२।।

गणधरादि, साधु सब, समकित व्रत गुणधार ।
यथायोग वदन करू, जिन-आज्ञा अनुसार ।।३।।

(पहले एक नमस्कार मत्र का उच्चारण करना)

पच परमेष्ठी देव को, भजन पूर पहचान ।
कर्म-शत्रु भाजे सभी, शिव-सुख मगल थान ।।४।।

हूँ अपराधी अनादि को, जनम-जनम गुनाह किया भरपूर के ।
लूटिया प्राण छ काय ना, सेविया पाप अठारह करूर के
श्री मुनिसुव्रत साहिबा ।।१।।

आज दिन तक इस भव मे और पहले सख्यात-असख्यात व अनत भवो मे कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सद्दहणा, प्ररूपणा,

फरसना एव सेवनादिक सबधी जो पाप-दोष लगे उनका मिच्छामि दुक्कड । मैंने अज्ञानपन से, मिथ्यात्वपन से, अव्रतपन से, कषायपन से तथा अशुभयोग से प्रमाद करके अपछदा-अविनीतपना किया, श्री अरिहत भगवत, वीतराग देव, केवल-ज्ञानी,गणधर देव, आचार्य जी महाराज, उपाध्याय जी महाराज, साधुजी महाराज, साध्वी जी महाराज तथा सम्यग्दृष्टि, स्वधर्मी श्रावक-श्राविका—इन उत्तम पुरुषो की एव शास्त्र, सूत्र-पाठ, अर्थ, परमार्थ व धर्म-सबधी समस्त पदार्थों की अभक्ति, अविनय, आशातना आदि की, कराई व अनुमोदी और मन-वचन-काया से, द्रव्य - क्षेत्र - काल-भाव से सम्यक् प्रकार विनय, भक्ति, आराधना, पालना, फरसना, सेवनादिक यथायोग्य अनुक्रम से नही की, नही कराई तथा नही अनुमोदी तो मुझे धिक्कार-धिक्कार वारवार मिच्छा मि दुक्कड । मेरी भूल-चूक-अवगुण-अपराध सब मुझे माफ करो, मैं मन - वचन-काया करके खमाता हूँ ।

मैं अपराधी गुरुदेव को, तीन भुवन को चोर ।
ठगू विराना माल मै, हा-हा कर्म कठोर ।।१।।
कामी - कपटी - लालची, अपछदा अविनीत ।
अविवेकी-क्रोधी बहुत, महापापी "रणजीत"[1] ।।२।।
जो मैं जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार ।
नाथ तुम्हारी साख से, वार-वार धिक्कार ।।३।।

पहला पाप प्राणातिपात—मैंने छ काय-पन से छ काय की विराधना की, पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु-वनस्पतिकाय, बे-इद्रिय, तेइद्रिय, चउरिंद्रिय, पचेंद्रिय, असन्नी, सन्नी, गर्भज एव चौदह

१ पाठक यहा अपना नाम वोले ।

प्रकार के सम्मूर्च्छिम आदि स्थावर-त्रस जीवो की विराधना मन-वचन-काया से की, कराई, अनुमोदी, उठते-बैठते सोते-हिलते-डुलते शस्त्र-वस्त्र-पात्र आदि उपकरण उठाते-धरते, लेते-देते, वरतते-वरतावते अप्पडिलेहणा-दुप्पडिलेहणा सबधी, अप्पमज्जणा-दुप्पमज्जणा सबधी, न्यूनाधिक विपरीत पडिलेहणा सबधी और आहार-विहार आदि अनेक प्रकार के कर्त्तव्यो मे सख्यात-असख्यात और निगोद की अपेक्षा अनत जीवो मे से जिन-जिन के मैने प्राण लूटे एव आघात पहुचाया उन सब जीवों का मैं अपराधी हूँ, निश्चय करके बदले का देनदार हूँ और महपापी हूँ, सब जीवो से मैं अपने अपराध-अवगुण व भूल-चूक की माफी चाहता हूँ, सभी मुझे माफ करे। सभी जीवो से मैं देवसी-राइ-पक्खी-चउमासी और सवच्छरी सबधी क्षमा-याचना करता हूँ

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ति मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणइ ॥

वह दिन धन्य होगा, जब मैं छ. काय के वैर-बदले से निवृत्त होऊगा एव समस्त चौरासी लाख जीव-योनि को अभयदान देऊगा।

दूजा पाप मृषावाद : क्रोध के वश, मान के वश, माया के वश, लोभ के वश, हास्य के वश एव भय के वश मृषा (झूठा) वचन बोला हो, निंदा-विकथा की हो, कर्कश-कठोर-मर्म-वचन बोला हो इत्यादि अनेक प्रकार से झूठ बोला हो, बुलवाया हो व अनुमोदा हो तो मन - वचन - काया से तस्स मिच्छा मि दुक्कड

थापणमोसा मैं किया, करयो विश्वासघात।
परनारी घन चोरिया, प्रकट कह्यो नही जात ॥

वह दिन धन्य होगा, जिस दिन मैं सर्व प्रकार से मृषावाद का त्याग करूंगा।

तीसरा पाप अदत्तादान : विना दी हुई कोई वस्तु ली हो, लोकविरुद्ध वड़ी चोरी की हो, मकान संबंधी अनेक प्रकार के कर्त्तव्यों मे उपयोग सहित या विना उपयोग से मन-वचन-काया से छोटी चोरी की हो, कराई हो और अनुमोदी हो तथा धर्म-सबधी ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप की आराधना गुरुदेव की विना आज्ञा की हो, उसका मुझे धिक्कार-धिक्कार वार-वार मिच्छा मि दुक्कड।

वह दिन मेरे लिए धन्य एवं परम-कल्याण रूप होगा, जिस दिन मैं सर्वथा प्रकार से अदत्तादान का त्याग करूंगा।

चौथा पाप मैथुन : मैथुन-सेवन करने के लिए मन-वचन और काय के योग प्रवर्ताये हो, नववाड सहित ब्रह्मचर्य का पालन नही किया हो, नववाड मे अशुद्धपन से प्रवृत्ति हुई हो—इस प्रकार मैंने मैथुन-सेवन किया हो, करवाया हो और करने वाले को अच्छा समझा हो तो उसके लिए मुझे धिक्कार-धिक्कार वार-वार मिच्छा मि दुक्कड।

वह दिन मेरा धन्य होगा, जिस दिन मैं नववाड सहित ब्रह्मचर्य-शीलरत्न की आराधना करूंगा एव सर्व प्रकार से काम-विकार से निवृत्त होऊगा।

पांचवां पाप परिग्रह : दास-दासी द्विपद-चतुष्पद (पशु) आदि अनेक प्रकार की सचित्त एव सोना-चांदी वस्त्र-आभूषण आदि अनेक प्रकार की अचित्त वस्तुओ के प्रति ममता-मूर्च्छा रखी हो, क्षेत्र-घर आदि नव प्रकार के वाह्य और चौदह प्रकार के आभ्यतर परिग्रह को रखा हो, रखवाया हो एव अनुमोदा

हो तथा रात्रि भोजन, अभक्ष्य आहारादि सबधी पाप-दोष सेव्या हो तो उसका मुझे धिक्कार-धिक्कार वारवार मिच्छा मि दुक्कड ।

वह दिन मेरा धन्य होगा, जिस दिन मैं सब प्रकार से परिग्रह का त्याग कर ससार के प्रपच से निवृत्त होऊगा ।

छट्ठा पाप क्रोध : क्रोध करके अपनी आत्मा को तथा पर आत्मा को दु:खी किया हो ।

सातवां पाप मान . अहकार-भाव लाया हो, तीन गौरव और आठ मद आदि किया हो ।

आठवां पाप माया : धर्म-सबधी तथा ससार-सबधी अनेक कर्त्तव्यो मे कपट किया हो ।

नववां पाप लोभ मूर्च्छा-भाव लाया हो, आशा-तृष्णा-वाछा आदि की हो ।

दसवां पाप राग : मन-पसद वस्तु से स्नेह किया हो ।

ग्यारहवां पाप द्वेष : मन को पसद न आने वाली वस्तु देखकर उस पर द्वेष किया हो ।

बारहवां पाप कलह अप्रशस्त (खराब) वचन बोल कर क्लेश उत्पन्न किया हो ।

तेरहवां पाप अभ्याख्यान झूठा कलक दिया हो ।

चौदहवां पाप पैशुन्य : दूसरे की चुगली की हो ।

पंद्रहवां पाप परपरिवाद : दूसरे का अवगुणवाद (अवर्ण-वाद) किया हो ।

सोलहवां पाप रति-अरति . पाच इद्रिय के २३ विषय और २४० विकार हैं, इनमे मन-पसद पर राग किया हो और

अपसद पर द्वेष किया हो तथा सयम-तप आदि पर अरति एव आरभादिक असयम-प्रमाद मे रति भाव लाया हो।

सतरहवां पाप मायामृषावाद कपट सहित झूठ बोला हो।

अठारहवां पाप मिथ्यादर्शनशल्य : श्री जिनेश्वर देव के बताये मार्ग मे शका-कखा आदि विपरीत प्ररूपणा की हो।

इस प्रकार अठारह पाप-स्थान द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से, जानते-अजानते मन-वचन और काय से सेवन किया हो, कराया हो और अनुमोदा हो दिवा वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, इस भव मे, पहले के सख्यात-असख्यात व अनत भवो मे भव-भ्रमण करते आज दिन तक राग-द्वेष, विषय-कषाय, आलस-प्रमाद आदि पौद्गलिक प्रपच परगुणपर्याय की विकल्प भूल की हो, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-चारित्राचारित्र-तप एव शुद्ध श्रद्धा, शील, सतोष, क्षमा आदि निज स्वरूप की विराघना की हो, उपशम-विवेक-सवर-सामायिक-पौषध-प्रतिक्रमण-ध्यान-मौन आदि व्रत पच्चक्खाण, दान-शील-तप वगेरह की विराधना की हो; परमकल्याणकारी इन बोलो की आराधना-पालनादिक मन-वचन-काय से नही की हो, नही कराई हो व नही अनुमोदी हो; छह आवश्यको की सम्यक् प्रकार से विधि-उपयोग सहित आराधना-पालना एव फरसना नही की हो या विधि-उपयोग रहित निरादरपने से की हो किंतु आदर-सत्कार, भाव-भक्ति सहित नही की हो, ज्ञान के चौदह, दर्शन के पाच, बारह व्रतो के साठ, कर्मादान के पद्रह, सलेखणा के पांच एव निन्यानवे अतिचार तथा एक सौ चौवीस अतिचार मे किसी भी अतिचार का जानते-अजानते सेवन किया हो, कराया हो, अनुमोदा हो तो उनका मुझे धिक्कार-धिक्कार बारबार मिच्छा मि दुक्कड।

मैंने जीव को अजीव, अजीव को जीव, धर्म को अधर्म, अधर्म को धर्म, साधु को असाधु, असाधु को साधु श्रद्धा हो-प्ररूपा हो तथा उत्तम पुरुष साधु-मुनिराजो व महासतियाजी की सेवा-भक्ति-मान्यता आदि यथाविधि नही की हो, नही कराई हो, नही अनुमोदी हो एव असाधुओ की सेवा-भक्ति व मान्यता आदि का पक्ष किया हो, मुक्तिमार्ग को ससार का मार्ग यावत् पच्चीस मिथ्यात्व मे से किसी मिथ्यात्व का सेवन किया हो, कराया हो व अनुमोदा हो, मन-वचन-काया से पच्चीस कषाय सबधी, पच्चीस क्रिया सबधी, तेतीस आशातना सबधी, ध्यान के उन्नीस दोष, वदना के बत्तीस दोष, सामायिक के बत्तीस दोष, पौषध के अठारह दोष सबधी कोई पाप-दोष लगा हो, लगाया हो, अनुमोदा हो तो उसका मुझे धिक्कार-धिक्कार बारबार मिच्छा मि दुक्कड ।

महामोहनीय कर्म-बध के तीस स्थान को सेवन किया, कराया व अनुमोदा हो, शील की नववाड तथा आठ प्रवचन माता की, श्रावक के इक्कीस गुण तथा बारह व्रतो की मन-वचन-काया से विराधनादि की, कराई व अनुमोदी हो, चर्चा-वार्ता वगेरह मे श्री जिनेश्वर देव का मार्ग लोपा-गोपा हो, नही माना हो, अछते की थापना की हो, छते की थापना नही की हो, अछते का निषेध नही किया हो, छते की थापना और अछते का निषेध करने का नियम नही किया हो, कलुषता की हो, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि आठो कर्मो की शुभ-अशुभ प्रकृतियाँ एव पचपन कारणो से पाप की बयासी प्रकृतियाँ बाधी, बधाई व अनुमोदी हो तो मन-वचन-काया करके उनका मुझे धिक्कार-धिक्कार बारबार मिच्छा मि दुक्कड ।

एक-एक वोल से लगाकर कोडाकोडी यावत् सख्याता-असख्याता-अनतानत वोलो मे से जानने योग्य वोलो को सम्यक् प्रकार से जाना नही हो, छोड़ने योग्य बोलो को छोडा नही हो एव आदरने योग्य वोलो को आदरा नही हो, आराधा नही हो, पाला नही हो, फरसा नही हो, विराधना-खडना आदि की हो, कराई हो व अनुमोदी हो तो मन-वचन-काया से उनका मुझे धिक्कार-धिक्कार वारवार मिच्छा मि दुक्कडं।

श्री जिन भगवत जी महाराज ! आपकी आज्ञा के पालन मे मैंने जो प्रमाद किया हो, सम्यक् प्रकार मे उद्यम नही किया हो, नही कराया हो व नही अनुमोदा हो तथा आज्ञा के विपरीत उद्यम किया हो, कराया हो, अनुमोदा हो; हे भगवन् ! स्वप्न मात्र मे भी आपके वताये मार्ग के विपरीत प्रवृत्ति की हो तो मन-वचन-काया करके उनका मुझे धिक्कार-धिक्कार वारवार मिच्छा मि दुक्कड।

श्रद्धा अशुद्ध प्ररूपणा, करी फरसना सोय।
अनजाने पक्षपात मे, मिच्छा दुक्कड मोय ॥१॥

सूत्र अर्थ जानूं नही, अल्पवुद्धि अनजान।
जिनभापित सब शास्त्र का, अर्थ पाठ परमाण ॥२॥

मैं मगसेळ्यो हो रह्यो, नही ज्ञान - रस भीज।
गुरु-सेवा नही कर सकूं, किम मुझ कारज सीज ॥३॥

जाने देखे जो सुने, देवे सेवे मोय।
अपराधी उन सवन को, वदला देस्यू सोय ॥४॥

जैनधर्म शुद्ध पाय के, वरतू विषय - कपाय।
यही अचम्भा हो रहा, जल मे लागी लाय ॥५॥

जितनी जग मे वस्तु है, नीच नीच से नीच।
सबसे पापी मै बुरो, फस्यो मोह के बीच ॥६॥

एक कनक अरु कामिनी, दो मोटी तलवार।
उठ्यो थो जिन-भजन को, लियो बीच मे मार ॥७॥

राग-द्वेष दो बीज है, कर्म-बध फल देत।
इनकी फासी मे बध्यो, छूटू नही अचेत ॥८॥

आठ कर्म प्रबल करी, भमियो जीव अनाद।
आठ कर्म छेदन करी, पावे मुक्ति समाध ॥९॥

सब भक्षी हूँ अग्नि-जिम, तपियो विषय-कषाय।
अपछदा अविनीत मैं, धर्मी ठग दुख-दाय ॥१०॥

कहा भयो घर छाड के, तज्यो न माया-सग।
नाग तजी जिम काचली, विष नहि तजियो अग ॥११॥

आतम-निंदा शुध भणी, गुणिजन वदन भाव।
राग-द्वेष उपशम करी, सबसे खमत-खमाव ॥१२॥

मोह भाव क्षय होय ज्या, अथवा होय प्रशात।
ते कहिये ज्ञानी दशा, बाकी कहिये भ्रात ॥१३॥

देह छता जेनी दशा, वरते देहातीत।
ते ज्ञानी ना चरण मा, वदन हो अगणीत ॥१४॥

मत्र तत्र औषध नही, जिनसे पाप पलाय।
वीतरागी वाणी बिना, अवर न कोय उपाय ॥१५॥
विषय घटचा मन थिर हुवे, आतम तत्त्व अनूप।
ज्ञान-ध्यान बल साध के, होवे ब्रह्म स्वरूप ॥१६॥
ज्ञान बिना कैसी क्रिया, गुण बिन ज्यो सौभाग्य।
गुरु बिन जान-पणो किस्यो, उपशम बिन वैराग्य ॥१७॥

सुख माने तो सौख्य है, दुख माने तो दुख।
सच्चा सुखिया है वही, सुख माने ना दु:ख ॥१८॥
जो पहले कीजे जतन, सो पीछे फल पाय।
आग लगे खोदे कुआ, कैसे आग बुझाय ॥१९॥
उत्तम कुल नर-भव मिल्यो, पाय धर्म जिन राय।
तज प्रमाद उद्यम करो, खिण लाखीणी जाय ॥२०॥
जरा आय जोबन गयो, पलित हुआ सिर-केस।
लोलुपता छोडी नही, धर्म कियो ना लेस ॥२१॥
आतम अविनाशी सदा, अचल रहत है एक।
तन नाशी अरु चल लखे, तिसका नाम विवेक ॥२२॥
धन-यौवन नर रूप को, करतो गर्व गवार।
कृष्ण राय की द्वारिका, जाता लगी न वार ॥२३॥
एक आँख के फुरकते, उथल-पुथल हो जाय।
यो जानी ने जीवडा, मत कर ममता माय ॥२४॥
पाप-घड़ो पूरण भरी, लीनो सिर पे भार।
सो किम छूटे प्राणियाँ, कियो न धर्म लिगार ॥२५॥
पर-पीठे निंदा करे, देवे कूड़ा आल।
पर का मर्म प्रकाशतो, तिनसे वर चण्डाल ॥२६॥
पर अवगुन सरसव-समो, करता मेरु समान।
क्यो निंदा तू पार की, करता आप अयान ॥२७॥
पर-अवगुन जिम देखतो, त्यो पर-गुण तू जोय।
पर-गुण लेता जीव ने, अखय अमर पद होय ॥२८॥
जो निंदा पर की करे, वही जीव जग माय।
मल पट धोवे पार का, मर कर दुर्गति जाय ॥२९॥

आशा अबर जेवडी, मरनो पगल्या हेठ ।
धर्म बिना जो दिन गया, समझो सब ही नेठ ॥३०॥

पुत्र कुपुत्र ज मैं हुओ, अवगुण भरया अनत ।
या हित बुद्धि विचार के, माफ करो भगवत ॥३१॥

शासनपति वर्द्धमान जी, तुम लग मेरी दौड ।
जिम समुद्र जहाज बिन, सूझत और न ठौर ॥३२॥

भव-भ्रमण संसार-दुख, ताका वार न पार ।
निर्लोभी सतगुरु बिना, कौन उतारे पार ॥३३॥

पतित उद्धारण नाथजी, अपनो विरुद विचार ।
भूल-चूक सब माहरी, खमिये वारवार ॥३४॥

माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष ।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील सतोष ॥३५॥

इस अपार ससार मे, शरण नही अरु कोय ।
या ते तुम पद कमल ही, भक्त सहायी होय ॥३६॥

छूटू पिछला पाप से, नवा न बाधू कोय ।
श्री गुरुदेव - प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ॥३७॥

आरभ परिग्रह को तजी, समकित व्रत आराध ।
अत अवसर आलोय के, अनशन चित्त समाध ॥३८॥

तीन मनोरथ ए कह्या, जे ध्यावे नित्य मन ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिवसुख घन ॥३९॥

श्री पच परमेष्ठी भगवत ! गुरुदेव महाराज ! सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र - तप-सयम - सवर-निर्जरा आदि मुक्ति-मार्ग को यथाशक्ति से, उपयोग सहित आराधने - पालने-फरसने की

आपकी आज्ञा है; वारवार शुभयोग सवधी सज्झाय ध्याना-दिक, अभिग्रह-नियम व पच्चक्खाणादि करने-कराने की समति-गुप्ति प्रमुख सर्व प्रकारे आज्ञा है।

निश्चल चित शुध मुख पढत, तीन योग थिर थाय।
दुर्लभ दीसे कायरा, हलुकर्मी चित भाय ।।

अक्षर पद हीणो अधिक, भूल-चूक कही होय।
भगवत आतम-साख से, मिच्छा दुक्कड मोय ।।

पद्मावती री ढाल

(तर्ज · इम समकित मन थिर)

हिव राणी पदमावती, जीव - राशि खमावे।
जाणपणु जग ते भलु, इण वेला आवे ।।१।।

ते मुझ मिच्छामि दुक्कड, अरिहत नी साख।
जो मैं जीव विराधिया, चौरासी लाख ते ।।२।।

सात लाख पृथिवी तणा, साते अपकाय।
सात लाख तेऊ काय ना, साते वलि वाय ते ।।३।।

दश प्रत्येक वनस्पति, चवदह साधार।
वे-ति-चउरिंद्रिय जीव ना, वे-वे लाख विचार ते ।।४।।

देवता तिर्यंच नारकी, चार-चार प्रकासी।
चौदह लाख मनुष्य ना, ए लाख चौरासी ते ।।५।।

इण भव पर - भव सेविया, जे पाप अठार।
त्रिविध त्रिविध करि परिहरू, दुरगति दातार ते ।।६।।

हिंसा कीधी जीव नी, बोल्या मिरषावाद।
दोष अदत्तादान ना, मैथुन उनमाद ते ॥७॥
परिग्रह मेल्यो कारमो, कीधो क्रोध विशेष।
मान माया लोभ मैं किया, वलि राग ने द्वेष ते ॥८॥
कलह करी जीव दूहव्या, दीधा कूडा कलक।
निंदा कीधी पार की, रति अरति निसक ते ॥९॥
चाडी खाधी चउतरे, कीधो थापण मोसो।
कुगुरु-कुदेव-कुधर्म नो, भलो आण्यो भरोसो ते ॥१०॥
खाटकि ने भवे मैं किया, जीव ना वध घात।
चिडीमार भवि चिडकला, मारया दिन रात ते ॥११॥
काजी मुल्ला ने भवे, पढी मत्र कठोर।
जीव अनेक जिबह किया, कीधा पाप अघोर ते ॥१२॥
माछीगर भवि माछला, झाल्या जल वास।
धीवर-भील-कोली भवे, मृग माड्या पास ते ॥१३॥
कोटवाल ने भवि किया, आकरा कर दड।
बन्दीवान मराविया, कोरडा छडी दड ते ॥१४॥
परमाधामी ने भवे, दीधा नारकि दुख।
छेदन भेदन वेदना, ताडना अति तिक्ख ते ॥१५॥
कुभार ने भवि जे किया, नीमाह पचाव्या।
तेली भवे तिल पीलिया, पापे पिण्ड भराव्या ते ॥१६॥
हाली ने भवि हल खड्या, फाड्या पृथिवी पेट।
सूड-निनाण किया घणा, दीधी वलद थपेट ते ॥१७॥
माली ने भवि रोपिया, नाना विध वृक्ष।
मूल पत्र फल फूल ना, लाग्या पाप लक्ष ते ॥१८॥

अद्धोवाई आगमी, भरया अधिका भार।
पोठी ऊठ कीडा पडया, दया न रही लगार "ते " ॥१९॥
छीपा ने भवि छेतरयो, कीधा रागरिण पास।
अगनि आरभ किया घरणा, धातुर्वाद अभ्यास "ते " ॥२०॥
शूर पणे रण जूझता, मारया माणस-वृ द।
मदिरा मास माखरण भख्या, खाधा मूल ने कद "ते " ॥२१॥
खारिण खरणावी धातु नी, पाणी उलिच्या।
आरभ कीधा अति घरणा, पोते पाप सच्या "ते " ॥२२॥
अगार कर्म किया वली, धरमे दव दीधा।
सुस कीधा वीतराग ना, कूडा दोषज दीधा ते ॥२३॥
बिल्ली भवि उन्दर लीया, गलोई हत्यारी।
मूढ गवार तणे भवे, मैं जूं - लीख मारी ते ॥२४॥
भडभुजा तणे भवे, एकेन्द्रिय जीव।
जवार चिणा गेहू सेकिया, पाडता रीव ते ॥२५॥
खाडण पीसण गारि ना, आरभ अनेक।
राधरण इधरण आग ना, कीधा पाप उदेक " ते ॥२६॥
विकथा चार कीधी वलि, सेव्या पच प्रमाद।
इष्ट वियोग पडया किया, रोदन विष-वाद ते ॥२७॥
साधु अने श्रावक तणा, व्रत लेई भागा।
मूल अने उत्तर तणा, मुझ दूषण लागा ते " ॥२८॥
साप बिच्छू सिंह चीतरा, सिकरा ने समली।
हिंसक जीव तणे भवे, हिंसा कीधी सबली ते ॥२९॥
सूयावडि दूषण घणा, वलि गरभ गलाया।
जीवाणी ढोळ्या घडा, शील वरत भजाया ते ॥३०॥

भव अनत भमता थका, किया कुटुम्ब सम्बन्ध ।
त्रिविध-त्रिविध करी वोसिरू, तिण सु प्रतिबन्ध ते ॥३१॥

भव अनत भमता थका, कीया देह-सबध ।
त्रिविध-त्रिविध करी वोसिरू, तिण सु प्रतिबध ते ॥३२॥

भव अनत भमता थका, किया परिग्रह-सम्बन्ध ।
त्रिविध-त्रिविध करी वोसिरू, तिण सु प्रतिबध ते ॥३३॥

इण परि इह-भव पर-भवे, किया पाप अखत्र ।
त्रिविध-त्रिविध करी वोसिरू करू जन्म पवित्र ते ॥३४॥

इण विधि यह आराधना, भावे करसे जेह ।
"समयसुदर" कहे पाप थी, वलि छूट से तेह ते ॥३५॥

—महोपाध्याय समयसुदरजी म.



स्तोक-विभाग

पच्चीस बोल

बोल पहला गति चार

१ नरक गति २. तिर्यंच गति ३ मनुष्य गति ४. देव गति।

बोल दूसरा : जाति पांच

१ एकेंद्रिय जाति २. द्वीन्द्रिय (वेइन्द्रिय) जाति ३. त्रीन्द्रिय (तेइन्द्रिय) जाति ४. चतुरिन्द्रिय (चउरिन्द्रिय) जाति ५. पचेन्द्रिय जाति।

बोल तीसरा : काय छह

१ पृथ्वी-काय २ अप्काय ३ तेजस्-काय ४ वायु-काय ५ वनस्पति काय ६ त्रस-काय।

बोल चौथा : इंद्रिय पांच

१ श्रोत्र-इंद्रिय २ चक्षु-इन्द्रिय ३ घ्राण-इन्द्रिय ४ रसन-इन्द्रिय ५ स्पर्शन-इन्द्रिय।

बोल पांचवां : पर्याप्ति छह

१. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३ इन्द्रिय पर्याप्ति ४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति ५ भापा पर्याप्ति ६. मन पर्याप्ति।

बोल छठा प्राण दस

१ श्रोत्रेन्द्रिय-वलप्राण २ चक्षुरिन्द्रिय-वलप्राण
३ घ्राणेन्द्रिय-वलप्राण ४ रसनेन्द्रिय-वलप्राण

५ स्पर्शनेद्रिय-बलप्राण ६ मन-बलप्राण ७ वचन-बलप्राण ८ काय-बलप्राण ९ श्वासोच्छ्वास-बलप्राण १० आयुष्य-बलप्राण ।

बोल सातवां शरीर पांच

१ औदारिक शरीर २ वैक्रिय शरीर ३ आहारक शरीर ४ तैजस् शरीर ५ कार्मण शरीर ।

बोल आठवां योग पंद्रह

(i) **चार मनोयोग**—१ सत्य मनोयोग २ मृषा (असत्य) मनोयोग ३ सत्य-मृषा (मिश्र) मनोयोग ४ अ-सत्य-मृषा (व्यवहार) मनोयोग ।

(ii) **चार वचन योग**— १ सत्य वचन-योग २ मृषा (असत्य) वचन-योग ३ सत्य-मृषा (मिश्र) वचन-योग ४ अ-सत्य-मृषा (व्यवहार) वचन-योग ।

(iii) **सात काय-योग**— १ औदारिक काय-योग २ औदारिक मिश्र काय-योग ३ वैक्रिय काय-योग ४ वैक्रिय मिश्र काय-योग ५ आहारक काय-योग ६. आहारक मिश्र काय-योग ७ कार्मण काय-योग ।

बोल नववां उपयोग बारह

(i) **पांच ज्ञान**—१ मति ज्ञान २ श्रुत ज्ञान ३ अवधि ज्ञान ४ मन पर्याय ज्ञान ५ केवल ज्ञान ।

(ii) **तीन अज्ञान**— १ मति अज्ञान २ श्रुत अज्ञान ३ अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान) ।

(iii) **चार दर्शन**—१ चक्षु दर्शन २ अचक्षु दर्शन ३ अवधि दर्शन ४ केवल दर्शन ।

बोल दसवां : कर्म आठ

१. ज्ञानावरणीय कर्म २ दर्शनावरणीय कर्म ३ वेदनीय कर्म ४ मोहनीय कर्म ५ आयुष्य कर्म ६ नाम कर्म ७ गोत्र कर्म ८ अतराय कर्म ।

बोल ग्यारहवां : गुणस्थान चौदह

१ मिथ्यात्व गुणस्थान २ सास्वादन गुणस्थान ३ मिश्र गुणस्थान ४. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ५ देशविरत श्रावक गुणस्थान ६ प्रमत्त सयत गुणस्थान ७. अप्रमत्त सयत गुणस्थान ८. निवृत्ति बादर गुणस्थान ९. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान १० सूक्ष्म सपराय गुणस्थान ११ उपशात मोह गुणस्थान १२ क्षीण मोह गुणस्थान १३ सयोगी केवली गुणस्थान १४ अयोगी केवली गुणस्थान ।

बोल बारहवां . इंद्रिय-विषय तेईस

(i) **तीन श्रोत्रेंद्रिय-विषय**— १. जीव शब्द २ अजीव शब्द ३ मिश्र शब्द ।

(ii) **पांच चक्षुरिंद्रिय-विषय**—१ कृष्ण वर्ण २ नील वर्ण ३ रक्त वर्ण ४. पीत वर्ण ५ श्वेत वर्ण ।

(iii) **दो घ्राणेंद्रिय-विषय**—१. सुरभिगध २ दुरभिगध ।

(iv) **पांच रसनेंद्रिय-विषय**—१ तीक्ष्ण रस २ कटु रस ३ कषाय रस ४. अम्ल (खट्टा) रस ५ मधुर (मीठा) रस ।

(v) **आठ स्पर्शनेंद्रिय-विषय**—१ कर्कश स्पर्श २ मृदु स्पर्श ३ गुरु स्पर्श ४ लघु स्पर्श ५ ऊष्ण स्पर्श ६. शीतस्पर्श ७ रुक्ष स्पर्श ८. स्निग्ध स्पर्श ।

बोल तेरहवां : मिथ्यात्व दस

१ जीव को अजीव समझना २ अजीव को जीव समझना ३ धर्म को अधर्म समझना ४ अधर्म को धर्म समझना ५. साधु को असाधु समझना ६ असाधु को साधु समझना ७ आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त समझना ८ आठ कर्मों से अमुक्त को मुक्त समझना ९ ससार-मार्ग को मोक्ष-मार्ग समझना १० मोक्ष-मार्ग को ससार-मार्ग समझना ।

बोल चौदहवां : नव तत्त्व के एक सौ पन्द्रह भेद

(i) **जीव के चौदह भेद**—१ अपर्याप्त सूक्ष्म एकेंद्रिय २ पर्याप्त सूक्ष्म एकेंद्रिय ३ अपर्याप्त बादर एकेंद्रिय ४ पर्याप्त बादर एकेंद्रिय ५ अपर्याप्त द्वीद्रिय ६ पर्याप्त द्वीद्रिय ७ अपर्याप्त त्रीद्रिय ८. पर्याप्त त्रीद्रिय ९ अपर्याप्त चतुरिद्रिय १० पर्याप्त चतुरिद्रिय ११ अपर्याप्त असज्ञी पचेद्रिय १२ पर्याप्त असज्ञी पचेद्रिय १३ अपर्याप्त सज्ञी पचेद्रिय १४ पर्याप्त सज्ञी पचेद्रिय ।

(ii) **अजीव के चौदह भेद**—१ धर्मास्तिकाय का स्कध २ धर्मास्तिकाय-स्कध का देश ३ धर्मास्तिकाय-स्कध का प्रदेश ४ अधर्मास्तिकाय का स्कध ५ अधर्मास्तिकाय-स्कध का देश ६ अधर्मास्तिकाय-स्कध का प्रदेश ७ आकाशास्तिकाय का स्कध ८ आकाशास्तिकाय-स्कध का देश ९ आकाशास्तिकाय-स्कध का प्रदेश १० काल ११. पुद्गलास्तिकाय का स्कध १२. पुद्गलास्तिकाय का देश १३. पुद्गलास्तिकाय का प्रदेश १४ परमाणु पुद्गल ।

(iii) पुण्य के नव भेद –१. अन्न पुण्य २. पान पुण्य ३ लयन पुण्य ४. शयन पुण्य ५. वस्त्र पुण्य ६ मन पुण्य ७. वचन पुण्य ८. काय पुण्य ९. नमस्कार पुण्य ।

(iv) पाप के अठारह भेद—१. प्राणातिपात २. मृपावाद ३ अदत्तादान ४. मैथुन ५. परिग्रह ६. क्रोध ७. मान ८ माया ९. लोभ १०. राग ११ द्वेष १२ कलह १३. अभ्याख्यान १४ पैशुन्य १५. पर-परिवाद १६. रति-अरति १७. माया-मृपावाद १८. मिथ्या-दर्शन-शल्य ।

(v) आस्रव के बीस भेद– १. मिथ्यात्व २. अविरति ३ प्रमाद ४. कपाय ५. योग ६. प्राणातिपात-अविरमण (जीव-हिंसा का त्याग न करना) ७ मृपावाद-अविरमण (झूठ बोलने का त्याग न करना) ८. अदत्तादान-अविरमण (चोरी करने का त्याग न करना) ९. मैथुन-अविरमण (कुशील-सेवन का त्याग न करना) १०. परिग्रह -अविरमण (परिग्रह रखने का त्याग न करना) ११. श्रोत्रेंद्रिय-अनिग्रह (श्रोत्रेंद्रिय को वश में न रखना) १२ चक्षुरिंद्रिय-अनिग्रह (चक्षु - इंद्रिय को वश में न रखना) १३. घ्राणेंद्रिय-अनिग्रह (घ्राणेंद्रिय को वश में न रखना) १४. रसनेंद्रिय-अनिग्रह (रसनेंद्रिय को वश में न रखना) १५. स्पर्शनेंद्रिय-अनिग्रह (स्पर्शनेंद्रिय को वश में न रखना) १६. मन-अनिग्रह (मन को वश में न रखना) १७ वचन-अनिग्रह (वचन को वश मे न रखना) १८. काय-अनिग्रह (काय को वश में न

रखना) १९ भण्डोपकरण-वस्त्र-पात्र को लेने-रखने मे अयतना २० शुचि-कुशाग्र-मात्र को लेने-रखने मे अयतना ।

(vi) **संवर के बीस भेद**—१ सम्यक्त्व २ विरति ३ अप्रमाद ४ अकषाय ५ अयोग ६ प्राणातिपात-विरमण (जीव-हिंसा का त्याग करना) ७. मृषावाद-विरमण (झूठ बोलने का त्याग करना) ८ अदत्तादान-विरमण (चोरी करने का त्याग करना) ९ मैथुन-विरमण (कुशील-सेवन का त्याग करना) १० परिग्रह-विरमण(परिग्रह रखने का त्याग करना)११ श्रोत्रेंद्रिय निग्रह (श्रोत्रेंद्रिय को वश मे रखना) १२ चक्षुरिंद्रिय-निग्रह (चक्षुरिंद्रिय को वश मे रखना) १३ घ्राणेंद्रिय-निग्रह (घ्राणेंद्रिय को वश मे रखना) १४ रसनेंद्रिय-निग्रह (रसनेंद्रिय को वश मे रखना) १५ स्पर्शनेंद्रिय-निग्रह(स्पर्शनेंद्रिय को वश मे रखना) १६ मन-विग्रह (मन को वश मे रखना) १७ वचन-निग्रह (वचन को वश मे रखना) १८ काय-निग्रह (काय को वश मे रखना) १९ भडोपकरण-वस्त्र-पात्र को लेने रखने मे यतना २० शुचि-कुशाग्र-मात्र को लेने रखने मे यतना ।

(vii) **निर्जरा के बारह भेद**—१ अनशन २ ऊनोदरी ३ भिक्षाचर्या ४ रस-परित्याग ५ काय-क्लेश ६ प्रतिसलीनता ७ प्रायश्चित्त ८ विनय ९ वैयावृत्त्य १०. स्वाध्याय ११ ध्यान १२ व्युत्सर्ग ।

(viii) **बंध के चार भेद**—१ प्रकृति बध २ स्थिति बध ३. अनुभाग बध ४ प्रदेश बध ।

(IX) मोक्ष के चार भेद—१ सम्यग्ज्ञान २ सम्यग्दर्शन ३ सम्यक् चारित्र ४ सम्यक् तप ।

बोल पन्द्रहवां : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा २. कषाय आत्मा ३. योग आत्मा ४. उपयोग आत्मा ५ ज्ञान आत्मा ६. दर्शन आत्मा ७. चारित्र आत्मा ८ वीर्य आत्मा ।

बोल सोलहवां : दण्डक चौवीस

१. एक दंडक—सात नरक का—सात नरक—१. घर्मा २. वशा ३. शीला ४ अजना ५ रिष्टा ६. मघा ७. माघवती । इनके गोत्र—१. रत्नप्रभा २. शर्कराप्रभा ३ बालुकाप्रभा ४. पकप्रभा ५ धूमप्रभा ६. तमःप्रभा ७ तमस्तमःप्रभा ।

२-११. दस दंडक : भवनपति देव के—भवनपति देव—१ असुरकुमार २ नागकुमार ३ सुवर्ण कुमार ४. विद्युतकुमार ५ अग्निकुमार ६ द्वीपकुमार ७ उदधिकुमार ८ दिशाकुमार ९ पवनकुमार १० स्तनित कुमार ।

१२-१६. पांच दंडक : स्थावर के—स्थावर—१ पृथ्वीकाय २ अप्काय ३ तेजस्काय ४ वायुकाय ५ वनस्पतिकाय ।

१७-१९. तीन दंडक : विकलेंद्रिय के—विकलेद्रिय—१ द्वीद्रिय २ त्रीद्रिय ३ चतुरिंद्रिय ।

२० तिर्यंच पचेद्रिय का एक दडक । २१ मनुष्य का एक दडक । २२. वाणव्यतर-देव का एक दडक । २३. ज्योतिषी देव का एक दडक । २४ वैमानिक देव का एक दडक ।

बोल सतरहवां . लेश्या छह

१ कृष्ण लेश्या २ नील लेश्या ३ कापोत लेश्या ४ तेजो लेश्या ५ पद्म लेश्या ६ शुक्ल लेश्या ।

बोल अठारहवां : दृष्टि तीन

१ सम्यग्दृष्टि २ मिथ्या दृष्टि ३ सम्यक्-मिथ्या (मिश्र) दृष्टि ।

बोल उन्नीसवां : ध्यान चार

१ आर्त ध्यान २ रौद्र ध्यान ३ धर्म ध्यान ४ शुक्ल ध्यान ।*

बोल इक्कीसवां : राशि दो

१. जीव राशि २ अजीव राशि । (जीव राशि के पाच सौ तिरसठ भेद एव अजीव राशि के पाच सौ साठ भेद,)

बोल बाईसवां श्रावक के बारह व्रत

पांच अणुव्रत—१ स्थूल प्राणातिपात-विरमण २ स्थूल मृषावाद-विरमण ३ स्थूल अदत्तादान-विरमण ४ स्थूल मैथुन-विरमण ५ स्थूल परिग्रह-विरमण ।

तीन गुणव्रत—१ दिशा-परिमाण २ उपभोग-परिभोग-परिमाण ३ अनर्थदण्ड-विरमण ।

चार शिक्षाव्रत—१ सामायिक २ देशावकासिक ३ प्रति-पूर्ण पौषध ४. अतिथि-सविभाग ।

बोल तेईसवां : साधु के पांच महाव्रत

१ अहिंसा २ सत्य ३ अचौर्य ४ ब्रह्मचर्य ५ अपरिग्रह ।

बोल चोबीसवां : श्रावक के उनपचास भंग

अक ग्यारह—भग नव —

---

* बोल बीसवां पृष्ठ २३६ पर देखे ।

※ बोल बीसवा . छह द्रव्य के तीस भेद

द्रव्य ↓ / भेद→	द्रव्य से	क्षेत्र से	काल से	भाव से	गुण से
धर्मास्तिकाय	एक द्रव्य	लोक प्रमाण	आदिअत रहित	अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी, असख्यात प्रदेशी	चलन गुण (पानी मे मछली का दृष्टात)
अधर्मास्तिकाय	,,	,,	,,	,, ,, ,, ,,	स्थिर गुण (थके हुए पथिक को छाया का दृष्टात
आकाशास्तिकाय	,,	लोकालोक प्रमाण	,,	,, ,, ,, सर्वव्यापी अनत प्रदेशी	पोलार गुण (दूध मे बताशे का दृष्टात)
काल	अनत द्रव्य	अढाई द्वीप प्रमाण	,,	,, ,, ,, अढाई द्वीप व्यापी अप्रदेशी	वर्तन गुण (कपडे को कैंची का दृष्टात)
जीवास्तिकाय	,,	लोक प्रमाण	,,	,, जीव ,, लोक व्यापी अनत प्रदेशी	उपयोग गुण (चद्रमा को कला का दृष्टात)
पुद्गलास्तिकाय	,,	,,	,,	रूपी, अजीव, ,, लोक व्यापी सख्यात, असख्यात, अनत प्रदेशी	पूरण-गलन गुण (बादल का दृष्टात)

	१	१		१	१
१	करू नही	मन से	४	कराऊ नही	मन से
२.	करू नही	वचन से	५	कराऊ नही	वचन से
३	करू नही	काया से	६	कराऊ नही	काया से

७ अनुमोदू नही मन से
८. अनुमोदू नही वचन से
९ अनुमोदू नही काया से

अक बारह—भग नव

	१	२		१	२
१०	करू नही	-मन से-वचन से	१३	कराऊ नही	-मन से-वचन से
११.	करू नही	-मन से-काया से	१४	कराऊ नही	-मन से-काया से
१२	करू नही	-वचन से-काया से	१५.	कराऊ नही	-वचन से-काया से

१६ अनुमोदू नही मन से-वचन से
१७ अनुमोदू नही मन से-काया से
१८ अनुमोदू नही वचन से-काया से

अक तेरह—भग तीन

	१	३
१९	करू नही	—मन से, वचन से, काया से
२०	कराऊ नही	—मन से, वचन से, काया से
२१	अनुमोदू नही	—मन से, वचन से, काया से

अक इक्कीस—भग नव

	२		१
२२	करू नही-कराऊ नही	—	मन से
२३	करू नही-कराऊ नही	—	वचन से
२४	करू नही-कराऊ नही	—	काया से

२५ करू नही-अनुमोदू नही — मन से
२६ करू नही-अनुमोदू नही — वचन से
२७ करू नही-अनुमोदू नही — काया से
२८ कराऊ नही-अनुमोदू नही — मन से
२९ कराऊ नही-अनुमोदू नही — वचन से
३० कराऊ नही-अनुमोदू नही — काया से

अक बाईस—भग नव

२ २

३१ करू नही-कराऊ नही — मन से-वचन से
३२ करू नही-कराऊ नही — मन से-काया से
३३. करू नही-कराऊ नही — वचन से-काया से
३४. करू नही-अनुमोदू नही — मन से-वचन से
३५ करू नही-अनुमोदू नही — मन से-काया से
३६ करू नही-अनुमोदू नही — वचन से-काया से
३७ कराऊ नही-अनुमोदू नही — मन से-वचन से
३८ कराऊ नही-अनुमोदू नही — मन से-काया से
३९ कराऊ नही-अनुमोदू नही — वचन से-काया से

अक तेईस—भग तीन

२ ३

४० करू नही-कराऊ नही — मन से, वचन से, काया से
४१ करू नही-अनुमोदू नही — मन से, वचन से, काया से
४२ कराऊ नही-अनुमोदू नही — मन से, वचन से, काया से

अक इकतीस—भग तीन

३ १

४३ करू नही, कराऊ नही, अनुमोदू नही — मन से
४४ करू नही, कराऊ नही, अनुमोदू नही — वचन से

४५ करू नही, कराऊ नही, अनुमोदू नही — काया से

अक बत्तीस—भग तीन

३ २

४६ करू नही, कराऊ नही, अनुमोदू नही—मन से, वचन से
४७ करू नही, कराऊ नही, अनुमोदू नही—मन से, काया से
४८. करू नही, कराऊ नही, अनुमोदू नही—वचन से,काया से

अक तेतीस—भग एक

४९ करू नही,कराऊ नही,अनुमोदू नही—मन से,वचन से,काया से

बोल पच्चीसवां : चारित्र पांच

१ सामायिक चारित्र २ छेदोपस्थापनीय चारित्र ३ परिहार-विशुद्धि चारित्र ४ सूक्ष्मसपराय चारित्र ५ यथाख्यात चारित्र।

नव-तत्त्व

वस्तु के वास्तविक (आतरिक) स्वरूप को तत्त्व कहते है। आगमकार ने तत्त्व के नव भेद किये है, जो इस प्रकार है:—

१ जीव तत्त्व २ अजीव तत्त्व ३ पुण्य तत्त्व
४ पाप तत्त्व ५ आस्रव तत्त्व ६ सवर तत्त्व
७ निर्जरा तत्त्व ८ बध तत्त्व ९ मोक्ष तत्त्व

१. जीव तत्त्व—जीव का लक्षण चेतना है। जिसमे निराकारोपयोग अर्थात् दर्शन एव साकारोपयोग अर्थात् ज्ञान रूप सामान्य-विशेषात्मक बोध की शक्ति हो, उसे 'जीव-तत्त्व' कहते है। जीव-तत्त्व के सक्षेपत चवदह और विस्तारत पाच सौ तिरसठ भेद है।

संक्षेपत. चवदह भेद . १ सूक्ष्म एकेंद्रिय २ बादर एकेंद्रिय ३ द्वीद्रिय (बेइद्रिय) ४. त्रीद्रिय (तेइद्रिय) ५ चतुरिंद्रिय (चउरिंद्रिय) ६ असज्ञी पचेद्रिय ७. सज्ञी पचेद्रिय—इन सात के अपर्याप्त व पर्याप्त के भेद से जीव के सक्षेपत: (७×२=१४) चवदह भेद होते हैं।

विस्तारत पांच सौ तिरसठ भेद · (i) नारक के चवदह (ii) तिर्यच के अडतालीस (iii) मनुष्य के तीन सौ तीन और (iv) देव के एक सौ अठानवे—इस प्रकार (१४+४८+३०३+१९८=५६३) जीव के विस्तारतः पांच सौ तिरसठ भेद हैं, जिनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है

(i) **नारक के चवदह भेद**—१ घर्मा (घम्मा) २. वशा ३ शैला (सिला) ४ अजना ५ रिष्टा (रिट्ठा) ६ मघा और ७ माघवती (माघवई)—ये सात नरको के नाम है। इस सात नरको के गोत्र क्रमश इस प्रकार है—१. रत्नप्रभा २ शर्करा-प्रभा ३ वालुकाप्रभा ४. पकप्रभा ५ धूमप्रभा ६ तम प्रभा एव ७ महातम प्रभा। इन सात नरको मे रहने वाले जीवो के अपर्याप्त व पर्याप्त के भेद से नारक जीवो के (७×२=१४) चवदह भेद होते हैं।

(ii) **तिर्यंच के अड़तालीस भेद**—(अ) एकेंद्रिय के बाईस भेद (आ) विकलेंद्रिय के छह भेद और (इ) पचेंद्रिय के बीस भेद—ये कुल मिलकर (२२+६+२०=४८) हुए। एकेंद्रिय के बाईस भेद इस प्रकार है—

१ सूक्ष्म पृथ्वीकायिक	२. बादर पृथ्वीकायिक
३ सूक्ष्म अप्कायिक	४ बादर अप्कायिक
५ सूक्ष्म तेजस्कायिक	६ बादर तेजस्कायिक

७ सूक्ष्म वायुकायिक ८ बादर वायुकायिक
९ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक १० साधारण वनस्पतिकायिक
११ प्रत्येक वनस्पतिकायिक—इन ग्यारह के ही अपर्याप्त व पर्याप्त के भेद से (११×२=२२) बाईस भेद होते है। विकलेद्रिय के छह भेद इस प्रकार हैं—

१ द्वीद्रिय (बेइद्रिय) २ त्रीद्रिय (तेइद्रिय) ३ चतुरिद्रिय (चउरिद्रिय) इन तीन के ही अपर्याप्त व पर्याप्त के भेद से (३×२=६) छह भेद है। पचेद्रिय के बीस भेद इस प्रकार है·

१ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उर परिसर्प व ५ भुजपरिसर्प – ये पाच असज्ञी व सज्ञी के भेद से दस प्रकार के होते है एव अपर्याप्त व पर्याप्त के भेद से इन दस के ही बीस भेद होते है। (५×२=१०, १०×२=२०)

(iii) **मनुष्य के तीन सौ तीन भेद** – पाच भरत, पाच एरावत और पाच महाविदेह – ये कुल **पंद्रह कर्मभूमि क्षेत्र** है। इन पद्रह कर्मभूमि क्षेत्रो मे उत्पन्न जीवो के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से (१५×२=३०) **तीस भेद** होते है। पाच देवकुरु, पाच उत्तरकुरु, पाच हरिवास, पाच रम्यक्वास, पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत – ये कुल **तीस अकर्मभूमि क्षेत्र** हैं। इन तीस अकर्मभूमि क्षेत्रो मे उत्पन्न मनुष्यो के अपर्याप्त व पर्याप्त के भेद से (३०×२=६०) **साठ भेद** होते है।

जबूद्वीप मे भरतक्षेत्र को मर्यादित करने वाला 'चुल्ल-हिमवान्' नाम का एक सुनहला पर्वत है। इस विशाल पर्वत के पूर्व तथा पश्चिम तटो पर दो-दो दाढे है। एक-एक दाढ़ **पर सात-सात 'अंतरद्वीप'** है – ये (७×४=२८) अठाइस हुए। इसी प्रकार एरावत क्षेत्र को मर्यादित करने वाला 'शिखरी'

नाम का पर्वत है। इस पर्वत के पूर्व-पश्चिम तटों पर भी दो-दो दाढें है तथा एक-एक दाढ़ पर सात-सात 'अंतरद्वीप' है – ये भी (७×४=२८) अठाइस हुए।

इस प्रकार कुल मिलाकर (२८+२८=५६) छप्पन अंतरद्वीप है। इन छप्पन अतरद्वीपों में उत्पन्न मनुष्यो के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से (५६×२=११२) एक सौ बारह भेद होते हैं।

पद्रह कर्मभूमि, तीस अकर्मभूमि व छप्पन अतरद्वीप के मनुष्यो के मल-मूत्रादि मे उत्पन्न होने वाले (१५+३०+५६ =१०१) एक सौ एक मनुष्य संमूर्च्छिम होते है। ये अपर्याप्त ही होते है।

इस प्रकार कर्मभूमिज मनुष्य तीस, अकर्मभूमिज मनुष्य साठ एव अतरद्वीपज मनुष्य एक सौ बारह—ये गर्भज मनुष्यो के (३०+६०+११२=२०२) दो सौ दो तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्य (१०१) एक सौ एक — सब मिलकर मनुष्य के (२०२+१०१=३०३) तीन सौ तीन भेद हुए।

(IV) देव के एक सौ अठानवे भेद—

(१) भवनपति देव के दस (१०) भेद
(२) परमाधार्मिक देव के पद्रह(१५) भेद
(३) वाणव्यतर देव के सोलह (१६) भेद
(४) जृंभक-देव के दस (१०) भेद
(५) ज्योतिष्क देव के दस (१०) भेद
(६) किल्विषिक देव के तीन (३) भेद
(७) कल्पोपपन्न देव के बारह (१२) भेद
(८) लोकातिक देव के नव (९) भेद

(९) ग्रैवेयक देव के नव (९) भेद

(१०) अनुत्तरविमान देव के पाच (५) भेद

ये निन्यानवे (९९) हुए। इनके अपर्याप्त व पर्याप्त के भेद से देव के कुल (९९×२=१९८) एक सौ अठानवे भेद होते हैं।

२. अजीव-तत्त्व— अजीव का लक्षण जडता है। इसमे चेतना-शक्ति का अत्यंताभाव होता है। अजीव-तत्त्व के सामान्यत. चवदह और विशेषत **पांच सौ साठ** भेद है।

सामान्यत चवदह भेद :

१. धर्मास्तिकाय का स्कध
२ धर्मास्तिकाय-स्कध का देश
३. धर्मास्तिकाय-स्कध का प्रदेश
४. अधर्मास्तिकाय का स्कध
५. अधर्मास्तिकाय-स्कध का देश
६. अधर्मास्तिकाय-स्कध का प्रदेश
७ आकाशास्तिकाय का स्कध
८ आकाशास्तिकाय-स्कध का देश
९ आकाशास्तिकाय-स्कध का प्रदेश
१० काल
११ रूपी पुद्‌गल का स्कध
१२ रूपी पुद्‌गल का देश
१३. रूपी पुद्‌गल का प्रदेश
१४. रूपी पुद्‌गल का परमाणु

विशेषतः पांच सौ साठ भेद . (I) रूपी अजीव के पाच सौ तीस एव (II) अरूपी अजीव के तीस – इस प्रकार (५३०+३० ५६०) अजीव के विशेपत· पाच सौ साठ भेद है, जिनका विवरण इस प्रकार है

(1) **रूपी अजीव के पांच सौ तीस भेद —**

(अ) पाच वर्णो के एक सौ (१००) भेद
(आ) दो गधो के छियालिस (४६) भेद
(इ) पाच रसो के एक सौ (१००) भेद
(ई) आठ स्पर्शों के एक सौ चौरासी (१८४) भेद
(उ) पाच सस्थानो के एक सौ (१००) भेद

(अ) **पांच वर्णो के एक सौ भेद** — १ काला २ नीला ३ लाल ४. पीला और ५ सफेद – ये पाच वर्ण है। इनमे से प्रत्येक मे दो गध, पाच रस, आठ स्पर्श और पाच सस्थान – ये बीस भेद पाये जाते हैं। इस प्रकार पाच वर्णो के कुल (२०×५=१००) एक सौ भेद होते है।

(आ) **दो गंधो के छियालिस भेद**—१ सुगध और २ दुर्गंध—ये दो गध है। इनमे से प्रत्येक मे पाच वर्ण, पाच रस, आठ स्पर्श व पाच सस्थान—ये तेईस भेद पाये जाते है। इस प्रकार दो गधो के कुल (२३×२=४६) छियालिस भेद होते है।

(इ) **पाच रसो के एक सौ भेद**—१ तीखा २ कडवा ३. कषैला ४. खट्टा और ५ मीठा—ये पाच रस है। इनमे से प्रत्येक मे पाच वर्ण, दो गध, आठ स्पर्श व पाच सस्थान—ये बीस भेद पाये जाते हैं। इस प्रकार पाचो रसो के कुल (२०×५=१००) एक सौ भेद होते हैं।

(ई) **आठ स्पर्शो के एक सौ चौरासी भेद**—१ कठोर २ कोमल ३ भारी ४ हलका ५ गरम ३ ठडा ७ लूखा और ८ चुपडा—ये आठ स्पर्श है। इनमे से प्रत्येक मे

तेईस भेद पाये जाते है। **कठोर व कोमल स्पर्शो में** प्रत्येक मे निम्न तेईस भेद पाये जाते हैं– पाच वर्ण, दो गध, पाच रस, छह स्पर्श (कठोर व कोमल को छोडकर) और पाच सस्थान। **भारी व हलका स्पर्शो मे** प्रत्येक मे निम्न तेईस भेद पाये जाते हैं—पाच वर्ण दो गध, पाच रस, छह स्पर्श (भारी व हलका को छोडकर) और पाच सस्थान। **गरम व ठंडा स्पर्शो में** प्रत्येक मे निम्न तेईस भेद पाये जाते है—पाच वर्ण, दो गंध, पाच रस, छह स्पर्श (गरम व ठडा को छोडकर) और पाच सस्थान। **लूखा व चुपड़ा स्पर्श मे** प्रत्येक मे निम्न तेईस भेद पाये जाते हैं—पाच वर्ण, दो गध, पाच रस, छह स्पर्श (लूखा व चुपडा को छोडकर) और पाच सस्थान। इस प्रकार आठो स्पर्शों के कुल (२३×८=१८४) एक सौ चोरासी भेद होते है।

(उ) **पांच संस्थानो के एक सौ भेद**—१ परिमडल (चूडी के आकार का गोल) २ वृत्त (लड्डू के आकार का गोल) ३ त्र्यस्र (तिकोना) ४ चतुरस्र (चौकोर) और ५ आयत (धागे के जैसा लम्वा)—ये पाच सस्थान हैं। इनमे से प्रत्येक मे पाच वर्ण, दो गध, पाच रस और आठ स्पर्श—ये बीस भेद पाये जाते है। इस प्रकार पाचो सस्थानो के कुल (२०×५=१००) एक सौ भेद होते हैं।

(II) **अरूपी अजोव के तीस भेद**—१. धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३ आकाशास्तिकाय—इन तीनो के प्रत्येक के तीन भेद—१ स्कध २ देश ३ प्रदेश। ये

(३×३=९) नव और १ काल—ये कुल दस (१०) भेद हुए।

१ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय और ४ काल—ये चारो (प्रत्येक) पाँच बोलो से पहचाने जाते हैं—१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४. भाव व ५ गुण। ये (४×५=२०) बीस भेद हुए।

इस प्रकार कुल मिलाकर (१०+२०=३०) तीस भेद अरूपी अजीव के हैं।

३. **पुण्य-तत्त्व**—शुभकर्म (प्रकृतिया) पुण्य है। शुभकर्म-जन्य या शुभ कर्मो की जनक जीव की शुभ वृत्तियो तथा प्रवृत्तियो को भी पुण्य कहा जाता है। नव प्रकार से पुण्य का बध होता है एव वधा हुआ पुण्य बयालीस प्रकार से भोगा जाता है।

पुण्य-बंध के नव भेद

१ अन्न पुण्य=क्षुधा-पूर्ति के लिए अन्न देना।
२ पान पुण्य=तृषा-शमन के लिए जल देना।
३ लयन पुण्य=निवास के लिए भवन देना।
४ शयन पुण्य=सोने-वैठने के लिए आसन देना।
५. वस्त्र पुण्य=ओढने-पहनने के लिए वस्त्र देना।
६ मन पुण्य=मन मे शुभ भावना रखना।
७ वचन पुण्य=शुभ तथा सत्य वचन बोलना।
८ काय पुण्य=शरीर से सेवा आदि सत्कार्य करना।
९ नमस्कार पुण्य=गुणिजनो को नमन करना।

पुण्य-भोग के बयालीस भेद—(i) वेदनीय कर्म का एक भेद (ii) आयुष्य कर्म के तीन भेद (iii) नाम कर्म के सैंतीस भेद व (iv) गोत्र कर्म का एक भेद – ये कुल मिलकर (१+३+३७+१=४२) बयालीस हुए।

(i) **वेदनीय कर्म का एक भेद** – (१) साता वेदनीय ।

(ii) **आयुष्य कर्म के तीन भेद** – (१) देव आयुष्य (२) मनुष्य आयुष्य (३) तिर्यंच आयुष्य ।

(iii) **नाम कर्म के सैंतीस भेद** – (१) देवगति (२) मनुष्य गति (३) पचेद्रिय जाति (४) औदारिक शरीर (५) वैक्रिय शरीर (६) आहारक शरीर (७) तैजस् शरीर (८) कार्मण शरीर (९) औदारिक अगोपाग (१०) वैक्रिय अगोपाग (११) आहारक अगोपाग (१२) वज्रऋषभनाराच सहनन (१३) समचतुरस्र सस्थान (१४) शुभ वर्ण (१५) शुभ गध (१६) शुभ रस (१७) शुभ स्पर्श (१८) देवानुपूर्वी (१९) मनुष्यानुपूर्वी (२०) शुभ विहायोगति (२१) पराघात (२२) उच्छ्वास (२३) आतप (२४) उद्योत (२५) अगुरु-लघु (२६) तीर्थंकर (२७) निर्माण (२८) त्रस (२९) बादर (३०) पर्याप्त (३१) प्रत्येक (३२) स्थिर (३३) शुभ (३४) सुभग (३५) सुस्वर (३६) आदेय और (३७) यश कीर्ति ।

(iv) **गोत्र कर्म का एक भेद**—(१) उच्च गोत्र ।

४. **पाप-तत्त्व**—अशुभ कर्म (प्रकृतिया) पाप है । अशुभ कर्म-जन्य या अशुभ कर्मों की जनक जीव की अशुभ वृत्तियो एव प्रवृत्तियो को भी पाप कहा जाता है । अठारह प्रकार से पाप का बध होता है एव बधा हुआ पाप बयासी प्रकार से भोगा जाता है ।

पाप-बध के अठारह भेद –

१ प्राणातिपात = किसी भी प्राणी के प्राणो का हनन करना ।

२ मृषावाद = असत्य बोलना।
३ अदत्तादान = किसी भी वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण करना।
४ मैथुन = ब्रह्मचर्य का भग करना।
५ परिग्रह = अप्राप्त भौतिक पदार्थों का वाँछा-पूर्वक सग्रह करना एव प्राप्त पदार्थों के प्रति आसक्ति का भाव रखना।
६ क्रोध = क्रोध करना।
७ मान = अहकार करना।
८ माया = कपट करना।
९ लोभ = लोभ करना।
१० राग = अप्रकट माया और लोभ से युक्त आसक्ति-भाव।
११ द्वेष = अप्रकट क्रोध और मान से युक्त तिरस्कार-भाव।
१२ कलह = झगडा करना।
१३ अभ्याख्यान = कलक लगाना।
१४. पैशुन्य = चुगली करना।
१५ परपरिवाद -- दूसरो की निंदा करना।
१६ रति-अरति = इष्ट के सयोग मे प्रसन्नता एव वियोग मे अप्रसन्नता का भाव।
१७ माया-मृषावाद = कपट-सहित झूठ बोलना।
१८ मिथ्यादर्शन-शल्य = अवास्तविक दृष्टिकोण।

पाप-भोग के बयासी भेद (i) ज्ञानावरणीय कर्म के पाच (ii) दर्शनावरणीय कर्म के नव भेद (iii) वेदनीय कर्म का एक भेद (iv) मोहनीय कर्म के छब्बीस भेद (v) आयुष्य कर्म

का एक भेद (vi) नाम कर्म के चौतीस भेद (vii) गोत्र कर्म का एक भेद व (viii) अतराय कर्म के पाच भेद—ये कुल मिलकर (५+९+१+२६+१+३४+१+५=८२) बयासी हुए।

(i) **ज्ञानावरणीय कर्म के पांच भेद**—(१) मति ज्ञानावरणीय (२) श्रुतज्ञानावरणीय (३) अवधि ज्ञानावरणीय (४) मन पर्याय ज्ञानावरणीय (५) केवल ज्ञानावरणीय।

(ii) **दर्शनावरणीय कर्म के नव भेद**—(१) चक्षु दर्शनावरणीय (२) अचक्षु दर्शनावरणीय (३) अवधि दर्शनावरणीय (४) केवल दर्शनावरणीय (५) निद्रा (६) निद्रानिद्रा (७) प्रचला (८) प्रचलाप्रचला (९) स्त्यानर्द्धि।

(iii) **वेदनीय कर्म का एक भेद**—(१) असाता वेदनीय।

(iv) **मोहनीय कर्म के छब्बीस भेद**—(१) मिथ्यात्व मोहनीय (२) अनतानुबधी क्रोध (३) अनतानुबधी मान (४) अनतानुबधो माया (५) अनतानुबधी लोभ (६) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (७) अप्रत्याख्यानावरण मान (८) अप्रत्याख्यानावरण माया (९) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (१०) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (११) प्रत्याख्यानावरण मान (१२) प्रत्याख्यानावरण माया (१३) प्रत्याख्यानावरण लोभ (१४) सज्वलन क्रोध (१५) सज्वलन मान (१६) सज्वलन माया (१७) सज्वलन लोभ (१८) हास्य (१९) रति (२०) अरति (२१) भय (२२) शोक (२३) जुगुप्सा (२४) स्त्रीवेद (२५) पुरुषवेद (२६) नपुसकवेद।

(v) **आयुष्य कर्म का एक भेद**–(१) नरक आयुष्य।

(vi) **नाम कर्म के चौतीस भेद**–(१) नरक गति (२) तिर्यंच गति (३) एकेंद्रिय जाति (४) द्वीद्रिय जाति (५) त्रीद्रिय जाति (६) चतुरिद्रिय जाति (७) ऋषभनाराच सहनन (८) नाराच सहनन (९) अर्धनाराच सहनन (१०) कीलक सहनन (११) सेवार्त सहनन (१२) न्यग्रोघपरिमडल सस्थान (१३) सादि सस्थान (१४) कुब्ज सस्थान (१५) वामन सस्थान (१६) हुण्डक सस्थान (१७) अशुभ वर्ण (१८) अशुभ गध (१९) अशुभ रस (२०) अशुभ स्पर्श (२१) नरकानुपूर्वी (२२) तिर्यंचानुपूर्वी (२३) अशुभ विहायोगति (२४) उपघात (२५) स्थावर (२६) सूक्ष्म (२७) अपर्याप्त (२८) साधारण (२९) अस्थिर (३०) अशुभ (३१) दुर्भग (३२) दु स्वर (३३) अनादेय (३४) अयश.कीर्ति ।

(vii) **गोत्र कर्म का एक भेद**—(१) नीच गोत्र ।

(viii) **अंतराय कर्म के पांच भेद**—(१) दानातराय (२) लाभातराय (३) भोगातराय (४) उपभोगातराय (५) वीर्यांतराय ।

५ **आस्रव-तत्त्व**—आस्रव का अर्थ है—चारो ओर से प्रविष्ट होना। जिन कारणो से शुभ एव अशुभ कर्मपुद्‌गल आत्म-प्रदेशो के साथ आकर सलग्न होते है—एकमेक होते है, उन्हे ही आस्रव कहा जाता है। आस्रव-तत्त्व के सामान्यत पाच एव विशेपत. बयालीस भेद होते है।

सामान्यतः पांच भेद—

१ मिथ्यात्व = वस्तु-स्वरूप का अयथार्थ निश्चय।

२. अविरति = हिंसादि दोषो से विरत (मुक्त) न होना।

३ प्रमाद=कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की स्मृति मे असावधानी ।

४ कषाय=कर्म या ससार को बढाने वाले विकार ।

५. योग=मानसिक, वाचिक व कायिक प्रवृत्ति ।

विशेषत बयालीस भेद—(i) इद्रिय आस्रव के पाच (ii) कषाय आस्रव के चार (iii) अव्रत आस्रव के पाच (iv) योग आस्रव के तीन एव (v) क्रिया आस्रव के पचीस—इस प्रकार कुल मिला कर (५+४+५+३+२५=४२) बयालीस भेद हुए ।

(i) इंद्रिय आस्रव के पांच भेद—

१ श्रोत्रेद्रिय की राग-द्वेष-युक्त प्रवृत्ति ।

२. चक्षुरिंद्रिय की राग-द्वेष-युक्त प्रवृत्ति ।

६ घ्राणेद्रिय की राग-द्वेष-युक्त प्रवृत्ति ।

४ रसनेद्रिय की राग-द्वेष-युक्त प्रवृत्ति ।

५ स्पर्शनेद्रिय की राग-द्वेष-युक्त प्रवृत्ति ।

(ii) कषाय-आस्रव के चार भेद—

१ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ।

(iii) अव्रत-आस्रव के पांच भेद—

१ प्राणातिपात—जीव-हिंसा का त्याग न करना ।

२ मृषावाद — झूठ बोलने का त्याग न करना ।

३ अदत्तादान —स्वामी की आज्ञा के बिना किसी भी वस्तु को लेने का त्याग न करना ।

४ मैथुन —मैथुन-सेवन करने का त्याग न करना ।

५ परिग्रह —परिग्रह रखने का त्याग न करना ।

(iv) योग आस्रव के तीन भेद—

१ राग-द्वेष-युक्त मानसिक प्रवृत्ति ।

२ राग-द्वेष-युक्त वाचिक प्रवृत्ति ।
३ राग-द्वेष-युक्त कायिक प्रवृत्ति ।

(v) **क्रिया आस्रव के पच्चीस भेद—**

१ कायिकी २ आधिकरणिकी ३. प्राद्वेपिकी ४ पारितापनिकी ५ प्राणातिपातिकी ६. आरभिकी ७ पारिग्रहिकी ८ माया-प्रत्ययिकी ९ मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी १० अप्रत्याख्यानिकी ११ दृष्टिजा १२ स्पृष्टिजा १३. प्रातीत्यकी १४ सामतोपनिपातिकी १५ नैशस्त्रिकी १६. स्वाहस्तिकी १७ आज्ञापनिकी १८ वैदारणिकी १९ अनाभोग-प्रत्ययिकी २० अनवकाक्ष-प्रत्ययिकी २१ प्रायोगिकी २२ सामुदानिकी २३ प्रेम-प्रत्ययिकी २४ द्वेष-प्रत्ययिकी २५ ऐर्यापथिकी ।

६ **संवर-तत्त्व**—सवर का अर्थ है—सवरण करना या रोकना। जिन-जिन कारणो से कर्म-पुद्गल आत्म-प्रदेशो के साथ आकर लगते है, उन-उन कारणो का निरोध करना (प्रत्याख्यान करना) सवर कहलाता है। सवर-तत्त्व के सामान्यत. पाच एव विशेषतः सत्तावन भेद होते है।

सामान्यत पांच भेद—

१ सम्यक्त्व—वस्तु-स्वरूप का यथार्थ निश्चय ।
२ विरति —हिसादि दोषो से निवृत्त होना ।
३. अप्रमाद —आत्म-भान एव सावधानी ।
४ अकषाय —भव-भ्रमण-जन्य विकारो से निवृत्ति ।
५ अयोग —मानसिक, वाचिक व कायिक निवृत्ति ।

विशेषत सत्तावन भेद—(i) समिति सवर के पाच, (ii) गुप्ति सवर के तीन, (iii) धर्म सवर के दस (iv) अनुप्रेक्षा सवर के बारह, (v) परीषह-जय सवर के बावीस एव

(vi) चारित्र सवर के पाच —इस प्रकार कुल (५+३+१०+१२+२२+५=५७) सत्तावन भेद होते है।

(i) **समिति संवर के पांच भेद** १ ईर्या समिति ३ भाषा समिति ३. एषणा समिति ३ आदान-भड-मात्र-निक्षेपणा समिति ५ उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिका समिति।

(ii) **गुप्ति सवर के तीन भेद** १ मन गुप्ति २. वचन गुप्ति ३ काय गुप्ति।

(iii) **धर्म संवर के दस भेद** · १ क्षमा २ मुक्ति ३. आर्जव ३ मार्दव ५ लाघव ६ सत्य ७ सयम ८ तप ९ त्याग व १० ब्रह्मचर्य।

(iv) **अनुप्रेक्षा संवर के बारह भेद** : १ अनित्य २ अशरण ३ ससार ४ एकत्व ५ अन्यत्व ६ अशुचित्व ७ आस्रव ८ सवर ९ निर्जरा १० लोक ११ बोधिदुर्लभत्व और १२ धर्म।

(v) **परीषह-जय संवर के बाईस भेद** : १ क्षुधा २ पिपासा ३ शीत ४. ऊष्ण ५ दशमशक ६ अचेल ७ अरति ८ स्त्री ९ चर्या १० निषद्या ११ शय्या १२. आक्रोश १३ वध १४ याचना १५ अलाभ १६ रोग १७ तृणस्पर्श १८ जल्ल १९ सत्कार-पुरस्कार २० प्रज्ञा २१. अज्ञान और २२ अदर्शन।

(vi) **चारित्र संवर के पांच भेद**·— १ सामायिक २ छेदोपस्थापनीय ३ परिहारविशुद्धि ४. सूक्ष्मसपराय ५ यथाख्यात।

७ **निर्जरा-तत्त्व**—निर्जरा का अर्थ है—झडना या विलग होना। आत्म-प्रदेशो से कर्म-परमाणुओ का अशत' विलग होना (आशिक क्षय) निर्जरा है। अनशनादि तप भी, जिनकी आराधना से कर्मों का आशिक क्षय होता है, उपचार से निर्जरा के अन्तर्गत है। निर्जरा-तत्त्व के वारह भेद किये गये हैं, वे इस प्रकार हैं .

(i) वाहिरिक तप के छह भेद एव (ii) आभ्यतरिक तप के छह भेद।

(i) **वाहिरिक तप के छह भेद**:— १. अनशन २ अवमोदरिका (ऊणोदरी) ३. भिक्षाचर्या ४. रसपरित्याग ५ कायक्लेश ६. प्रतिसलीनता।

(ii) **आभ्यतरिक तप के छह भेद**:—१ प्रायश्चित्त २ विनय ३. वैयावृत्त्य ४ स्वाध्याय ५ ध्यान ६ व्युत्सर्ग।

८ **वंध-तत्त्व**.—वध का अर्थ है - मिल जाना। आस्रव के वाद कर्म-पुद्गलो का आत्म-प्रदेशो के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाना ही 'वध' है। वध-तत्त्व के चार भेद हैं – १ प्रकृति वध २ स्थिति वध ३ अनुभाग वध ४ प्रदेश वध।

१ **प्रकृति बंध** – आत्मा के द्वारा ग्रहण किये गये कर्म-पुद्गलो मे भिन्न-भिन्न स्वभावो का उत्पन्न होना 'प्रकृति वध' है।

२ **स्थिति बंध** – आत्मा के साथ कर्मो के वधे रहने की काल-मर्यादा को 'स्थिति-वध' कहते है।

३ **अनुभाग-बंध** - अनुभाग-वध को अनुभाव-वध, अनुभव-वध और रस-वध भी कहते हैं। वधे हुए कर्मों मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का उत्पन्न होना 'अनुभाग वध' है।

४ **प्रदेश बंध** – जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कधो का सम्बन्ध होना 'प्रदेश बध' कहलाता है।

इन चार प्रकार के बन्धो मे से प्रकृति और प्रदेश बध योग के निमित्त से होता है तथा स्थिति और अनुभाग बध कषाय के निमित्त से होता है।

प्रकृति बध, स्थिति बध व अनुभाग बध का विशेष वर्णन 'कर्म-प्रकृति' नामक स्तोक मे आ चुका है।

९ **मोक्ष तत्त्व** – मोक्ष का अर्थ है - छूट जाना। सपूर्ण कर्मों का क्षय अर्थात् समस्त कर्म-बधनो से आत्मा का छूट जाना ही 'मोक्ष' है। मोक्ष प्राप्त करने के चार कारण हैं : १ सम्यग्ज्ञान २ सम्यग्दर्शन ३ सम्यक् चारित्र और ४. सम्यक् तप।

उक्त चार मोक्ष के कारणो मे से **ज्ञान** और **दर्शन**, ये दोनो आत्मा के **अनादि-अनंत** विशेष गुण है। ये मुक्त अवस्था मे भी सदैव विद्यमान रहते है। इन दोनो गुणो की निर्मलता व सपूर्णता के कारण चारित्र और तप है। **चारित्र** व **तप**-ये दोनो गुण **सादि-सांत** है। मोक्ष-प्राप्त करने तक ही इनकी आवश्यकता रहती है।



कर्म-प्रकृति

कर्म की मूल-प्रकृतियाँ (भेद) आठ है. १ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४. मोहनीय ५ आयुष्य ६ नाम ७. गत्रो ८ अतराय। इन आठ कर्मों की उत्तर-प्रकृतियाँ

(क्रमश ५+६+२+२८+४+६३+२+५=१४८) कुल एक सौ अडतालीस है।

१. ज्ञानावरण-कर्म

लक्षण ज्ञानावरण-कर्म आत्मा के ज्ञान-गुण को आच्छादित करता है। (सूर्य और बादल का दृष्टात)

उत्तरप्रकृति ज्ञानावरण-कर्म की उत्तर-प्रकृतियाँ पाच है।

१ मति-ज्ञानावरण
२ श्रुत-ज्ञानावरण
३ अवधि-ज्ञानावरण
४ मन पर्याय-ज्ञानावरण
५ केवल-ज्ञानावरण

बध-कारण · ज्ञानावरण-कर्म-वध के कारण छह है

१ ज्ञान और ज्ञानी के प्रतिकूल आचरण करना।
२ ज्ञान को छिपाना तथा ज्ञानी के नाम को छिपाना।
३ ज्ञान मे अतराय (विघ्न) डालना।
४ ज्ञान तथा ज्ञानी के प्रति द्वेष रखना।
५ ज्ञान तथा ज्ञानी की आशातना करना।
६ ज्ञानियो के साथ झूठा विवाद करना।

फल-भोग ज्ञानावरण-कर्म का फल दस प्रकार से भोगा जाता है

१ श्रोत्रावरण (श्रवण-शक्ति का कम होना या बहरापन)

२ श्रोत्रविज्ञानावरण (सुनकर भी न समझ पाना)
३ नेत्रावरण (नेत्र-ज्योति की मंदता या अंधापन)
४ नेत्र-विज्ञानावरण (देखकर भी न समझ पाना)
५ घ्राणावरण (सूंघने की शक्ति कम होना या बिलकुल न होना)
६ घ्राणविज्ञानावरण (सूंघकर भी न समझ पाना)
७ रसनावरण (स्वाद-हीनता अथवा बिलकुल भी स्वाद न ले सकना)
८ रसनाविज्ञानावरण (स्वाद लेने पर भी उसे न समझ पाना)
९ स्पर्शनावरण (स्पर्श-शक्ति की मंदता अथवा बिलकुल अभाव)
१० स्पर्शनविज्ञानावरण (स्पर्श को समझने की योग्यता न होना)

स्थिति — ज्ञानावरण-कर्म की जघन्य-स्थिति 'अंतमुंहूर्त' उत्कृष्ट-स्थिति 'तीस कोटा कोटी सागरोपम' एवं अबाधा-काल जघन्य 'अंतमुंहूर्त', उत्कृष्ट 'तीन हजार वर्ष।'

२. दर्शनावरण-कर्म

लक्षण — दर्शनावरण-कर्म आत्मा के दर्शन-गुण को आच्छादित करता है। (राजा और द्वारपाल का दृष्टांत)

उत्तर-प्रकृति दर्शनावरण-कर्म की उत्तर-प्रकृतियाँ नव है

१. निद्रा (सुख-पूर्वक सोना एव जागना)
२. निद्रा-निद्रा (दु ख-पूर्वक सोना एव जागना)
३ प्रचला (खडे-खडे या बैठे बैठे ही सो जाना)
४ प्रचला-प्रचला (चलते-चलते नीद ले लेना)
५. स्त्यानर्द्धि (जागृतावस्था मे सोचा हुआ कार्य निद्रितावस्था मे ही पूर्ण कर डालना)
६ चक्षु-दर्शनावरण
७ अचक्षु-दर्शनावरण
८ अवधि-दर्शनावरण
९ केवल-दर्शनावरण

वध-कारण · दर्शनावरण-कर्म-वध के कारण छह हैं :

१ दर्शन और दर्शनी के प्रतिकूल आचरण करना ।
२ दर्शन को छिपाना तथा दर्शनी के नाम को छिपाना ।
३ दर्शन मे अतराय (विघ्न) डालना ।
४ दर्शन तथा दर्शनी के प्रति द्वेष रखना ।
५ दर्शन तथा दर्शनी की आशातना करना ।
६. दर्शनियो के साथ झूठा विवाद करना ।

फल-भोग दर्शनावरण-कर्म का फल नव प्रकार से भोगा जाता है .

१ निद्रा २ निद्रा-निद्रा ३. प्रचला ४ प्रचला-प्रचला ५ स्त्यानर्द्धि ६ चक्षु-दर्शनावरण ७ अचक्षु-दर्शनावरण ८. अवधि-दर्शनावरण ९. केवल-दर्शनावरण ।

स्थिति दर्शनावरण-कर्म की जघन्य-स्थिति 'अंत-मुंहूर्त', उत्कृष्ट-स्थिति 'तीस कोटाकोटी सागरोपम' एव अबाधा-काल जघन्य 'अत-मुंहूर्त', उत्कृष्ट 'तीन हजार वर्ष ।'

३. वेदनीय कर्म

लक्षण वेदनीय कर्म के द्वारा आत्मा को सुख-दु ख का अनुभव होता है । (शहद-लपेटी तलवार का दृष्टात)

उत्तर-प्रकृति वेदनीय कर्म की उत्तर-प्रकृतिया दो है

१ साता-वेदनीय
२ असाता-वेदनीय

बध-कारण साता-वेदनीय-कर्म-बध के कारण दस है .

१ प्राण (विकलेद्रिय) पर अनुकपा करना ।
२ भूत (वनस्पति) पर अनुकपा करना ।
३ जीव (पचेद्रिय) पर अनुकपा करना ।
४ सत्त्व (चार स्थावरो) पर अनुकपा करना ।

५. प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को दु.ख न देना ।
६. प्राण - भूत - जीव - सत्त्व को शोक न कराना ।
७ प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को नही झुराना ।
८ प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को नही रुलाना ।
९. प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को नही पीटना ।
१० प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को परिताप नही देना ।

असाता-वेदनीय-कर्म-बध के कारण बारह है :

१ प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को दु ख देना ।
२. बहुत प्राण-भूत-जीव-सत्त्वो को दु ख देना ।
३ प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को शोक कराना ।
४ बहुत प्राण-भूत-जीव-सत्त्वो को शोक कराना ।
५ प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को झुराना ।
६. बहुत प्राण-भूत-जीव-सत्त्वो को झुराना ।
७. प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को रुलाना ।
८ बहुत प्राण-भूत-जीव-सत्त्वो को रुलाना ।
९. प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को पीटना ।
१०. बहुत प्राण-भूत-जीव-सत्त्वो को पीटना ।
११ प्राण-भूत-जीव-सत्त्व को परिताप देना ।
१२ बहुत प्राण-भूत-जीव-सत्त्वो को परिताप देना ।

फल-भोग . साता-वेदनीय कर्म का फल आठ प्रकार से भोगा जाता है :

१. मनोज्ञ शब्द २ मनोज्ञ रूप ३ मनोज्ञ गध ४ मनोज्ञ रस ५ मनोज्ञ स्पर्श ६. मन-सुख ७ वचन-सुख (मधुर और प्रिय वाणी) ८ काय-सुख (नीरोग शरीर)।

असाता - वेदनीय कर्म का फल भी आठ प्रकार से भोगा जाता है :

१ अमनोज्ञ शब्द २. अमनोज्ञ रूप ३ अमनोज्ञ गध ४ अमनोज्ञ रस ५. अमनोज्ञ स्पर्श ६ मन-दु.ख ७ वचन-दु ख ८ काय-दु ख।

स्थिति . वेदनीय कर्म की जघन्य-स्थिति 'बारह मुहूर्त' उत्कृष्ट-स्थिति 'तीस कोटाकोटी सागरोपम' एव अबाधा-काल जघन्य 'अत-मुंहूर्त', उत्कृष्ट 'तीन हजार वर्ष'।

४ मोहनीय कर्म

लक्षण मोहनीय कर्म आत्मा को स्व-पर-विवेक एव स्वरूप-रमण मे बाधा पहुँचाता है। (शराब एव शराबी का दृष्टात)

उत्तर-प्रकृति मोहनीय कर्म की उत्तर-प्रकृतियाँ **अठाईस** है।

मूलत. मोहनीय कर्म के दो भेद है १ दर्शन मोहनीय २. चारित्र मोहनीय। दर्शन-मोहनीय कर्म की उत्तर-प्रकृतिया तीन है—

१ सम्यक्त्व मोहनीय
२ मिथ्यात्व मोहनीय
३ सम्यक्-मिथ्यात्व (मिश्र) मोहनीय

चारित्र-मोहनीय कर्म की उत्तर-प्रकृतिया पच्चीस है । मुख्यत चारित्र-मोहनीय के दो भेद है ' १ कषाय - चारित्र - मोहनीय २ नो-कषाय चारित्र-मोहनीय । कषाय-चारित्र - मोहनीय की उत्तर-प्रकृतिया सोलह हैं

१. अनतानुबधी क्रोध (पर्वत की दरार के समान)
२ अनतानुबधी मान (पत्थर के स्तभ के समान)
३ अनतानुबधी माया (बास की जड की वक्रता के समान)
४ अनतानुबधी लोभ (किरमिची रग के समान)
५ अप्रत्याख्यानी क्रोध (तालाब की दरार के समान)
६ अप्रत्याख्यानी मान (हड्डी के स्तम्भ के समान)
७ अप्रत्याख्यानी माया (मेढे के सीग के समान)
८ अप्रत्याख्यानी लोभ (नगर-कीच के समान)
९. प्रत्याख्यानी क्रोध (वाल-रेत को लकीर के समान)

१० प्रत्याख्यानी मान (बेंत के स्तम्भ के समान)

११. प्रत्याख्यानी माया (चलते बैल के मूत्र की लकीर के समान)

१२ प्रत्याख्यानी लोभ (दीपक के कज्जल के समान)

१३ सज्वलन-क्रोध (जल की लकीर के समान)

१४ सज्वलन-मान (तृण के स्तम्भ के समान)

१५ सज्वलन-माया (वास के छिलके के समान)

१६ सज्वलन-लोभ (हलदी के रग के समान)

नो-कषाय - चारित्र - मोहनीय की उत्तर-प्रकृतिया नव है —

१. हास्य २. रति ३. अरति ४ भय ५. शोक ६. जुगुप्सा ७ स्त्रीवेद ८ पुरुषवेद ९ नपु सक वेद ।

बध-कारण . मोहनीय कर्म-बध के कारण छह है —

१- तीव्र क्रोध

२ तीव्र मान

३ तीव्र माया

४ तीव्र लोभ

५. तीव्र दर्शनमोहनीय (मिथ्यात्व)

६ तीव्र चारित्रमोहनीय (हास्य, रति, अरति, आदि)

फल-भोग मोहनीय कर्म का फल (मूलत) पांच प्रकार से भोगा जाता है —
१ सम्यक्त्व मोहनीय
२ मिथ्यात्व मोहनीय
३ मिश्र मोहनीय
४ कपाय मोहनीय
५. नोकषाय मोहनीय

स्थिति मोहनीय कर्म की जघन्य-स्थिति 'अत-मुंहूर्त', उत्कृष्ट - स्थिति 'सित्तर कोटा-कोटी सागरोपम' एव अवाधा-काल जघन्य 'अतमुंहूर्त', उत्कृष्ट 'सात हजार वर्ष'।

५. आयुष्य कर्म

लक्षण : जिस कर्म के अस्तित्व से जीव चार गतियो मे रुका रहे (जीवित रहे) उसे आयुष्य-कर्म कहते हैं। (वदी-गृह का दृष्टात)

उत्तर-प्रकृति · आयुष्य-कर्म की उत्तर-प्रकृतिया चार हैः
१ नरक-आयुष्य
२ तिर्यंच-आयुष्य
३ मनुष्य-आयुष्य
४ देव-आयुष्य

वध-करण आयुष्य-कर्म-वध के कारण सोलह है
नरक-आयुष्य-कर्म-वध के कारण चार है
१. महा-आरभ

२. महा-परिग्रह
३ पचेंद्रिय-वध
४ मद्य-मास-सेवन

तिर्यंच-आयुष्य - कर्म - बध के कारण चार है —

१ माया (कपट करना)
२ गूढ माया (महाकपट करना)
३ असत्य-भाषण करना
४ झूठा माप-तोल करना

मनुष्य-आयुष्य-कर्म-बध के कारण चार हैं :

१ भद्र (सरल) प्रकृति (स्वभाव)
२ विनीत-स्वभाव
३ दयाशीलता
४ अमत्सरता (ईर्ष्यालु न होना)

देव-आयुष्य-कर्म-बध के कारण चार हैं.

१. सराग सयम
२ सयमासयम
३ अकाम निर्जरा
४. बाल-तप

फल-भोग . आयुष्य-कर्म का फल चार प्रकार से भोगा जाता है

१ नरक-आयुष्य
२ तिर्यंच आयुष्य
३ मनुष्य-आयुष्य
४. देव-आयुष्य

स्थिति : नरक तथा देव-आयुष्य-कर्म की जघन्य-स्थिति 'दस हजार वर्ष', उत्कृष्ट-स्थिति 'तेतीस सागरोपम' एव तिर्यंच तथा मनुष्य-आयुष्य-कर्म की जघन्य-स्थिति 'अतर्मुहूर्त', उत्कृष्ट-स्थिति 'तीन पल्योपम'।

६. **नाम-कर्म**

लक्षण : जिस कर्म के उदय से जीव नारक, तिर्यंच आदि विभिन्न नामो से पुकारा जाता है, उसे 'नाम कर्म' कहते है। (चित्रकार का दृष्टात)

उत्तर-प्रकृति : नाम-कर्म की उत्तर-प्रकृतिया **तिरानवे** है **पिण्ड-प्रकृतियाँ** चौदह है—

१ गति-नाम (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव)
२ जाति-नाम (एकेंद्रिय, द्वीद्रिय, त्रीद्रिय, चतुरिंद्रिय, पचेंद्रिय)
३. शरीर - नाम (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस्, कार्मण)
४. अगोपाग-नाम (औदारिक, वैक्रिय, आहारक)
५. वधन - नाम (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस्, कार्मण)
६. सघात - नाम (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस्, कार्मण)
७ सहनन - नाम (वज्र-ऋपभ-नाराच, ऋपभनाराच, नाराच, अर्ध-नाराच, कीलिका, सेवार्त)

८. सस्थान-नाम (समचतुरस्र, न्यग्रोध-परिमडल, सादि, कुब्ज, वामन, हुडक)
९. वर्ण-नाम (कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत)
१० गध-नाम (सुरभि, दुरभि)
११ रस-नाम (तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल, मधुर)
१२ स्पर्श-नाम (कर्कश मृदु, गुरु, लघु, उष्ण, शीत, रुक्ष, स्निग्ध)
१३ आनुपूर्वी नाम (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव)
१४ विहायोगति-नाम (प्रशस्त, अप्रशस्त)

[इस प्रकार इन चौदह पिण्ड-प्रकृतियो के कुल (क्रमश ४ + ५ + ५ + ३ + ५ + ५ + ६ + ६ + ५ + २ + ५ + ८ + ४ + २ = ६५) पैंसठ भेद हुए ।]

प्रत्येक प्रकृतियाँ आठ है:—

१ उपघात-नाम २ पराघात-नाम ३ उच्छ्-वास-नाम ४ आतप-नाम ५ उद्योत-नाम ६. अगुरुलघु-नाम ७ तीर्थंकर-नाम ८ निर्माण-नाम । (६५ + ८ = ७३) त्रस-दशक प्रकृतियाँ दस है:—

१ त्रस-नाम २ बादर-नाम ३ पर्याप्त-नाम ४ प्रत्येक नाम ५ स्थिर-नाम ६ शुभ-नाम ७. सुभग-नाम ८ सुस्वर-नाम ९ आदेय-नाम १० यशः कीर्ति-नाम ।
(७३ + १० = ८३)

स्थावर-दशक प्रकृतियाँ दस है:—

१. स्थावर-नाम २ सूक्ष्म-नाम ३ अपर्याप्त नाम ४ साधारण-नाम ५ अस्थिर-नाम ६ अशुभ-नाम ७. दुर्भग-नाम ८ दुस्वर-नाम ९. अनादेय-नाम १०. अयश कीर्ति नाम। (८३ + १० = ९३)

वध-करण नाम-कर्म-वध के कारण आठ है, जिनमे शुभ-नाम-कर्म-वंध के कारण चार है —

१ काया की सरलता
२ भाव की सरलता
३. भाषा की सरलता
४ कथनी-करणी मे एकरूपता

अशुभ-नाम-कर्म-वंध के कारण चार है:—

१. काया की वक्रता (कुटिलता)
२. भाव की वक्रता
३. भाषा की वक्रता
४ कथनी-करणी मे अनेकरूपता (एक-रूपता का अभाव) (४ + ४ = ८)

फल-भोग · नाम-कर्म का फल अठाईस प्रकार मे भोगा जाता है, जिनमे शुभ-नाम-कर्म का फल चौदह प्रकार मे भोगा जाता है :

१ इष्ट शब्द २. इष्ट रूप ३. इष्ट गध ४. इष्ट रस ५. इष्ट स्पर्श ६. इष्ट गति ७. इष्ट स्थिति ८ इष्ट लावण्य ९ इष्ट यश कीर्ति १०. इष्ट उत्थान-कर्म-वल-वीर्य-

पुरुषकार-पराक्रम ११. इष्ट स्वर १२. कात स्वर १३. प्रिय स्वर १४ मनोज्ञ स्वर।

अशुभ-नाम-कर्म का फल चौदह प्रकार से भोगा जाता है

१ अनिष्ट शब्द २ अनिष्ट रूप ३ अनिष्ट गध ४ अनिष्ट रस ५. अनिष्ट स्पर्श ६. अनिष्ट गति ७. अनिष्ट स्थिति ८ अनिष्ट लावण्य ९ अनिष्ट यश कीर्ति १० अनिष्ट उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुष-कार-पराक्रम ११ अनिष्ट स्वर १२. अकात स्वर १३. अप्रिय स्वर १४ अमनोज्ञ स्वर। (१४+१४=२८)

स्थिति — नाम-कर्म की जघन्य-स्थिति 'आठ मुहूर्त' उत्कृष्ट-स्थिति 'बीस कोटाकोटी सागरोपम' एव अबाधा-काल जघन्य 'अतर्मुहूर्त', उत्कृष्ट 'दो हजार वर्ष'।

७ गोत्र-कर्म

लक्षण — जिस कर्म के उदय से आत्मा उच्च-नीच कुल मे उत्पन्न होवे एव ऊच-नीचपन का अनुभव करे, उसे गोत्र कर्म कहते है। (कुभकार का दृष्टात)

उत्तर-प्रकृति — गोत्र-कर्म की उत्तर-प्रकृतिया दो है

१. उच्च गोत्र २ नीच गोत्र।

बध-कारण — गोत्र-कर्म-बध के कारण सोलह हैं, जिनमे उच्च-गोत्र-कर्म-बंध के कारण आठ हैं :

१ जाति-ग्रमद २ कुल - ग्रमद ३ बल-ग्रमद ४ रूप-ग्रमद ५ तप-ग्रमद ६ श्रुत-ग्रमद ७ लाभ-ग्रमद ८. ऐश्वर्य-ग्रमद ।

नीच-गोत्र-कर्म-बध के कारण ग्राठ हैं —

१. जाति मद २ कुल मद ३. बल मद ४ रूप मद ५ तप मद ६ श्रुत मद ७.लाभ मद ८ ऐश्वर्य मद (८+८=१६)

फल-भोग गोत्र कर्म का फल सोलह प्रकार से भोगा जाता है, जिसमे उच्च-गोत्र-कर्म का फल ग्राठ प्रकार से भोगा जाता है —

१ जाति-विशिष्टता (मातृपक्षीय सम्मान)
२ कुल-विशिष्टता (पितृपक्षीय सम्मान)
३ वल-विशिष्टता (वलपक्षीय सम्मान)
४ रूप-विशिष्टता (रूपपक्षीय सम्मान)
५ तप-विशिष्टता (तपोजन्य सम्मान)
६ श्रुत-विशिष्टता (श्रुतज्ञान-जन्य सम्मान)
७ लाभ-विशिष्टता (लाभ या प्राप्ति सम्वन्धी सम्मान)
८ ऐश्वर्य-विशिष्टता (ऐश्वर्य-पक्षीय सम्मान)

नीच-गोत्र-कर्म का फल ग्राठ प्रकार से भोगा जाता है —

१ जाति-विहीनता
२ कुल-विहीनता
३ वल-विहीनता
४ रूप-विहीनता

५ तप-विहीनता
६ श्रुत-विहीनता
७ लाभ-विहीनता
८ ऐश्वर्य-विहीनता

स्थिति — गोत्र-कर्म की जघन्य-स्थिति 'आठमुहूर्त', उत्कृष्ट-स्थिति 'बीस कोटाकोटी सागरोपम' एव अबाधाकाल जघन्य 'अतमुंहूर्त', उत्कृष्ट 'दो हजार वर्ष'।

८. अंतराय-कर्म

लक्षण — जिस कर्म के उदय से दान-लाभ आदि मे बाधा (रुकावट) पडती है, वह अतराय कर्म है (खजाची-कोषाध्यक्ष का दृष्टात)

उत्तर-प्रकृति — अतराय-कर्म की उत्तर-प्रकृतियाँ पाच है —

१. दानान्तराय
२ लाभान्तराय
३. भोगान्तराय
४ उपभोगान्तराय
५ वीर्यान्तराय

बध-कारण — अतराय-कर्म-बध के कारण पाच है.—

१ दान मे अतराय देना (विघ्न डालना)
२ लाभ मे अतराय देना।
३ भोग मे अतराय देना।
४. उपभोग मे अतराय देना।
५ वीर्य मे अतराय देना।

फल-भोग : अंतराय कर्म का फल पांच प्रकार से भोगा जाता है:—
१. दान में अंतराय की प्राप्ति।
२. लाभ में अंतराय की प्राप्ति।
३. भोग में अंतराय की प्राप्ति।
४. उपभोग में अंतराय की प्राप्ति।
५. वीर्य में अंतराय की प्राप्ति।

स्थिति : अंतराय-कर्म की जघन्य-स्थिति 'अंतर्मुहूर्त', उत्कृष्ट-स्थिति 'तीस कोटाकोटी सागरोपम' एवं अबाधा-काल जघन्य 'अंतर्मुहूर्त', उत्कृष्ट 'तीन हजार वर्ष'।



सम्यग्दर्शन

(सम्यक्त्व के सड़सठ बोल)

शम-संवेग-निर्वेद-अनुकंपा और आस्था रूप आत्म-भावों पर अथवा जीव-अजीव आदि नव-तत्त्वों तथा सुदेव-सुगुरु-सुधर्म पर यथार्थ श्रद्धा रखना ही सम्यग्दर्शन है। इसी वास्तविक दृष्टिकोण को 'सम्यक्त्व' (समकित) के नाम से भी संबोधित किया जाता है। सम्यग्दर्शन की पात्रता, प्राप्तिक्रम, स्वरूप एवं उसके भेद संक्षेप में इस प्रकार है :

पात्रता—कम से कम निम्न दस गुणों से अलंकृत व्यक्ति ही व्यवहार-दृष्टि से सम्यग्दर्शनी (सम्यक्त्वी) कहला सकता है; यही सम्यग्दर्शन की पात्रता है :

१. विनय-सपन्न हो २. सरल हो ३. जितेंद्रिय हो ४ मध्यस्थ हो ५. प्रमोदभाव वाला (देव-गुरु-धर्म-स्वधर्मी एव सद्‌गुणियो के प्रति आदर-भाव रखने वाला) हो ६. प्रामाणिक हो ७. करुणाभाव वाला हो ८ सात कुव्यसनो का त्यागी हो ९. सत्सग का अभिलाषी हो १०. सात्त्विक प्रवृत्ति वाला हो।

प्राप्ति क्रम—लब्धिसार ग्रथ मे सम्यक्त्व-प्राप्ति का क्रम इस प्रकार बताया गया है—(१) क्षयोपशम लब्धि (२) विशुद्धि लब्धि (३) देशना लब्धि (४) प्रायोग्य लब्धि (५) करण लब्धि। इन पाचो लब्धियो के प्रकट होने के बाद ही भव्य जीव सम्यक्त्व की भूमिका मे प्रवेश कर पाता है।

अनतकाल से परिभ्रमण करते हुए जीव को कभी ऐसा योग मिलता है कि वह ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की अप्रशस्त (बुरी) प्रकृतियो के अनुभाग (रस) को प्रतिसमय अनतगुणा क्रम से घटाता हुआ क्रमश. उदय को प्राप्त होता है; बस **'क्षयोपशम लब्धि'** का यही परिणाम है। क्षयोपशम-लब्धि के प्रभाव से अशुभकर्म का रसोदय घटता है। इसके बाद जीव का **'विशुद्धि-लब्धि'** मे प्रवेश होता है। इस लब्धि के परिणामस्वरूप विचारो मे निर्मलता आती है एव धर्मा-नुराग रूप शुभ परिणामो की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार शुभ परिणामो (भावो) के अनुरूप सद्‌गुरुओ की सगति करना, देशना सुनना एव उनसे छह द्रव्य, नवतत्त्व आदि का ज्ञान प्राप्त करना—यह **'देशना-लब्धि'** का परिणाम है।

गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान के चिंतन-मनन के आधार पर जीव, जो प्रतिसमय विशुद्धता की वृद्धि करता है एव अपने कठोर

कर्म-बधनो को शिथिल करता है, वह **'प्रायोग्य-लब्धि'** का परिणाम है।

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना एव प्रायोग्य—ये चार लब्धियाँ अभव्य व भव्य—दोनो जीवो के प्रकट हो सकती हैं; परन्तु पाचवी **'करण-लब्धि'** का प्रकटीकरण केवल भव्य-जीव ही कर सकता है। 'करण-लब्धि' के तीन भेद किये गये है—(१) अध.प्रवृत्तिकरण (२) अपूर्वकरण एव (३) अनिवृत्ति करण। क्रमशः इन तीनो के प्रकट होने के बाद अनिवृत्ति-करण के अतिम समय मे दर्शनमोहनीय एव अनतानुबधी-चतुष्क (सातो प्रकृतियो) का उपशम करता हुआ जीव सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व) की भूमिका से प्रवेश पाता है।

स्वरूप

(१) सुदेव-सुगुरु-सुधर्म का यथार्थ-स्वरूप जानकर उनमे सच्ची श्रद्धा रखना तथा कुदेव-कुगुरु-कुधर्म पर श्रद्धा नही रखना।

(२) जीवादि नव तत्त्वो के वास्तविक (हेय-ज्ञेय व उपादेय) रूपो को समझकर उन पर वैसी ही प्रतीति करना।

(३) 'स्व' अर्थात् आत्मा (चेतन) एव 'पर' अर्थात् अनात्मा (जड) आदि का भेद-विज्ञान करना। स्व-पर का यथार्थ स्वरूप समझकर उन पर विश्वास करना एव उनका ग्रन्थिभेद करना।

(४) आत्मा का आत्मभाव अनुभव करना एव उसी को अपना मानना। इसके अलावा सब पदार्थों को पराया समझते हुए उन पर से अपना उपयोग हटाना तथा उनके प्रति उदासीन रहना।

भेद—सम्यक्त्व के सात भेद किये गये है—(१) मिथ्यात्व सम्यक्त्व (२) सास्वादन सम्यक्त्व (३) मिश्र सम्यक्त्व (४) उपशम सम्यक्त्व (५) क्षयोपशम सम्यक्त्व (६) क्षायिक सम्यक्त्व एव (७) वेदक सम्यक्त्व । इसके अतिरिक्त सम्यक्त्व के प्रकारातर से पाच भेद और भी किये गये है—(१) कारक सम्यक्त्व (२) रोचक सम्यक्त्व (३) दीपक सम्यक्त्व (४) निश्चय सम्यक्त्व एव (५) व्यवहार सम्यक्त्व[1] ।

व्यवहार-सम्यक्त्व के सडसठ बोल बताये गये हैं, वे इस प्रकार है .

व्यवहार-सम्यक्त्व के सडसठ बोल

बोल पहला श्रद्धान चार

१ परमार्थ का परिचय करना (जीवादि नव तत्वो का ज्ञान करना) ।
२ परमार्थ-ज्ञाता (आचार्य - उपाध्याय - साधु आदि) की सेवा करना ।
३ जो सम्यक्त्व से पतित हो गया हो, उसकी सगति न करना ।
४. कुतीर्थी (मिथ्यादृष्टि) की सगति न करना ।

श्रद्धान : तत्त्व-रुचि को जागृत करने तथा सुरक्षित रखने के उपायो को श्रद्धान कहते है ।

बोल दूसरा लिंग तीन

१ वीतराग की वाणी मे अनुरक्त रहना[2] ।
२ वीतराग की वाणी आदर सहित सुनना ।[3]

१. विस्तार के लिए देखें "जैन तत्त्व प्रकाश" ।
२. जैसे तरुण-पुरुष राग-रग मे अनुराग रखता है ।
३. जैसे क्षुधातुर मनुष्य मिष्ठान्न-भोजन रुचि-सहित करता है ।

३. वीतराग की वाणी सुनकर हर्षित होना ।[1]

लिग · सम्यक्त्वी की वाह्य रुचि (चिन्ह) को **लिग** कहते हैं ।

वोल तीसरा विनय दस

१ अरिहत भगवान् का विनय करना ।
२. सिद्ध भगवान् का विनय करना ।
३. आचार्य महाराज का विनय करना ।
४ उपाध्याय महाराज का विनय करना ।
५ स्थविर-मुनिराज का विनय करना ।
६. कुल अर्थात् एक आचार्य के समुदाय का विनय करना ।
७. गण अर्थात् अनेक कुलो वाले समुदाय का विनय करना ।
८. चतुर्विध सघ का विनय करना ।
९. स्वधर्मी का विनय करना ।
१०. सभोगी साधु का विनय करना ।

विनय : आराध्य के प्रति सर्वसमर्पित आत्मिक भावना एव व्यवहार को **विनय** कहते है ।

वोल चौथा : शुद्धि तीन

१. मन-शुद्धि (मन से वीतरागी देव का ही ध्यान करना, अन्य सरागी देव का नही ।)
२. वचन-शुद्धि (वचन से वीतरागी देव का ही गुणगान करना, अन्य सरागी देव का नही ।)
३ काय-शुद्धि (काय से वीतरागी देव को ही वदन-नमस्कार करना, अन्य सरागी देव को नही ।)

शुद्धि . सम्यक्त्व को दूपित होने से वचाने वाली प्रवृत्ति को शुद्धि कहते हैं ।

---

१. जैम जिज्ञासु व्यक्ति पढने का अवसर मिलते ही हर्षित होता है ।

बोल पांचवां : दूषण पांच

१ शका (जिन-वचन मे सदेह करना ।)

२ काक्षा (जिसका वीतराग-वाणी मे विश्वास नही है, ऐसे अन्यमत को, उसकी (आडबर आदि) बाह्य क्रियाओ से प्रभावित होकर पाने की लालसा करना ।)

३. विचिकित्सा (धर्म के फल मे सदेह करना ।)

४ अन्य-दृष्टि-प्रशसा (अन्य मत वालो की प्रशसा करना ।)

५. अन्य-दृष्टि-सस्तव (अन्य मत वालो से परिचय करना ।)

दूषण : सम्यक्त्व को मलिन बनाने वाली प्रवृत्तियो को दूषण कहते हैं ।

बोल छठा : लक्षण पांच

१ शम (उत्तेजित होते हुए क्रोधादि कषाय-भावो को शात करना ।)

२. सवेग (मोक्ष की अभिलाषा करना ।)

३ निर्वेद (ससार से उदासीनता रखना ।)

४. अनुकपा (दु:खियो के दु:ख मिटाने की भावना रखना ।)

५. आस्था (जिन-वचनो पर दृढ विश्वास रखना ।)

लक्षण : सम्यक्त्वी के सहभावी गुण,जिनके अभाव मे सम्यक्त्व का भी अभाव होता है, **लक्षण** कहलाते हैं ।

बोल सातवां : भूषण पांच

१. जिन शासन मे निपुण होना ।

२. जिनशासन का प्रचार (प्रभावना) करना ।

३ चार तीर्थ (साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका) की सेवा करना ।

४. शिथिल पुरुषो को धर्म मे स्थिर करना ।

५. जिन-प्रवचन एव गुणी पुरुषो का आदर करना ।

भूषण : सम्यक्त्वी की वे प्रवृत्तिया, जिनके द्वारा सम्यक्त्व-गुण सुशोभित होता है, **भूषण** हैं।

बोल आठवां : प्रभावना आठ

१. **प्रवचन**—जिस काल मे जितने आगम एव आगमानुकूल-ग्रन्थ उपलब्ध हो, उनका अध्ययन स्वय करना एव दूसरो से करवाना।

२. **धर्मकथा**—आक्षेपणी आदि चार प्रकार की धर्म-कथाओ के मर्मस्पर्शी विवेचन से जनता को धर्म के सम्मुख करना।

३. **वाद**—आत्मवाद आदि शुद्ध वादो का भलीभाति मडन करना।

४. **निमित्त**—धर्मतीर्थ (चतुर्विध सघ) के हानि-लाभ को जानने एव उसे हानि से बचाने के लिए अष्टाग-निमित्त का ज्ञान करना।

५. **तपस्या**—धर्म-प्रसार हेतु उग्र-तपस्या करना।

६. **विद्या**—धर्मतीर्थ की सुरक्षा के लिये चमत्कारिक विद्याओ को जानना एव उनका प्रयोग करना।

७. **सिद्धि**—धर्मतीर्थ की सुरक्षा के लिए मत्रो को सिद्ध करना एव उनका प्रयोग करना।

८. **कविता**—धर्म-सिद्धातो को बोधगम्य बनाने हेतु समसा-मयिक भाषा मे साहित्य-निर्माण करना।

प्रभावना . धर्म (जिन-भाषित) के प्रचार-प्रसार हेतु की जाने वाली प्रवृत्तियो को **प्रभावना** कहते है।

बोल नववां यतना छह

१. आलाप—मिथ्यात्वी से आगे होकर नही बोलना।

२. सलाप—मिथ्यात्वी के साथ वार्तालाप का व्यवहार नही रखना।

३ दान— मिथ्यात्वी को आगे होकर कोई चीज नही देना।

४ प्रदान— मिथ्यात्वी के साथ लेन-देन का व्यवहार नही रखना।

५ वदना—मिथ्यात्वी (देव-गुरु) की स्तुति नही करना।

६. नमस्कार—मिथ्यात्वी (देव-गुरु) के सामने पचाग नही नमाना।

यतना सम्यक्त्व को सुरक्षित रखने के लिए जो चेष्टा या सावधानी रखी जाती है, उसे **यतना** कहते है।

बोल दसवां : आगार छह

१ राजाभियोग (राजा के आग्रह का आगार।)
२. गणाभियोग (जाति या जन-समूह के दबाव का आगार।)
३ बलाभियोग (शक्तिशाली की वशीभूतता का आगार।)
४ देवाभियोग (देवता के दबाव का आगार।)
५ वृत्तिकातार (आजीविका की विषम-स्थिति का आगार।)
६ गुरु-निग्रह (माता-पिता आदि गुरुजनो के दबाव का आगार।)

आगार प्रतिज्ञा (सम्यक्त्व की) ग्रहण करते समय रखी हुई छूट को **आगार** कहते है।

बोल ग्यारहवां भावना छह

१ मूल (सम्यक्त्व धर्म-रूपी वृक्ष का 'मूल' है।)
२. द्वार (सम्यक्त्व धर्म-रूपी नगर का 'द्वार' है।)
३. प्रतिष्ठान (सम्यक्त्व धर्म-रूपी माल की दूकान है।)

४. आधार (सम्यक्त्व धर्म-रूपी महल का 'आधार' (नीव) है।)
५. भाजन (सम्यक्त्व धर्म-रूपी वस्तु को धारण करने का पात्र है।)
६. निधि (सम्यक्त्व धर्म-रूपी आभूषणो का 'खजाना' है।)

भावना : सम्यक्त्व-पोषक विचारो को **भावना** कहते है।

बोल बारहवां : स्थान छह

१. जीव शाश्वत है।
२. जीव चैतन्य-लक्षण युक्त है।
३. जीव कर्मों का कर्त्ता है।
४. जीव कर्मों का भोक्ता है।
५. जीव मुक्त हो सकता है।
६ सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप मुक्त होने के उपाय है।

स्थान : सम्यक्त्वी के वे विचार, जिनके आधार से सम्यक्त्व ठहरा रहता है, **स्थान** कहलाते हैं।

रूपी-अरूपी

विश्व के समस्त पदार्थ दो भागो मे विभक्त हैं— १. रूपी एव २ अरूपी।

१. रूपी पदार्थ रूपी पदार्थ वे हैं, जिनमे वर्ण, गंध, रस एव स्पर्श हो। ये दो प्रकार के होते हैं—(i) चतुःस्पर्शी (चौफरसी) रूपी (ii) अष्टस्पर्शी (अठफरसी) रूपी।

(i) **चतु.स्पर्शी रूपी :** जिन पदार्थों मे पाच वर्ण, दो गध, पाच रस एव चार स्पर्श होते हैं, वे 'चतु स्पर्शी रूपी' कहलाते हैं। इनके तीस भेद होते हैं—१८ पाप, ८ कर्म,

२ योग (मनो योग, वचन योग), १ शरीर (कार्मण), १ सूक्ष्म पुद्गलास्तिकायिक स्कध। १८+८+२+१+१=३०।

(ii) **अष्टस्पर्शी रूपी :** जिन पदार्थो मे पाच वर्ण, दो गध, पाच रस, एव आठ स्पर्श होते है, वे 'अष्टस्पर्शी रूपी कहलाते हैं। इनके १५ भेद हैं—६ द्रव्य लेश्या, ४ शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस), १ घनोदधि, १ घनवात, १ तनुवात १ योग (काय योग), १ बादर-पुद्गलास्तिकायिक स्कध। ६+४+१+१+१+१+१=१५।

२ **अरूपी पदार्थ :** अरूपी पदार्थ वे है, जिनमे वर्ण, गध, रस एव स्पर्श—कुछ भी नही होते, केवल 'अगुरुलघु' नामक पर्याय होती है। इनके ६१ भेद है—१८ पाप-विरमण, १२ उपयोग, ६ भावलेश्या, ५ द्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश, काल और जीव), ५ शक्ति (उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम), ४ बुद्धि (औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी), ४ मतिज्ञान (अवग्रह, ईहा, अपाय, धारणा), ४ सज्ञा (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह), ३ दृष्टि (सम्यक्, मिथ्या, मिश्र)। १८+१२+६+५+५+४+४+४+३=६१।

—आधार : भगवती सूत्र, श. १२ उ ५

तीर्थंकर-नाम-कर्म उपार्जन के बीस बोल

"अरिहत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुय-तवस्सीसु।
वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्ख-नाणोवओगे य॥

दसण-विणए आवस्सए य, सीलव्वए निरइयारो ।
खणलव-तव च्चियाए, वेयावच्चे समाही य ।।

अपुव्वनाण-गहणे, सुयभत्ती पवयणे-पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्त लहइ जीवो ।"

—णायाधम्मकहाओ १/८

१. अरिहंत-वत्सलता—अरिहत भगवान् के गुणो का (मानसिक, वाचिक एवं कायिक तल्लीनता-पूर्वक) उत्कीर्तन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है ।

२. सिद्ध-वत्सलता—सिद्ध भगवान् के गुणो का (मानसिक, वाचिक एव कायिक तल्लीनता-पूर्वक) उत्कीर्तन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है ।

३ प्रवचन-वत्सलता—प्रवचन (जिनवाणी के) ज्ञान की आराधना करने से एव प्रवचन-ज्ञाता के गुणो का उत्कीर्तन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है ।

४. गुरु-वत्सलता—धर्म-गुरु के गुणो का उत्कीर्तन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है ।

५. स्थविर-वत्सलता—स्थविर-मुनिराजो के गुणो का उत्कीर्तन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है ।

६. बहुश्रुत-वत्सलता—बहुश्रुत-मुनिराजो के गुणो का उत्कीर्तन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है ।

७. तपस्वी-वत्सलता—तपस्वी मुनिराजो के गुणो का उत्कीर्तन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है ।

८. **अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग**—निरतर ज्ञान मे उपयोग रखने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

९. **दर्शन**—निरतिचार शुद्ध सम्यक्त्व धारण (एवं पालन) करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१०. **विनय**—ज्ञानादि का यथायोग्य विनय करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

११. **आवश्यक**—सामायिक आदि छहो आवश्यक-कर्त्तव्यो का भाव-पूर्वक शुद्ध पालन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१२. **निरतिचार-शीलव्रत**—निरतिचार शील एव व्रत (मूलगुण व उत्तरगुणो) का पालन करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१३. **क्षणलव**—प्रतिक्षण निरतर सवेग-भावना रखने से एव शुभ ध्यान मे निरत रहने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१४. **तप**—यथाशक्ति बाह्य एव आभ्यतर तपस्या करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१५. **त्याग**—सुपात्र (श्रमणादिको) को प्रासुक अशनादि का दान देने से, क्रोधादि कषायो का उपशमन करने से एव ज्ञानादि का वितरण करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१६. **वैयावृत्य** —आचार्य-उपाध्याय-स्थविर-तपस्वी-ग्लान-नवदीक्षित्त, स्वधर्मी, कुल, गण एव सघ—इन सबकी भक्तिभाव-पूर्वक वैयावृत्य (सेवा) करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१७. **समाधि**—चतुर्विध सघ का एव विशेष रूप से गुरु महाराज का मन स्वस्थ एव प्रसन्न रखने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१८. **अपूर्व ज्ञान-ग्रहण**—नित्य नवीन ज्ञान का निरतर अभ्यास करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

१९. **श्रुत-भक्ति**—श्रुत (जिनवाणी) की भक्ति (वहुमान) करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।

२०. **प्रवचन-प्रभावना**—देशना (उपदेश आदि) द्वारा प्रवचन (जिनवाणी) की प्रभावना करने से जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन करता है।



दश आश्चर्य

(१) **अष्टशत सिद्धा**—वध्यम अवगाहना (शरीर की ऊचाई) वाले एक समय मे एक सौ आठ मोक्ष मे जाते हैं किंतु उत्कृष्ट अवगाहना वाले नही। इस चौवीसी के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव (पाच सौ धनुष की) उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय मे अपने निनानवे पुत्रो और भरत के आठ पुत्र सहित एक सौ आठ मोक्ष मे गये—यह आश्चर्य हुआ।

(२) **हरिवंश-कुलोत्पत्ति**—पूर्वभव के वैर के कारण देव ने हरिवास क्षेत्र के हरि नामक युगल को भरत क्षेत्र मे लाकर चम्पापुरी का राजा-राणी वनाया। इनके पुत्र-पौत्रादि से चली कुल-परपरा 'हरिवश' रूप मे प्रसिद्ध हुई। मासाहार एवं पाप-

कृत्यो के कारण हरि-युगल मर कर नरक मे गए। यो नियमत युगल के वश-परपरा चलती नही और वे नरक मे भी जाते नही। हरि-युगल का इस प्रकार वश चलना एव नरक मे जाना भी आश्चर्य है।

(३) **असंयत-पूजा**—सदा-सर्वदा सयत की पूजा होती है और वे ही पूजा के योग्य होते है परतु इस अवसर्पिणी काल मे नववे तीर्थंकर सुविधि जिन के बाद (साधु-साध्वी-वर्ग का बिल्कुल अभाव हो जाने के कारण) कुछ काल तक असयतो की पूजा-प्रतिष्ठा हुई—यह भी आश्चर्य है।

(४) **स्त्री-तीर्थंकर**—पुरुष ही तीर्थंकर-पद को प्राप्त करते हैं, परतु इस अवसर्पिणी काल मे उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लीजिन स्त्री-तीर्थंकर हुए—यह भी आश्चर्य है।

(५) **कृष्ण का अपरकंका-गमन**—एक वासुदेव का दूसरे वासुदेव से मिलान होता नही, परतु बाइसवें अरिष्टनेमि जिन के समय मे धातकीखड-द्वीप की अपरकका-नगरी मे द्रौपदी को लाने के लिए वासुदेव श्री कृष्ण को जाना पडा, उस समय (वापिस लौटते वक्त)वहा के कपिल नामक वासुदेव से कृष्ण वासुदेव का सिर्फ शख-ध्वनि से मिलान हुआ—यह भी आश्चर्य है।

(६) **गर्भ-हरण**—गर्भ का हरण या परिवर्तन सामान्यत. होता नही, परन्तु चौबीसवे तीर्थंकर भगवान महावीर के जीव का देवानदा ब्राह्मणी की कुक्षी से त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षी मे देवता द्वारा गर्भ-परिवर्तन किया गया—यह भी आश्चर्य है।

(७) **चमरोत्पात**—नियमत चमरेन्द्र (नीचे लोक का

इद्र) कभी ऊचे लोक मे जाता नही, परतु ध्यानस्थ खडे भगवान महावीर की शरण लेकर एक वार चमरेन्द्र, शक्रेन्द्र (ऊचे लोक के इद्र) से लडने हेतु ऊपर गया—यह भी आश्चर्य है ।

(८) **अभव्या परिषद्**—तीर्थंकर भगवान को केवल ज्ञान होने पर वे जो प्रथम धर्मोपदेश देते है, उस परिषद् मे कोई न कोई भव्य (चारित्र धर्म के योग्य) जीव दीक्षा ग्रहण अवश्य करता है, परतु चौवीसवे तीर्थंकर भगवान महावीर का प्रथम उपदेश खाली गया, किसी ने दीक्षा ग्रहण नही की—यह भी आश्चर्य है ।

(९) **चंद्र-सूर्य अवतरण**—अपने निजी विमान मे वैठकर देव कभी मर्त्यलोक मे नही आते, परतु एक वार भगवान महावीर के समवसरण मे चद्र-सूर्य एक साथ अपने-अपने शाश्वत (निजी) विमान मे वैठ कर वदन हेतु आये—यह भी आश्चर्य है ।

(१०) **उपसर्ग**—केवल ज्ञान होने के वाद तीर्थंकर भगवान को देव-मनुष्य आदि कृत किसी तरह का उपसर्ग होता नही, परतु चौवीसवे तीर्थंकर भगवान महावीर को केवल ज्ञान-प्राप्ति के वाद भी गोशालक-प्रदत्त तेजोलेश्या का उपसर्ग हुआ यह भी आश्चर्य है ।

—ठाणांग सूत्र



इक्कीस प्रकार का धोवन

अप्कायिक जीवो की रक्षा हेतु धोवन या गर्म पानी ही पीना चाहिए। आचाराग सूत्र मे धोवन इक्कीस प्रकार का बताया गया है। वह इस प्रकार है:

(१) **उस्सेइम**—आटा मलने के बरतन (कठोती) आदि को धोया हुआ पानी।

(२) **ससेइम**—उबाली हुई भाजी और भाजी के बरतन (हाडी) आदि को धोया हुआ पानी।

(३) **चाउलोदग**—चावलो को धोया हुआ पानी।

(४) **तिलोदग**—तिलो को धोकर या अन्य किसी प्रकार से अचित्त किया हुआ पानी।

(५) **तुसोदग**—तुषो का पानी।

(६) **जवोदग**—जौ का पानी।

(७) **आयाम**—चावल आदि का पानी।

(८) **सौवीर**—आछ अर्थात् छाछ पर से उतारा हुआ पानी।

(९) **सुद्धवियड**—गर्म किया हुआ पानी।

(१०) **अम्बपाणग**—आम का पानी, जिसमे आम धोये हो।

(११) **अम्बाडगपाणग**—अबाडक (आम्रातक) एक प्रकार का वृक्ष, जिसके फलो को धोया हुआ पानी।

(१२) **कविट्ठपाणग**—कविठ को धोया हुआ पानी।

(१३) **मार्उलिगपाणग**—विजौरे के फलो को धोया हुआ पानी ।

(१४) **मुद्दियापाणग**—दाखो को धोया हुआ पानी ।

(१५) **दालिमपाणग**—अनारो को धोया हुआ पानी ।

(१६) **खज्जूरपाणग**—खजूरो को धोया हुआ पानी ।

(१७) **नालियेरपाणग**—नारियलो को धोया हुआ पानी ।

(१८) **करीरपाणग**—केरो को धोया हुआ पानी ।

(१९) **कोलपाणग**—बेरो को धोया हुआ पानी ।

(२०) **अमलपाणग**—आवलो को धोया हुआ पानी ।

(२१) **चिचापाणग**—इमली का पानी ।

उपर्युक्त प्रकारो के अतिरिक्त भी ऐसी ही वस्तुओ के सयोग से वर्ण-गध-रस-स्पर्श के बदलते ही सचित्त पानी अचित्त (धोवन) हो सकता है ।

—जैन सिद्धात बोल सग्रह, भाग—६

ब्रह्मचर्य की नव वाड़

'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ है—ब्रह्म अर्थात् आत्मा और चर्य अर्थात् चलना । आत्मा मे चलना अर्थात् आत्मा मे रमना । तात्पर्य यह हुआ कि आत्म-रमणता ही सही अर्थों मे ब्रह्मचर्य है । लौकिकदृष्टि से ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग सिर्फ मैथुन-त्याग के रूप मे ही रूढ हो गया है । साधु-मुनिराजो के पाच महाव्रतो

एव श्रावक के बारह व्रतो मे 'ब्रह्मचर्य' का स्थान चौथा है। इस व्रत के पालन करने की विशेष महिमा है, जैसा कि ज्ञानियो का कथन है : "तवेसु वा उत्तम बभचेर"। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए निम्न नव वाड़ो का विधान किया गया है :—

(१) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री-पशु-नपुसक सहित स्थान मे न रहे, क्योकि जैसे बिल्ली वाले मकान मे चूहा रहे तो उसको विनाश का खतरा है, उसी प्रकार स्त्री आदि के निवास-स्थान मे ब्रह्मचारी के शील की घात होने की एव उसके नष्ट होने की सभावना रहती है।

(२) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के शृ गार व हाव-भाव की कथा-वार्ता नही करे, क्योकि जैसे नीबू-इमली आदि खटाई का नाम लेते ही मुह मे पानी आ जाता है, वैसे ही ऐसी वार्ताओ से बह्मचारी का मन चचल हो जाता है और शील भग होने की सभावना रहती है।

(३) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठे, क्योकि जिस प्रकार अग्नि के पास घी रखने से घी पिघल जाता है, ठीक उसी प्रकार स्त्री के पास पुरुष के रहने से विषय-विकार पैदा होने लगते हैं और शील खडित होने की सभावना रहती है।

(४) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अग-उपांग आदि को नही देखे, क्योकि जैसे सूर्य के सम्मुख देखने से कच्चे नैनो वाले पुरुष के नेत्रो का विनाश हो जाता है, ठीक वैसे ही स्त्री के अगोपागो को निरखने से ब्रह्मचारी के अमूल्य शील का नाश हो जाता है।

(५) ब्रह्मचारी पुरुष टाटी, भीत, दीवार, पर्दा के अदर से स्त्री-पुरुष के भोग-विलास, राग-रग, गीत-गायन, हास्य-क्रीडा आदि के शब्द न सुने एव वहा न रहे क्योकि जैसे मोर मेघ-गर्जना सुन कर वोल उठता है, वैसे ही ब्रह्मचारी का मन ऐसे शब्दो को सुनने से पिघल कर उसके अत्युत्तम शील का विनाश कर देता है।

(६) ब्रह्मचारी पुरुष अपने पहले के भोगे हुए काम-भोगो को कभी याद न करे क्योकि ऐसा करने से वह निम्न "छाछ-वटोही" के दृष्टात की तरह शील-व्रत से पतित हो जाता है। दृष्टात:—एक वटोही मार्ग मे किसी बुढिया के पास छाछ पीकर परदेश के लिए रवाना हो गया। छ महीने वाद जव वह वापिस लौटा और चलते-चलते वहा आया तव उस बुढिया ने उसको देखकर कहा कि 'अरे भाई! मुझे वहुत प्रसन्नता है कि तुम अभी तक जीवित हो'। उस परदेशी ने पूछा—"यह कैसे"? उस बुढिया ने कहा—'भाई! तुम मेरे पास से छाछ पीकर गये थे, उस मटके के अदर छाछ मे एक सर्प मरा हुआ पड़ा था।' इतना सुनते ही उसको सर्प का जहर चढ गया और वह वटोही वही मर गया। इस तरह से पूर्व के भोगे हुए भोगो को याद करने से उत्तमोत्तम ब्रह्मचर्य व्रत का घात हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारी पूर्व-भुक्त भोगो को याद न करे।

(७) ब्रह्मचारी पुरुष नित्य-प्रति गरिष्ठ भोजन न करे क्योकि जैसे दूध-शक्कर का आहार सन्निपात के रोगी के शरीर का विनाश करता है, ठीक वैसे ही गरिष्ठ भोजन अमूल्य शील-रत्न का घात करता है।

(८) ब्रह्मचारी पुरुष सात्त्विक, सतुलित, सयमित एव सादा भोजन ही करे। सादा-सात्त्विक भोजन भी भूख से एक ग्रास कम ही करे, अधिक बिलकुल नही करे। जिस प्रकार सेर-भर खिचडी पके जैसे बर्तन मे अगर सवा सेर खिचड़ी पकावे तो वह हाडी फूट जाती है, ठीक उसी प्रकार अधिक भोजन करने से ब्रह्मचर्य-व्रत भग हो जाता है।

(९) ब्रह्मचारी पुरुष शरीर की शोभा, विभूषा (शृ गार) इत्यादि चित्त को आकर्षित करने वाले मनोरम शब्द, रूप, रस, गध व स्पर्श का सेवन कभी न करे। जिस प्रकार कगाल के हाथ मे चितामणि-रत्न टिकता नही, ठीक उसी प्रकार इस परिस्थिति मे ब्रह्मचारी का शील-व्रत स्थिर नही रह सकता।

उपर्युक्त नव वाडो अर्थात् नव मर्यादाओ का जो ब्रह्मचारी साधक उल्लघन करता है, उसके शीलव्रत मे शका होती है, उसकी भोगेच्छा जागृत होती है, फलत दीर्घकालीन रोग हो जाते हैं और अत मे वह केवलिभाषित धर्म से पतित हो जाता है तथा अनत ससार बढा लेता है। इसके विपरीत जो इस व्रत का पूर्णतया पालन करते हैं, वे इसके श्रेष्ठ फल को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् वे इस लोक मे देवो व मानवो से पूजित होते हैं तथा अत मे कर्मों का क्षय करके शुद्ध-बुद्ध व मुक्त हो जाते है।

श्रावक-धर्म

धम्मे दुविहे पण्णत्ते तं जहा—'सागारधम्मे चेव, अरणगार-धम्मे चेव'—श्रमरण भगवान् महावीर स्वामी ने भव्य जनो के लिए ससार-समुद्र को पार करने हेतु दो प्रकार के चारित्र धर्म की प्ररूपरणा की है १ अरणगार धर्म २. सागार धर्म। अरणगार धर्म के साधक सत-सती-वर्ग सर्व प्रकार से पापकारी कार्यो का तीन करण व तीन योग से परित्याग करते है। सागार धर्म के साधको (श्रावक-श्राविकाओ) के लिए सम्यक्त्व सहित बारह व्रतो का पालन करने का विधान है। पांच अरणु-व्रत, तीन गुरणव्रत व चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार कुल व्रत बारह हैं। इन व्रतों को सम्यक्त्व-सहित शुद्ध पालने से गृहस्थ साधक सुगति को प्राप्त कर सकता है।

आत्मिक उन्नति चाहने वाले प्रत्येक गृहस्थ साधक का कर्त्तव्य है कि वह समझ-बूझ कर श्रावक-धर्म को धारण करे, अव्रती से व्रती बने एव यथासभव आस्रवो/पापकारी प्रवृत्तियो से बचने की कोशिश करे। श्रावक-धर्म को धारण करने के लिए कम से कम जिन-जिन नियमो/व्रतो का पालन आवश्यक है—उन सम्यक्त्व-सहित बारह व्रतो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

सम्यक्त्व—वीतरागी, सर्वज्ञ अरिहत मेरे आराध्य देव हैं, पच महाव्रतधारी शुद्ध साधु मेरे मार्गदर्शक गुरु हैं, जिनेश्वर (सर्वज्ञ) प्ररूपित दयामय, विनयमूलक, आत्मा और कर्म का भेद करने वाला तथा मोक्ष का प्रकाशक तत्त्व ही मेरे लिए आचरणीय धर्म है। यह सम्यक्त्व (यथार्थ मान्यता) है, जिसको मैं जीवन-पर्यंत स्वीकार करता हूँ।

परमार्थ (आत्म-स्वरूप) का परिचय प्राप्त करना, परमार्थ-द्रष्टा गुरुओ की सेवा करना, सम्यक्त्व से पतित व्यक्तियो की एव मिथ्यात्वी की सगति का त्याग करना—यह सम्यक्त्व की श्रद्धना (सम्यक्त्व को अगीकार करने की प्रक्रिया) है, जिसे मैं अपनाता हूँ।

१. **स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत**—सर्व निरपराधी त्रस जीवो (बेइद्रिय, तेइद्रिय, चउरिद्रिय और पचेंद्रिय जीवो) की जान-बूझ कर सकल्प-पूर्वक हनने की बुद्धि से जीवन-पर्यन्त हिंसा करने व कराने का मन-वचन-काया से त्याग करता हू।

२. **स्थूल मृषावाद-विरमण व्रत**—सर्व स्थूल मृषावाद, जिससे लोक मे निंदा हो, समाज मे अप्रतीति हो, किसी को भारी हानि पहुचे, कुल-जाति तथा धर्म को कलक लगे एव देश मे अशाति फैले ऐसे कन्या या वर सम्बन्धी, गाय-बैल आदि पशु सम्बन्धी, भूमि-भवन सम्बन्धी, धरोहर (थापन) सम्बन्धी एव झूठी गवाही या जाली दस्तावेज तैयार करने सम्बन्धी (झूठ) बोलने-बुलवाने का जीवन-पर्यन्त मन-वचन-काया से त्याग करता हू।

३. **स्थूल अदत्तादान-विरमण व्रत**—सर्व प्रकार की स्थूल चोरी, जिसके कारण राज्य की ओर से दड मिले या पचो व समाज मे अपमान हो, ऐसी मकान मे सेंध लगाना, गाठ खोलना ताला तोडना या कु जी लगाकर खोलना, किसी को लूटना, गिरी हुई वस्तु को मालिक की बिना आज्ञा ग्रहण करना इत्यादि मोटी चोरी करने-करवाने का जीवन-पर्यन्त मन-वचन-काया से त्याग करता हूँ।

४. स्थूल मैथुन-विरमण व्रत—पचो की साक्षी से मैं विवाहिता स्व-स्त्री (विवाहित स्व-पति) ·· · · के साथ एक माह मे ·· दिनो के उपरान्त मैथुन-सेवन का एव पर-स्त्री (पर-पुरुप) के साथ सर्वथा मैथुन-सेवन का (देव-देवी सम्बन्धी दो करण-तीन योग से व मनुष्य-तिर्यंच सबधी एक करण-एक योग से) जीवन-पर्यन्त त्याग करता हूँ।

जिन साधको ने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने का निश्चय कर लिया है, वे इस स्थूल व्रत को निम्न प्रकार अगीकार करे— "मैं जीवन-पर्यन्त स्त्री/पुरुप सम्बन्धी मैथुन-सेवन का सर्वथा मन-वचन-काया से त्याग करता हू।"

५. स्थूल परिग्रह-विरमण व्रत—लोक के समस्त द्रव्यो मे से निम्न नव प्रकार के द्रव्यो की जीवन-पर्यंत (एक करण व तीन योग से) मन-वचन-काया से मर्यादा करता हूँ :

१ खुली जमीन (खेत-बाग-बगीचा आदि) एकड।
२ ढकी हुई जमीन (घर-मकान-दुकान-बगला आदि) ··नग।
३. चादी व चादी के आभूपण-सामान आदि · ·
४ सोना व सोने के आभूषण-सामान आदि ·
५ धन (मोहर, गिन्नी, रुपये-पैसे, सिक्के आदि) · · तथा हीरा-मोती-माणक आदि जवाहरात 'एव घर-खर्च के लिए रुपये··· · · ।
६. धान्य (सभी प्रकार का अनाज) एक वर्ष मे' मन।
७. द्विपद (नौकर-चाकर-दास-दासी-पक्षी) ··· सख्या।
८ चतुष्पद (गाय-भैंस-बकरी-बैल आदि जानवर)· ·· सख्या।

९ कुप्य (सोना-चादी के सिवाय सब प्रकार की ताम्बा, पीतल, स्टील, लोहा, लकडी आदि वस्तुओ का सामान एव कपडा आदि) · मूल्य। उपर्युक्त मर्यादा के उपरात परिग्रह का त्याग करता हूँ।

ये मर्यादाए घर-खर्च से सबधित हैं। व्यापार सबधी मर्यादा, जिसके जैसा व्यापार हो वैसी अलग से कर लेनी चाहिए। सोना-चादी का व्यापारी **सोना-चांदी** एव अनाज-विक्रेता **धान्य** के अतर्गत व्यापारिक मर्यादा कर सकता है।

६. दिशा परिमाण व्रत—अपने निवास-स्थान से जल-स्थल व आकाश-मार्ग से कही जाना पडे तो उत्तर दिशा मे · कोश तक, दक्षिण दिशा मे कोश तक, पूर्व दिशा मे·· कोश तक, पश्चिम दिशा मे कोश तक, उर्ध्व दिशा मे कोश तक एव अधो दिशा मे कोश तक जाने की छूट; इसके उपरात आगे जाने का जीवन-पर्यंत मन-वचन-काया से त्याग करता हूँ।

७. भोग-उपभोग-परिणाम व्रत—जो वस्तु एक बार ही काम मे आती है उसे 'भोग' कहते हैं। जैसे-अन्न-जल-फल आदि। इसके विपरीत जो वस्तु अनेक बार काम मे आ सकती है, उसे 'उपभोग' कहते है। जैसे-मकान-कपड़ा-आभूषण आदि। भोगोपभोग के बिना गृहस्थ-जीवन नही चल सकता। गृहस्थ-जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए व्यापार-धधा भी करना पडता है; अत. आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए भोगोपभोग-साधनो की मर्यादा की जा सकती है एव पद्रह कर्मादान का (महा-आरभ वाले धधो का) त्याग किया जा सकता है।

मैं निम्न भोगोपभोग-साधनो की एक करण-तीन योग से मर्यादा करता हू :—

१. अगौछा-टुवाल-रूमाल आदि ... .
२. दतौन (बबूल, नीम या मजन आदि) .. .
३. स्नान मे काम आने वाले फल (आवले-अरीठे आदि)...
४. मालिश तेल .. .
५. ऊबटन (पीठी-दही-साबुन-मिट्टी आदि)
६. स्नान का जल . . ..
७. वस्त्र (पहनने-ओढ़ने-बिछाने के सूती-ऊनी-रेशमी आदि)
८. चंदन-इत्र आदि विलेपन ....
९ फूल (गुलाब-मोगरा आदि) .
१०. आभूषण (सोने-चांदी आदि के) .. ..
११. धूप (अगरबत्ती, कपूर आदि) . .
१२. पेय पदार्थ (दूध-चाय-शरबत आदि) .. .
१३. मिठाई-पकवान . .
१४. रधे हुए अन्न (थूली-चावल आदि) . .
१५. दाल (उडद-मू ग-चना आदि) . . . .
१६. विगय (घी-तेल-दूध-दही-मीठा) . . ..
१७. साग (हरा-सूखा) ... .
१८. मधुर फल (हरे-सूखे, मेवा-बादाम आदि)
१९. भोजन-जीमण . . . .
२०. पीने का पानी .. ..
२१. मुखवास (सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि) . .
२२. वाहन (रेल-मोटर - तागा-साईकिल - नाव - हवाई-जहाज-स्कूटर आदि) . .

२३ उपानह (जूते-चम्पल-मौजा आदि)

२४. शयन (खाट-पलग आदि)

२५. सचित्त (पानी-हरी आदि सचित्त) द्रव्यो की सख्या

२६. द्रव्य (सचित्त-अचित्त दोनो द्रव्यो) की सख्या

इनके अलावा भोगोपभोग-निमित्त अन्य पदार्थों का जीवन-पर्यंत मन-वचन-काया से त्याग करता हूँ, यथा

१. अगार-कर्म (कोयले बनाना और बेचना)

२. वन-कर्म (वृक्षो को काटना और बेचना)

३ शाकटिक कर्म (वाहन सहित गाडी, तागा आदि बनाना व बेचना)

४ भाटी कर्म (भाड़े का काम करना)

५ स्फोटक कर्म (सुरग आदि से जमीन खोदना, खान से निकले पत्थर, मिट्टी, धातु आदि बेचना)

६. दंत-वाणिज्य (हाथी-दात, शख, चर्म, चामर आदि खरीदने-बेचने का काम करना)

७ लाक्ष-वाणिज्य (लाख का व्यापार करना)

८ रस-वाणिज्य (मदिरा आदि रस का व्यापार करना)

९ विष-वाणिज्य (विष का व्यापार करना)

१० केश-वाणिज्य (केश वाले प्राणियों का व्यापार करना)

११ यन्त्र-पीड़न-कर्म (यन्त्रो से पीलने का काम करना)

१२. निर्लांछन-कर्म (बैल, घोडे आदि को नपु सक बनाने का काम करना)

१३ दावाग्नि-दापनता (सफाई के लिए खेत-जगल आदि मे आग लगाना)

१४. सर-द्रह-तडाग-शोषणता (खेती के लिए सरोवर, तलाब आदि के सुखाने का काम करना)

१५ असती-जन-पोषणता (वेश्या आदि का पोषण करना)

इन पद्रह कर्मादानो का जीवन पर्यंत (तीन करण-तीन योग से) मन-वचन-काया से त्याग करता हूँ।

८. अनर्थ-दंड-विरमण व्रत—दड दो प्रकार के हैं—अर्थ-दंड (सप्रयोजन पाप) एव अनर्थ-दड (निष्प्रयोजन पाप)। श्रावक को निष्प्रयोजन-पाप (अनर्थ-दड) से बचने की जरूरत है। अनर्थ-दड चार प्रकार के कहे गये है :

१ अपध्यानाचरित (आर्त ध्यान-रौद्र ध्यान का चितन, मन ही मन दूसरो को मारने व दुःखी बनाने का विचार)

२ प्रमादाचरित (मद्य-विषय-कषाय का सेवन, अविवेक एव आलस्य के कारण किसी को कष्ट हो—ऐसा कार्य)

३ हिंस्रप्रदान (हिंसाकारी उपकरण—तलवार, बदूक, कुदाली आदि दूसरो को देना)

४. पापकर्मोपदेश (निष्प्रयोजन पापकारी-प्रवृत्तियो का उपदेश देना—मकान,कारखाने आदि बनाने का उपदेश)

इस प्रकार अनर्थ-दड सेवन का मैं आजीवन मन-वचन-काया से त्याग करता हूँ।

९. सामायिक व्रत—सपूर्ण सावद्य(पापकारी)प्रवृत्तियो का त्याग करते हुए समभाव मे रमण करने की क्रिया को सामा-

यिक कहते है । श्रावको के लिए आचार्यो ने एक सामायिक का काल 'अडतालीस मिनिट' निश्चित किया है ।

इस प्रकार के सामायिक व्रत का आराधन करते हुए मैं एक साल मे या एक मास मे या प्रतिदिन सामायिक सुखे-समाधे जीवन पर्यंत करते रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

१०. देशावकासिक व्रत—पहले से सातवे व्रत तक जो मर्यादाए जीवनभर के लिए की गई है उन सभी को सूर्योदय से एक अहोरात्रि तक सक्षिप्त करना—देशावकासिक व्रत है । इस व्रत मे दिशाओ की मर्यादा के अतिरिक्त पाप के पाच आस्रव सेवन के पच्चक्खाण दो करण-तीन योग से किये जाते है व भोगोपभोग द्रव्यो का त्याग एक करण-तीन योग से किया जाता है ।

ऐसे देशावकासिक व्रत की आराधना मे सुखे-समाधे एक वर्ष मे बार या एक माह मे बार करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

'दया' इसी व्रत के अतर्गत आती है ।

११. प्रतिपूर्ण पौषध-व्रत—इस व्रत मे सूर्योदय से लेकर एक अहोरात्रि पर्यंत चार प्रकार के आहार (अशन-पान-खादिम-स्वादिम) का, अब्रह्मचर्य (मैथुन) सेवन का, मणि-सुवर्ण आदि के आभूषणो का, फूलमाला पहनने-पाउडर या रग लगाने-चदन आदि का विलेपन करने का (शरीर का सत्कार करने का), शस्त्र-मूशलादि सावद्य-योग सेवन का दो करण-तीन योग से त्याग किया जाता है ।

ऐसे पौषध व्रत की आराधना सुखे-सुमाधे मैं एक वर्ष मे वार या माह मे " वार करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

१२. अतिथि-संविभाग-व्रत—इस व्रत मे साधु-मुनिराजो को प्रासुक एव एषणीय चौदह प्रकार के आहारादि निर्दोष वस्तुओ को देने का (देने की भावना रखने का) विधान है।

मैं साधु-साध्वी का योग मिलने पर चौदह प्रकार की आहारादि निर्दोष वस्तुओ को भक्ति-भाव-पूर्वक निष्काम बुद्धि से केवल आत्मकल्याण के लिए देऊगा।

दिनाक :

हस्ताक्षर

व्रत-धारक

उपर्युक्त सम्यक्त्व - सहित बारह व्रतो का निर्मल व शुद्ध पालन करने के लिए व्रती साधको को उनके निम्न अतिचारो (दोषो) का ज्ञान करते हुए उनसे बचने का प्रयास करना चाहिए।

* **सम्यक्त्व के पांच अतिचार**—(१) शका (जिन-वचन मे शका करना) (२) काक्षा (परदर्शन की आकाक्षा करना) (३) विचिकित्सा (धर्म-फल में सदेह करना) (४) पर-पाषड-प्रशसा (पर-पाखड को प्रशसा करना) (५) पर-पाषड-सस्तव (पर-पाखड का परिचय करना)।

* **पहले व्रत के पांच अतिचार**—(१) निर्दयता से किसी जीव को गाढे बधन से बाधना। (२) निर्दयता से किसी प्राणी पर कोडे-लकडी आदि का ऐसा प्रहार करना, जिससे

उसके अंगोपाग मे गहरी चोट पहुचे। (३) निर्दय बुद्धि से किसी जीव के चमडी का छेदन करना। (४) किसी प्राणी पर मर्यादा से अधिक भार लादना (५) द्वेष-बुद्धि से अपने आश्रित जीवो के अन्न-पान मे अतराय (विघ्न) डालना।

* **दूसरे व्रत के पांच अतिचार**—(१) बिना विचारे किसी पर झूठा कलंक लगाना। (२) किसी की गुप्त बात प्रगट करना। (३) किसी स्त्री-पुरुष का मार्मिक भेद प्रकाशित करना। (४) किसी को जान-बूझकर झूठा उपदेश देना, खोटी सलाह देना (५) झूठा लेख, खत, पत्रादि लिखना।

* **तीसरे व्रत के पांच अतिचार**—(१) चोरी की चीज स्वय खरीदना व दूसरो से खरीदवाना। (२) चोर को चोरी करने मे सहायता देना और दिलवाना। (३) राज्य के विरुद्ध कार्य—अपराध करना व करवाना। (४) तोलने के बाट और नापने के गज वगेरह हीनाधिक रखना और रखवाना। (५) अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु मिलाना या मिलवाना अथवा दिखाई हुई वस्तु को न देकर दूसरी वस्तु देना या दिलवाना।

* **चौथे व्रत के पांच अतिचार**—(१) अल्पवय (कच्ची उम्र) वाली पाणिगृहीता स्वस्त्री (स्वपति) के साथ गमन करना। (२) जिसके साथ अभी तक विवाह नही हुआ है, केवल सगाई हुई है—ऐसी स्त्री (पति) के साथ गमन करना। (३) काम-सेवन के अग के सिवाय सब अनग हैं, उनसे काम-क्रीडा करना। (४) कुटुम्ब-सबन्धी तथा मित्र के सिवाय दूसरे की सगाई-सबध कराना या उसकी दलाली करना। (५) काम-

भोग की तीव्र अभिलाषा रखना या तीव्र कामोत्पादक गरिष्ठ पदार्थों का सेवन करना।

* पांचवें व्रत के पांच अतिचार—(१) उघाडी या ढंकी जमीन की की हुई मर्यादा पूरी हो जाने पर भी उससे आगे बढना। (२) की हुई मर्यादा के उपरांत सोना-चादी आदि रखना। (३) मर्यादा के उपरात धन-धान्य आदि ज्यादा रखना। (४) मर्यादा के उपरात द्विपद-चतुष्पद रखना। (५) कपड़े, तांबा, पीतल आदि वस्तुए मर्यादा के उपरांत रखना।

* छठे व्रत के पांच अतिचार—(१) ऊची दिशा मे प्रमाण से आगे जाना। (२) नीची दिशा में प्रमाण से आगे जाना। (३) तिरछी दिशा मे प्रमाण से आगे जाना। (४) एक दिशा मे परिमाण को घटाकर दूसरी दिशा मे जोड़ना या सब दिशाओं के कोण जोड कर एक दिशा में जोडना। (५) की हुई मर्यादा मे सदेह होने पर भी आगे बढना।

* सातवें व्रत के पांच अतिचार—(१) जिस सचित्त वस्तु का त्याग किया है, वह वस्तु पूरी तरह अचित्त न हुई हो तो भी उसका भक्षण करना अथवा मर्यादा से अधिक सचित्त वस्तु का आहार करना। (२) सचित्त वस्तु से मिली हुई अचित्त वस्तु का आहार करना। (३) अधूरे पके हुए पदार्थ का आहार करना। (४) अविधि से पकाये हुए पदार्थ का आहार करना। (५) जिस वस्तु मे खाने योग्य भाग थोडा हो और फैंकने योग्य भाग अधिक हो, ऐसी वस्तु का आहार करना।

* आठवें व्रत के पांच अतिचार—(१) काम-विकार उत्पन्न करने वाली कथा करना। (२) मनोरंजन के लिए

भाडो की तरह कुचेष्टाएं (हसी-मजाक आदि) करना। (३) धृष्टता (धीठता) से निरर्थक बोलना। (४) अधिकरण (ऊखल मूशल, तलवार आदि हिंसाकारी उपकरणो) का सग्रह करना। (५) उपभोग-परिभोग (खाने-पीने-पहनने के काम आने वाली वस्तुओ) को अधिक बढाना।

* **नववें व्रत के पांच अतिचार**—(१) मन मे बुरे विचार लाना। (२) वचन से सावद्य (पापजनक) या कठोर भाषा बोलना। (३) काय से असत् कार्य करना। (४) सामायिक की स्मृति न रखना। (५) सामायिक का काल पूरा हुए बिना ही सामायिक पार लेना।

* **दसवें व्रत के पांच अतिचार**—(१) मर्यादित भूमि से बाहर की वस्तु किसी से मगवाना। (२) मर्यादित भूमि से बाहर किसी वस्तु को भिजवाना। (३) मर्यादित भूमि से बाहर की वस्तु मगवाने-भिजवाने बावत शब्द करके किसी को चेताना। (४) मर्यादित भूमि से बाहर की वस्तु मगवाने-भिजवाने बावत रूप दिखाकर अपने भाव प्रकट करना। (५) मर्यादित भूमि से बाहर की वस्तु मगवाने-भिजवाने के लिए ककर आदि फेंककर किसी को बुलाना।

* **ग्यारहवें व्रत के पांच अतिचार**—(१) शय्या-सथारे की प्रतिलेखना नही करना या अच्छी तरह से नही करना। (२) शय्या-सथारे का प्रमार्जन न करना या अच्छी तरह से न करना। (३) वडी-लघु नीत की भूमि का प्रतिलेखन न करना या अच्छी तरह से न करना। (४) बडी-लघुनीत की भूमि का प्रमार्जन न करना या अच्छी तरह से न करना। (५) पौषघ का सम्यक् प्रकार से पालन न करना।

* **बारहवें व्रत के पांच अतिचार**—(१)साधु को देने योग्य अचित्त वस्तु में सचित्त वस्तु डाल देना। (२) अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढक देना। (३) समय बीत जाने पर भिक्षा आदि के लिए भावना भाना। (४) दान के लिए पराई वस्तु को अपनी और दान न देने के लिये अपनी वस्तु को पराई कहना। (५) मत्सर-भाव से दान देना।

आगार—आगार छूट को कहते हैं। व्रत धारण करते समय अपनी आवश्यकता एव परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत रूप से हर एक व्रत मे कुछ आगार रखे जा सकते हैं। सामूहिक रूप से विशेषत. **'सम्यक्त्व'** के छह एवं **'आठवें अनर्थदंड-विरमण-व्रत'** के आठ आगार बताये गये हैं। सम्यक्त्व के छह आगार 'सम्यक्त्व के सडसठ बोल' स्तोक के अतर्गत इसी पुस्तक मे अन्यत्र बताये जा चुके हैं। आठवे **अनर्थदंड-विमरण-व्रत** के आठ आगार इस प्रकार हैं—(१) आए वा (अपने लिए) (२) राए वा (राजा आदि शासको के लिए) (३) नाए वा (ज्ञाति—जाति, कुल के लिए) (४) परिवारे वा (परिवार, सेवक, भागीदार आदि के लिए) (५) देवे वा (वैमानिक-ज्योतिषी देवो के लिए) (६) नागे वा (भवनपति देवो के लिए) (७) भूए वा (भूत आदि के लिए) (८) जक्खे वा (यक्ष आदि व्यतर देवों के लिए)।

दोष

गृहीत व्रतो के पालन मे यदि सावधानी न बरती जाये तो चार प्रकार के दोष लगने की संभावना रहती है :

(१) अतिक्रम (व्रत-भग की इच्छा-मात्र होना)

(२) व्यतिक्रम (व्रत-भग के लिए साधन जुटाना)

(३) अतिचार (व्रत का कुछ अशो मे भग हो जाना)
(४) अनाचार (व्रत का पूरा भग कर देना)

इसके अतिरिक्त जानबूझ कर बार-बार व्रत मे दोष लगाना भी अनाचार के अतर्गत आता है। अनाचार से व्रत खडित होने पर प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करनी आवश्यक है।

हित-शिक्षाएँ व नियम—आत्मिक व शारीरिक दोनो प्रकार की स्वस्थता को ध्यान में रखते हुए कुछ हित-शिक्षा के बोल एव नियम बताए गए है, जिनका पालन मात्र श्रावक के लिए ही नही प्रत्येक सद्‌गृहस्थी के लिए अनिवार्य है :

(१) मद्य-मास एव बीड़ी-सिगरेट आदि नशीले पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए।
(२) पशु-पक्षी आदि किसी प्राणी का शिकार नही करना चाहिए।
(३) अनाज को बिना छाने-देखे पीसना-पिसाना व पकाना नही।
(४) बिना छना जल काम मे लेना नही।
(५) बिना छना आटा-मैदा एव किसी भी पदार्थ-खाद्यवस्तु को बिना देखे काम मे लेना नही।
(६) असभ्य वचन (गाली) बोलना नही।
(७) यथाशक्य महारभ से बनी हुई वस्तुओ का प्रयोग करना नही।
(८) अपने अधीनस्थ नौकर-चाकर आदि के प्रति दुर्व्यवहार करना नही। पडोसियो के साथ भी सद्‌भाव-पूर्ण व्यवहार करना।

(९) घुना हुआ, डक लगा हुआ, सडा-गला धान्यादि खाद्य-पदार्थ काम मे लेना नही ।

(१०) लकडी-इधन आदि विना देखे काम मे लेना नही ।

(११) घी-तेल-दूध-दही-आचार आदि के वर्तन खुले रखना नही ।

(१२) मधुमक्खी आदि का छत्ता तोडना नही ।

(१३) रसचलित फूलनादि से युक्त व विकृत वस्तु को काम मे लेना नही ।

(१४) रात्रि-भोजन करना नही ।

(१५) सप्त कुव्यसनो का सेवन करना नही ।

(१६) किसी भी परिस्थिति मे आत्म-हत्या करना नही ।

(१७) किसी की उन्नति मे वाधक वनना नही ।

(१८) ईर्ष्याभाव-पूर्वक किसी को गिराने का प्रयास करना नही ।

(१९) विश्वासघात करना नही, किसी की धरोहर को हडपना नही ।

(२०) गदे (घासलेटी) साहित्य का वाचन करना नही ।

(२१) दुराचारी व्यक्तियो की सगति करनी नही ।

(२२) वेश्याओ के नृत्य आदि देखने नही, करवाने नही एव अश्लील गीत गाने नही ।

(२३) विषय-वासना वढाने वाले सिनेमा-नाटक आदि देखना नही ।

(२४) विना काम रात्रि मे या असमय मे जहा-तहा भटकना नही ।

(२५) धर्म और इज्जत की रक्षा न रहे, ऐसे धन्धे (नौकरी आदि) करना नही ।

(२६) अपनी पू जी व हैसियत से अधिक व्यापार करना नही ।
(२७) शक्ति से अधिक खर्च एव विशेषत· अपव्यय करना नही ।
(२८) फूलो एव कद-मूल का शाक खाना नही ।
(२९) अधेरे मे भोजन वनाना नही व करना नही ।
(३०) अनजानी वस्तु कभी खानी नही ।
(३१) विवाह आदि प्रसगो पर एव दीपावली आदि पर्वों के अवसर पर कभी आतिशवाजी करना नही ।
(३२) बडो के साथ विनय-युक्त व छोटो के साथ प्रेम-भाव-युक्त व्यवहार करना ।

कतिपय चिंतन-बिंदु

* दान के प्रभाव से शालिभद्र को अपरिमित ऋद्धि मिली, सयम पालकर वे सर्वार्थसिद्ध मे गए एव वहा से मनुष्य-भव प्राप्त कर सिद्ध-गति को प्राप्त करेंगे—ऐसा सोचकर सुपात्र-दान देना चाहिये ।

* शीलव्रत के प्रभाव से सेठ सुदर्शन की शूली का सिंहासन बन गया और कलावती के कटे हुए हाथ नव पल्लव के समान विकसित हुए—ऐसा सोचकर शुद्ध ब्रह्मचर्य (शील) का पालन करना चाहिए ।

* तप के प्रभाव से धन्नामुनि, हरिकेशी मुनि और ढढण ऋषि आदि कर्म खपाकर मुक्ति को प्राप्त हुए—ऐसा सोचकर निर्मल तप की आराधना करनी चाहिए ।

* भावना के प्रभाव से प्रसन्नचदराजर्षि, इलायचीकुमार, कपिलमुनि, स्कधकमुनि के चार सौ निनानवे शिष्य, भरत चक्रवर्ती एव माता मरुदेवी आदि ने मुक्ति प्राप्त की, ऐसा सोचकर शुद्ध भावना भानी चाहिए ।

श्रावक के इक्कीस लक्षण

१. अल्प-इच्छा (इच्छा-तृष्णा को कम करने) वाला होवे।
२. अल्प-आरंभी (हिंसाकारी प्रवृत्तियों को कम करने वाला) होवे।
३. अल्प-परिग्रही (परिग्रह को कम करने वाला) होवे।
४. सुशील (आचार-विचार की शुद्धता रखने वाला शीलवान) होवे।
५. सुव्रती (ग्रहण किये हुए व्रतों का शुद्धता-पूर्वक पालन करने वाला) होवे।
६. धर्मनिष्ठ (धर्म-कार्यों में निष्ठा रखने वाला) होवे।
७. धर्मवृत्ति (मन-वचन-काय से धर्म-मार्ग में प्रवृत्ति करने वाला) होवे।
८. कल्प-उग्रविहारी (उपसर्ग आने पर भी मर्यादा के विरुद्ध कार्य न करने वाला) होवे।
९. महासंवेग-विहारी (निवृत्ति-मार्ग में लीन रहने वाला) होवे।
१०. उदासीन (संसार की प्रवृत्तियों के प्रति उदासीनता रखने वाला) होवे।
११. वैराग्यवान् (आरंभ-परिग्रह को छोड़ने की इच्छा रखने वाला) होवे।
१२. एकांत आर्य (निष्कपटी, सरल-स्वभावी) होवे।
१३. सम्यग्मार्गी (सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के मार्ग पर चलने वाला) होवे।

१४. सुसाधु (आत्म-साधना करने वाला) होवे ।
१५ सुपात्र (सद्गुण एव सम्यग्ज्ञान को सुरक्षित रखने वाला) होवे ।
१६ उत्तम (सद्गुणो से युक्त एव सद्गुणानुरागी) होवे ।
१७. क्रियावादी (शुद्ध क्रिया करने वाला) होवे ।
१८ आस्तिक (देव-गुरु-धर्म के प्रति श्रद्धा-निष्ठ) होवे ।
१९ आराधक (जिन-आज्ञा के अनुसार धर्म की आराधना करने वाला) होवे ।
२०. प्रभावक (जिन-शासन की प्रभावना करने वाला) होवे ।
२१. अरिहत-शिष्य (अरिहत भगवान् के प्रति सश्रद्ध भक्ति रखने वाला, उनके बताये मार्ग पर चलने वाला) होवे ।



श्रावक के इक्कीस गुण

१ अक्षुद्र (गभीर स्वभावी) होवे ।
२. रूपवान् (सुन्दर,तेजस्वी और सशक्त शरीर वाला)होवे ।
३. प्रकृति-सौम्य (शात, दात, क्षमावान् और शीतल-स्वभावी) होवे ।
४. लोकप्रिय (इहलोक-परलोक के विरुद्ध कार्य न करने वाला) होवे ।
५. अक्रूर (क्रूरता-रहित, सरल एव गुणग्राही) होवे ।
६ भीरु (लोकापवाद, पाप-कर्म एव अनीति से डरने वाला) होवे ।

७ अशठ (चतुर एव विवेकी) होवे ।
८ सुदक्षिण (विचक्षण एव अवसर का ज्ञाता) होवे ।
९ लज्जालु (कुकर्मो के प्रति लज्जाशील) होवे ।
१०. दयालु (परोपकारी एव सभी जीवो के प्रति दयाशील) होवे ।
११. मध्यस्थ (अनुकूलता-प्रतिकूलता मे समता-भाव रखने वाला) होवे ।
१२ सुदृष्टि (पवित्र दृष्टि वाला) होवे ।
१३ गुणानुरागी (गुणो का प्रेमी एव प्रशसक) होवे ।
१४ सुपक्षयुक्त (न्याय और न्यायी का पक्ष लेने वाला) होवे ।
१५. सुदीर्घ-दृष्टि (दूरगामी दृष्टि वाला) होवे ।
१६. विशेषज्ञ (जीवादि तत्त्वो का एव हिताहित का ज्ञाता) होवे ।
१७ वृद्धानुग (गुण-वृद्ध, वयोवृद्ध का आज्ञापालक) होवे ।
१८ विनीत (गुणि-जनो, गुरुजनो के प्रति विनम्र) होवे ।
१९ कृतज्ञ (किये हुए उपकार को नही भूलने वाला) होवे ।
२० परहितकर्ता (मन-वचन-काय से दूसरो का हित करने वाला) होवे ।
२१. लब्धलक्ष्य (लक्ष्य प्राप्ति के लिए अधिकाधिक शास्त्रो का ज्ञान करने वाला) होवे ।

'श्रावक के प्रकार'

१. माता-पिता के समान
२ भाई के समान
३ मित्र के समान
४. सौत के समान

१. आदर्श के समान
२. पताका के समान
३ कीले के समान
४ तीखे काटे के समान

—ठाणाग, ४

'श्रावक का वचन-व्यवहार'

१. श्रावक थोडा बोले ।
२. श्रावक आवश्यकता होने पर बोले ।
३ श्रावक मीठा बोले ।
४. श्रावक चतुराई-पूर्वक अवसर के अनुसार बोले ।
५ श्रावक अहकार-रहित बोले ।
६ श्रावक मर्मकारी व आघात-जनक वचन न बोले ।
७ श्रावक सूत्र-सिद्धात के विपरीत न बोले ।
८ श्रावक सभी जीवो के लिए साताकारी व हितकारी वचन बोले ।



चौदह नियम

त्याग एव मर्यादा का जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है । इहलोक व परलोक दोनो को सुखमय बनाने का एकमात्र साधन ही 'त्याग व मर्यादा' है । इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए श्रावक ही क्या प्रत्येक धर्मप्रेमी सद्गृहस्थ को चाहिए कि वह प्रतिदिन प्रातः निम्न चौदह नियमो को ग्रहण करे एव आवश्यकता के अनुसार मर्यादा करके उसके उपरात त्याग करले । जितना त्याग उतनी ही शाति । चौदह नियम धारण करने से समुद्र जितना पाप घटकर बू द के बराबर रह जाता है ।

१. **सचित्त**—कच्चा पानी, हरी वनस्पति, फल, पान, सचित्त नमक, कच्चा पूरा धान आदि सचित्त (जीव सहित) वस्तुओ का परिमाण करना ।

२. द्रव्य—रोटी, दाल, शाक, पूडी, पापड, पान, सुपारी, चूर्ण, रबडी, घेवर, खीर, चाय, दवा आदि द्रव्यो का परिमाण करना।

३. विगय—घी, तेल, दूध, दही व मीठा—इन पाचो विगय का परिमाण करना।

४. उपानह—जूते, चप्पल, मौजे आदि की मर्यादा करना।

५. ताम्बूल—पान, सुपारी, इलायची, लौग, चूर्ण आदि मुखवास की मर्यादा करना।

६. वस्त्र—पहनने-ओढने के सारे वस्त्रो की मर्यादा करना।

७. कुसुम—सू घने की वस्तु (फूल-इतर आदि) की मर्यादा करना।

८. वाहन—साईकिल, स्कूटर, मोटर, रेल, हाथी, घोड़ा आदि वाहनो की मर्यादा करना।

९. शयन—पलग, खाट, बिछौने आदि की मर्यादा करना।

१०. विलेपन—केसर, चदन, तेल, उबटन आदि की मर्यादा करना।

११. अब्रह्म—मैथुन-सेवन का त्याग करना या मर्यादा करना।

१२. दिशा—ऊची, नीची, तिरछी दिशा मे जाने की मर्यादा करना।

१३. स्नान—स्नान एव स्नान के लिए जल की मर्यादा करना।

१४. भक्त—भोजन (कितने समय व कितना·) की मर्यादा करना।



चार शरण

"अरिहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि।
साहू सरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि।।"

शरण पहला श्री अरिहत प्रभु का। अरिहत प्रभु बारह गुणों से सहित, अठारह दोषों से रहित हैं। देवेन्द्र-नरेन्द्र के वदनीय-पूजनीय है, ऐसे अरिहत प्रभु का इहभव-परभव व सदा काल शरण होवे।

शरण दूसरा श्री सिद्ध भगवान् का। सिद्ध भगवान् आठ गुणो से सहित, आठ कर्मों से रहित, अजर-अमर, अविकारी, निरजन, निराकार, ऊर्ध्व लोक के अतिम भाग मोक्ष-स्थान मे विराजमान है। ऐसे सिद्ध भगवान् का इस भव, पर-भव व सदा काल शरण होवे।

शरण तीसरा साधु-मुनिराज का। साधुजी महाराज पाच महाव्रत पालते हैं, पाच इद्रियां जीतते हैं, चार कषाय टालते हैं इत्यादि सत्ताईस गुणो से युक्त, बावीस परीषह जीतते हैं, सतरह प्रकार से सयम पालते हैं; इस प्रकार श्री जिनेद्र भगवान् की आज्ञा मे विहरते-विचरते है—ऐसे अनेक गुण-भूषित निर्ग्रन्थ साधु-मुनिराजो का इस भव, पर-भव व सदा काल शरण होवे।

शरण चौथा श्री जिनेश्वर-देव प्ररूपित दयामय धर्म का। धर्म दो प्रकार का—१. श्रुतधर्म (द्वादशागी—श्री जिन-प्रणीत वाणी अर्थात् शास्त्र) और २. चारित्र धर्म। चारित्र धर्म के दो भेद—(१) अणगारी (साधु) धर्म व (२) सागारी (श्रावक) धर्म। जिनेंद्र-देव-कथित यह धर्म आधि-व्याधि-

उपाधि का नाश करके मोक्ष के अनत एव अक्षय सुखो का दाता है। ऐसे दया-धर्म का इस भव, परभव व सदा काल शरण होवे।

श्रावक के तीन मनोरथ

श्रावक के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रतिदिन प्रातः काल सामायिक करते समय या यो ही शुभ मनोरथो के द्वारा भविष्य के लिए शुभ सकल्प करे। भगवान महावीर ने स्थानाग सूत्र के तीसरे स्थान मे निम्न तीन मनोरथो का वर्णन किया है—

१ पहले मनोरथ मे श्रावक यह विचार करे कि वह दिन धन्य होगा, जब मैं अपने धन-सपत्ति रूप परिग्रह का त्याग करू गा। यह परिग्रह मेरी आत्मा के लिए सबसे बडा बधन है। यह ममता का जहर आध्यात्मिक जीवन को दूषित कर रहा है। धन का सच्चा उपयोग सग्रह मे अथवा अपने स्वार्थ के पोषण मे नही है, प्रत्युत अर्पण कर देने मे है। अस्तु, जिस दिन मैं अपने परिग्रह को त्याग कर प्रसन्नता का अनुभव करू गा, ममता के भार से हलका होऊगा, वह दिन मेरे लिए महान कल्याणकारी होगा।

२. दूसरे मनोरथ मे श्रावक यह विचार करे कि वह दिन धन्य होगा, जब मैं ससार की मोह-माया और विषय-वासना का त्याग करके साधु-जीवन स्वीकार करू गा। अहिंसा आदि पाच महाव्रतो को धारण करके एव परीषह-उपसर्गों को समभाव से सहन करते हुए जिस दिन मैं मुनि-पद की ऊची

भूमिका मे विचरण करूगा, वह दिन मेरे लिए महान् कल्याणकारी होगा ।

३ तीसरे मनोरथ मे श्रावक यह चितन करे कि वह दिन धन्य होगा, जब मैं अपनी सयम-यात्रा को सकुशल (निर्विघ्न-भाव से) पूर्ण कर अत समय मे आलोचना, निंदा व गर्हा करके सथारा ग्रहण करूगा। सब प्रकार की उपधि, आहार और जीवन की ममता का भी त्याग कर जिस दिन मैं पूर्ण रूप से अपने आपको वीतराग भगवान् की उपासना मे लगा दूंगा, वह दिन मेरे लिए परम कल्याणकारी होगा ।

ध्यातव्य

'नही'

(१) क्रोध के समान विष नही ।
(२) क्षमा के समान अमृत नही ।
(३) लोभ के समान दु ख नही ।
(४) सतोष के समान सुख नही ।
(५) पाप के समान शत्रु नही ।
(६) धर्म के समान मित्र नही ।
(७) कुशील के समान भय नही ।
(८) शील के समान अभय नही ।

'मूल'

(१) समस्त गुणो का मूल विनय है ।
(२) समस्त रसो का मूल पानी है ।
(३) समस्त पापो का मूल लोभ है ।
(४) समस्त धर्मों का मूल दया है ।

(५) समस्त कलह का मूल हसी है ।
(६) समस्त रोगो का मूल अजीर्ण है ।
(७) समस्त बधनो का मूल राग है ।

'श्रृंगार'

१. शरीर का श्रृंगार शील है ।
२. शील का श्रृंगार तप है ।
३. तप का श्रृंगार क्षमा है ।
४. क्षमा का श्रृंगार ज्ञान है ।
५. ज्ञान का श्रृंगार मौन है ।
६. मौन का श्रृंगार शुभ ध्यान है ।
७. शुभ ध्यान का श्रृंगार सवर है ।
८. सवर का श्रृंगार निर्जरा है ।
९. निर्जरा का श्रृंगार केवलज्ञान है ।
१०. केवलज्ञान का श्रृंगार अक्रिया है ।
११. अक्रिया का श्रृंगार मोक्ष है ।
१२. मोक्ष का श्रृंगार शाश्वत सुख है ।

'महापापी'

१. आत्म-घाती महापापी ।
२. विश्वास-घाती महापापी ।
३. गुरु-द्रोही महापापी ।
४. कृतघ्नी महापापी ।
५. झूठी सलाह देने वाला महापापी ।
६. झूठी साक्षी देने वाला महापापी ।
७. हिंसा मे धर्म बताने वाला महापापी ।
८. सरोवर की पाल तोड़ने वाला महापापी ।

९ वन मे आग लगाने वाला महापापी ।
१०. हरा-भरा वन काटने वाला महापापी ।
११. बाल-हत्या करने वाला महापापी ।
१२. सती-साध्वी का शील भग करने वाला महापापी ।

'दान'

१. अनुकपा दान (किसी दुःखी पर अनुकपा लाकर भोजनादि देना)
२. संग्रह दान (सहायता प्राप्त करने के लिये दिया जाने वाला दान)
३ भय दान (राजादि बलवान के भय से दिया जाने वाला दान)
४. कारुण्य दान (प्रियजन के वियोग से दु खित होकर दिया जाने वाला दान)
५. लज्जा दान (लज्जा के वश होकर दिया जाने वाला दान)
६ गौरव दान (यश-प्राप्ति की इच्छा से दिया जाने वाला दान)
७. अधर्म दान (अधर्म के समर्थन के लिए दिया जाने वाला दान)
८ धर्मदान (धर्म की वृद्धि एव पुष्टि के लिये दिया जाने वाला सुपात्र-दान)
९ करिष्यत् दान (प्रत्युपकार की आशा से दिया जाने वाला दान)
१०. कृत-दान (उपकार या बदला चुकाने के लिये दिया जाने वाला दान)

—ठाणांग सूत्र

'मुंडन'

१ श्रोत्रेद्रिय-मुडन (शब्द-सबधी विषय के विकारो का त्याग करना)
२ चक्षुरिद्रिय-मुडन (रूप-सबधी विषय के विकारो का त्याग करना)
३ घ्राणेद्रिय-मुडन (गध-सबधी विषय के विकारो का त्याग करना)
४. रसनेद्रिय-मुंडन (रस-सबंधी विषय के विकारो का त्याग करना)
५. स्पर्शनेद्रिय-मुडन (स्पर्श-सबधी विषय के विकारो का त्याग करना)
६. क्रोध-मुडन (क्रोध का त्याग करना)
७ मान-मुडन (मान का त्याग करना)
८ माया-मुडन (माया का त्याग करना)
९ लोभ-मुडन (लोभ-लालच का त्याग करना)
१० सिर-मुडन (मस्तक के बाल उतरवा कर प्रव्रजित होना)

इनमे से नव तो भाव-मुडन के अतर्गत आते है तथा दसवां द्रव्य-मुडन है। भाव-मुडन के बिना द्रव्य-मुडन का कोई लाभ नही।

—ठाणाग सूत्र

'धर्म'

१ ग्राम-धर्म (ग्राम की व्यवस्था एव रीति-नीति)
२. नगर-धर्म (नगर की व्यवस्था एव रीति-नीति)
३. राष्ट्र-धर्म (राष्ट्र की व्यवस्था एव रीति-नीति)
४ पाखण्ड-धर्म (पाखण्डियो की आचार-व्यवस्था एव रीति-नीति)

५. कुल-धर्म (कुल या गच्छ की आचार-व्यवस्था एव रीति-नीति)
६ गण-धर्म (कुल-सगठन से बने गण की आचार-व्यवस्था एव रीति-नीति)
७. सघ-धर्म (गणो के सगठन से बने सघ की आचार-व्यवस्था एव रीति-नीति)
८. श्रुत-धर्म (सम्यक्-श्रुत—जिन-भाषित-आगम मे वर्णित आचार-व्यवस्था एव रीति-नीति)
९ चारित्र धर्म (कर्म-मल को नष्ट करके आत्मा को पवित्र बनाने के लिए आचरित आचार-व्यवस्था एव रीति-नीति)
१० अस्तिकाय धर्म (धर्मास्तिकाय आदि अस्तिकायो का गुण-स्वभाव)

—ठाणाग सूत्र

'दुर्लभ'

१ आरोग्य (शरीर की निरोगता-स्वस्थता)
२. दीर्घ-आयु (लम्बे काल तक का सुखी जीवन)
३ आढ्यत्व (विपुल धन-सपत्ति का होना)
४ काम (प्रीतिकारक शुभ शब्द-रूप की प्राप्ति)
५ भोग (शुभ गध-रस और स्पर्श की प्राप्ति)
६ सतोष (इच्छाओ का अल्प होना)
७. अस्ति (आवश्यकतानुसार उसी समय वस्तु की प्राप्ति)
८ शुभभोग (आनदित-प्रशस्त भोगो की प्राप्ति)
९. निष्क्रमण (ससार के जजाल से निकल कर सयममय जीवन प्राप्त करना, भागवती दीक्षा अगीकार करना)

१० अव्याबाध (बाधा-रहित मोक्ष के शाश्वत-सुख)

'रोग के कारण'

१. अत्यासन (अधिक बैठना या अधिक खाना)
२. अहितासन (आरोग्य के प्रतिकूल आसन से बैठना या अपथ्यकारी भोजन करना)
३. अति निद्रा (अधिक नींद लेना)
४. अति जागरण (अधिक जागना)
५ उच्चार-निरोध (बड़ी नीत (मल) को रोकना)
६. प्रस्रवण-निरोध (लघु नीत (मूत्र) को रोकना)
७. अध्व-गमन (मार्ग मे अधिक चलना)
८. भोजन-प्रतिकूलता (प्रकृति के प्रतिकूल भोजन करना)
९ इंद्रियार्थ-विकोपन (काम-विकार का उत्पन्न होना, विषय-भोगो मे अति गृद्ध रहना)

—ठाणांग सूत्र ९/८

'दीक्षा के कारण'

१. छन्द (अपनी या दूसरे की इच्छा से दीक्षा लेना)
२. रोष (क्रोध के कारण दीक्षा लेना)
३. परिद्यूना (दरिद्रता व गरीबी के कारण दीक्षा लेना)
४. स्वप्न (विशेष प्रकार का स्वप्न आने से दीक्षा लेना)
५. प्रतिश्रुत (आवेश मे आकर दीक्षा लेना)
६ स्मारण (किसी के द्वारा स्मरण कराने से या कोई दृश्य देखकर जाति-स्मरण-ज्ञान होने से पूर्वभव को जानकर दीक्षा लेना)
७. रोगिणिका (रोग के कारण दीक्षा लेना)
८. अनादर (किसी के द्वारा अपमानित होने पर या अनादर भाव से दीक्षा लेना)

९. देवसज्ञप्ति (देवो के द्वारा प्रतिबोध देने पर दीक्षा लेना)
१० वत्सानुबधिका (पुत्र-स्नेह के कारण दीक्षा लेना)

—ठाणाग सूत्र

'पाप का परिवार'	'धर्म का परिवार'
१ पाप का बाप लोभ	धर्म का बाप सतोष
२ पाप की माता हिंसा	धर्म की माता दया
३ पाप की पत्नी माया	धर्म की पत्नी सरलता
४ पाप का पुत्र अहकार	धर्म का पुत्र विनय
५ पाप की पुत्री तृष्णा	धर्म की पुत्री अनासक्ति
६ पाप की बहन कुमति	धर्म की बहन सुमति
७. पाप का भाई झूठ	धर्म का भाई सत्य
८ पाप का मूल क्रोध	धर्म का मूल क्षमा

'आध्यात्मिक परिवार'

१. पिता—धैर्य	४ पुत्र—सत्य	७ वस्त्र—दिशाए
२. माता—क्षमा	५ वहन—दया	८. भोजन—ज्ञान
३ पत्नी—शाति	६ भाई—सयमी मन	९ शय्या—भूमि

अनमोल बोल

१ मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, धर्म मे श्रद्धा और सयम मे पराक्रम—ये चार बाते बडी दुर्लभ हैं ।

२ सयम ही जीवन है ।

३ सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता अत किसी प्राण-भूत-जीव-सत्त्व की हिंसा कदापि नही करनी चाहिए ।

४. सग्राम मे शत्रुओ पर विजय पाना सरल है परतु अपनी आत्मा मे रहे हुए क्रोध आदि कषायो को जीतना अत्यत कठिन है।

५ वीतराग भगवान के वचनो मे अनुरक्त रह कर उनके वचनो को जो प्रकाश-भूत मानते है, वे राग-द्वेष और मिथ्यात्व-रूपी मल से रहित होकर शीघ्र मोक्ष को वर लेते हैं।

६. अहिंसा, सयम व तप रूपी धर्म सर्वोत्कृष्ट मगल है। धर्मानुरागी व्यक्ति की देवता भी सेवा करते है।

७ जब तक वृद्धावस्था पीडित नही करती है, व्याधियो का जोर नही बढता है, इद्रिया क्षीण नही होती हैं तब तक बुद्धिमान को धर्म का सेवन कर लेना चाहिए।

८. जो-जो रात्रिया बीत जाती है, वे पुनः लौटकर नही आती, ऐसा सोचकर जो धर्म का आचरण करते रहते हैं, उनकी रात्रिया सफल हो जाती हैं।

९. राग-द्वेष कर्म के वीज हैं, इन्ही से ससार बढता है।

१० चलना, खडा होना, बैठना, सोना, भोजन करना और बोलना आदि प्रवृत्तिया यतना-पूर्वक करने से पाप-कर्म का बध नही होता।

११ विना स्वार्थ से देने वाला एव निस्पृह-भाव से लेने वाला, दोनो ही जीव सुगति को प्राप्त होते है।

१२. कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय। कर्म से ही वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र।

१३ काम-भोग शल्य रूप हैं, विष रूप है और आशीविष-सर्प के समान है। काम-भोग का सेवन न करते हुए सिर्फ इनकी इच्छा करने मात्र से भी जीव दुर्गति को प्राप्त होता है।

१४. क्रोध प्रीति का, मान विनय का, माया मैत्री का और लोभ सभी सद्गुणो का विनाश कर डालता है।

१५. क्रोध को शाति से, मान को मृदुता (नम्रता) से, माया को सरलता से और लोभ को सतोष से जीतना चाहिए।

१६. ज्ञान का सारभूत तत्त्व यही है कि किसी जीव की हिंसा नही की जाए।

१७. एक मन को जीत लेने पर पाचो इद्रिया स्वत वश मे हो जाती है और पाचो इद्रिया वश मे होते ही चारो कषायो पर भी नियत्रण हो जाता है, अतः सर्वप्रथम मन को जीतने की आवश्यकता है। यही जीत सर्व-श्रेष्ठ है।

१८ 'धर्म' सत्य से उत्पन्न होता है, दया-दान से बढता है, क्षमा से स्थिर होता है और क्रोध व लोभ से नष्ट होता है।

१९ मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा—ये पाच प्रमाद हैं, जो जीव को ससार मे परिभ्रमण कराते है।

२० लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, जीवन-मरण, निंदा-प्रशसा और मान-अपमान मे जो समभाव रखता है, वही वास्तव मे मुनि है।

२१ मन ही मनुष्य के बध और मोक्ष का प्रधान कारण है।

२२ सौ निरर्थक बातें करने की अपेक्षा एक सार्थक बात करना अधिक श्रेयस्कर है।

२३. कुशा की नौक पर हिलती हुई ओस की बिंदु के समान मनुष्य का जीवन भी क्षणभगुर एव चचल है—यह जानकर हे गौतम! समय-मात्र के लिए भी प्रमाद मत कर।

२४. जिसने अपना चारित्र खो दिया, उसने सब कुछ खो दिया।

२५ जो धर्माराधन मे अपने जीवन की आहुति देता है, वही अमरत्व को पाता है।

२६. कम खाने से व कम बोलने से कभी नुकसान नही होता।

२७ सुख या आनद बाहर से मिलने की वस्तु नही, वह तो हमारे ही अदर है।

२८ अहकारी, क्रोधी, प्रमादी, रोगी और आलसी को विद्या की प्राप्ति नही हो पाती।

२९. समय बड़ा अनमोल है। करोडो मोहरे खर्चने पर भी बीते हुए समय को नही खरीदा जा सकता।

३०. नरक के बीज बोना और स्वर्ग की आशा रखना, इससे अधिक मूर्खता की निशानी और क्या होगी?

३१ हम जितनी अपनी इच्छाओ को कम करेंगे, उतने ही मोक्ष-गति के समीप पहुच पायेंगे।

३२ चिडियो के पख को सोने से मढ दो, बस, वे फिर कभी आसमान मे नही उड पायेगी।

३३. आदमी की आधी होशियारी उसकी हिम्मत मे है।

३४ किसी दूसरे प्राणी को सताने के बराबर कोई पाप नही ।

३५ एकान्त-वास मूर्ख के लिए जहाँ कैदखाना है, वही ज्ञानी के लिए वह मोक्ष की साधना का साधन है ।

३६, बेईमानी की अमीरी से ईमानदारी की गरीबी अच्छी है ।

३७. धर्म-साधना मे सिद्धि उसी को मिलती है, जो मरणान्त कष्ट आने पर भी अपना निश्चय नही बदलता ।

३८ पाप का प्रारम्भ भले ही प्रात काल की तरह चमकदार क्यो न हो, मगर उसका अत अमावस्या की रात्रि की तरह अधकार-पूर्ण होता है ।

३९ रोग के डर से आदमी खाना तो बद कर देता है पर दण्ड और मरण के भय से वह पाप करना बद नही करता—यह कैसा आश्चर्य है ?

४०. प्रति-वर्ष एक बुरी आदत को जड से खोद कर फेंक दिया जाये तो कुछ वर्षों मे ही बुरा आदमी भला बन सकता है ।

४१. आग सोने की परीक्षा करती है और प्रलोभन सच्चे मनुष्य की ।

४२. ससार मे शाति-पूर्वक रहने का एक ही उपाय है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओ को कम करे ।

४३ सतोष सबसे बडा धन एवं सुख है ।

४४ बहाना झूठ से भी बडा (भयकर) पाप है, क्योकि बहाना सुरक्षित झूठ है, जिसे माया कहते हैं ।

४५ कडवी मजाक दोस्ती के लिए भी जहर-रूप है। जो ज्यादा हसी-मजाक करते है वे आगे होकर दुश्मनी मोल लेते हैं।

४६. मोह की जजीर सिवाय वैराग्य के किसी भी यत्न से नही तोडी जा सकती।

४७. पशु तुम से बोलना नही सीखते परतु तुम उनसे चुप रहना सीख सकते हो।

४८ ससार रूपी गाडी के दो पहिये है—राग और द्वेष।

४९ वाणी से आदमी की औकात और बुद्धि का पता लग जाता है।

५०. मनुष्य अपने मन मे जैसा सोचता है,वैसा ही बनता है।

५१. मौन के वृक्ष पर शाति का फूल लगता है।

५२. सत-मिलन के समान कोई सुख नही।

५३. बातचीत का पहला अग है सत्य, दूसरा समझदारी, तीसरा खुशमिजाजी और चौथा हाजिरजबाबी।

५४. ऐसे व्यक्तियो से बचो, जो धर्म की ऊची बाते करते हैं पर स्वय चरित्र-हीन है।

५५. धैर्य के सामने महान सकट भी धूए के बादलो की तरह उड जाते हैं।

५६. सत्सगति एक पार्श्वमणि-तुल्य है, इससे लोहे जैसा जीवन भी सोने जैसा बन जाता है।

५७. सुख और दु ख—दोनो का असर जिस पर नही होता, वही सच्चा आत्म-साधक है।

५८. जो वासना के प्रवाह को नही तैर पाये है, वे ससार के प्रवाह को नही तैर सकते।

५९ यह समझ लीजिए कि ससार मे अज्ञान तथा मोह ही अहित और दु ख करने वाला है ।

६० मानव ! तू स्वय ही अपना मित्र है । तू बाहर क्यो किसी मित्र की खोज करता है ?

६१. सत्य की साधना करने वाला साधक सब ओर दु खो से घिरा रहकर भी घबराता नही है, विचलित नही होता है ।

६२ धर्म गाँव मे भी हो सकता है और अरण्य (जगल) मे भी; क्योकि वस्तुत धर्म न गाँव मे कही होता है और न अरण्य मे, वह तो अतरात्मा मे होता है ।

६३. साधक न जीने की आकाक्षा करे और न मरने की कामना करे । वह जीवन और मरण दोनो मे ही किसी तरह की आसक्ति न रखे, तटस्थ-भाव से रहे ।

६४. अपने से बडे गुरुजन जब बोलते हो, विचार-चर्चा करते हो, तो उनके बीच मे नही बोलना चाहिये ।

६५. जो अपने पर अनुशासन नही रख सकता, वह दूसरो पर अनुशासन कैसे कर सकता है ?

६६ बुद्धिमान को कभी किसी से कलह-झगडा नही करना चाहिए । कलह से बहुत बडी हानि होती है ।

६७. घाव को अधिक खुजलाना ठीक नही, क्योकि खुजलाने से घाव अधिक फैलता है ।

६८. सुव्रती साधक कम खाये, कम पीए और कम बोले ।

६९ जो अपनी प्रज्ञा के अहकार मे दूसरो की अवज्ञा करता है, वह मूर्खबुद्धि (बालप्रज्ञ) है ।

७० दुष्ट को, मूर्ख को और बहके हुए को प्रतिबोध देना (समझा पाना) बहुत कठिन है ।

७१ साधक को कमलपत्र के समान निर्लेप और आकाश के समान निरवलम्ब होना चाहिये ।

७२ चितन एव मनन से कही हुई बात पर पश्चात्ताप की जरूरत नही होती ।
—(उ श्रमणलाल)

७३ शुभ और अशुभ—दोनो कर्म आत्मा को दु ख देने वाले हैं ।
—(उ. श्रमणलाल)

७४ प्रतिक्रमण मे जो सिद्धि एव चमत्कार है, वह ससार के किसी भी मत्र-तत्र मे नही है, अत· प्रत्येक व्यक्ति को अपने पापो का प्रतिक्रमण करना चाहिये ।
—(उ श्रमणलाल)

७५ एक बार जो व्यक्ति अनुचित कार्य करके जब तक उसका परिमार्जन नही करता, तब तक उसके द्वारा स्वत ही अनुचित कार्य होते रहते हैं। —(उ श्रमणलाल)

७६ लोभी पुरुष जिस प्रकार धन-सग्रह करने मे तत्पर रहता है, उसी प्रकार मुमुक्षु को ज्ञान-सग्रह करने मे तत्पर रहना चाहिए ।

७७ जैसे बिना पुत्र का पालना और बिना वर की बरात शोभा नही देती, उसी प्रकार बिना धर्म का मनुष्य शोभा नही देता ।

७८ जैसे विना मन के मिलना, विना दाँत के चवाना, विना गुरु के पढना और विना यश के जीना निरर्थक है, उसी प्रकार विना भाव के धर्म भी निरर्थक ही है ।

बारह भावना

भावना, चिंतन को कहते है। व्यक्ति की जैसी भावना होती है, जैसा चिंतन होता है, उसी के अनुरूप उसको प्राप्ति होती है। पाप के चिंतन से व्यक्ति जहा ससार मे परिभ्रमण करता रहता है वही धर्म के चिंतन से वह शुद्ध, बुद्ध और मुक्त भी बन जाता है।

मुक्ति सभी चाहते है, बधन कोई नही चाहता। इसीलिए सभी की चाह के अनुरूप ज्ञानी पुरुषो ने उन बारह भावनाओ का वर्णन किया है, जिनसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। वे हैं: (१) अनित्य भावना (२) अशरण भावना (३) ससार भावना (४) एकत्व भावना (५) अन्यत्व भावना (६) अशुचि भावना (७) आस्रव भावना (८) सवर भावना (९) निर्जरा भावना (१०) लोक भावना (११) बोधिदुर्लभ भावना व (१२) धर्म भावना।

१. **अनित्य भावना**—भरत चक्रवर्ती की तरह सासारिक सभी पदार्थों की अनित्यता का चिंतन करना। यथा—

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥

२. **अशरण भावना**—अनाथी मुनि की भांति सासारिक सभी पदार्थों को अशरण-रूप मानना। यथा—

दल-बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती विरिया जीव को, कोई न राखनहार॥

३ **संसार भावना**—धन्ना-शालिभद्र की तरह ससार की असारता का चिंतन करना एव उसे दु.ख-रूप मानना। यथा—

दाम विना निर्धन दुखी, तृष्णा-वश धनवान ।
कहु न सुख ससार मे, सब जग देख्यो छान ।।

४. एकत्व भावना:—नमिराजर्षि की तरह एक आत्मा को ही सुख-दु ख का कर्ता-भोक्ता आदि सब कुछ समझना, अन्य किसी को सहायक नही मानना । यथा —

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यो कबहु या जीव को, साथी-सगो न कोय ।।

५. अन्यत्व भावना—मृगापुत्र की तरह शरीर से आत्मा को अन्य (पर) मानना, आत्मा के अलग अस्तित्व का चिंतन करना । यथा —

जहा देह अपनी नही, तहा न अपनो कोय ।
घर-सपति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन-लोय ।।

६. अशुचि भावना—सनत्कुमार चक्रवर्ती की तरह देह को अशुचि (अपवित्र) मानना । यथा —

दिपै चाम चादर मढी, हाड पीजरा देह ।
भीतर या सम जगत मे, और नही घिन-गेह ।।

७. आस्रव-भावना—समुद्रपाल मुनि की तरह 'अपनी प्रवृत्तियो से ही कर्म अपने मे प्रवेश करते हैं,' ऐसा चिंतन करना । यथा:—

जगवासी घूमे सदा, मोह-नीद के जोर ।
सब लूटे नही दीसता, कर्म-चोर चहुँ ओर ।।

८. संवर-भावना—श्री गौतम स्वामी की तरह आते हुए कर्मो को रोकने का चिंतन करना । यथा.—

मोह-नीद जब उपशमे, सद्गुरु देय जगाय ।
कर्म-चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय ।।

९. निर्जरा-भावना—अर्जुनमाली मुनि की तरह तपादि क्रिया द्वारा कर्मों को क्षय करने का विचार करना । यथा·—

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसे नही, पैठे पूरब चोर ।।
पच महाव्रत सचरण, समिति पच प्रकार ।
प्रबल-पच इद्रिय विजय, धार निर्जरा धार ।।

१०. लोक-भावना—शिवराज ऋषीश्वर की तरह 'चार गति रूप लोक मे कही सुख नही है'—ऐसा चितन करना, लोक के स्वरूप को समझना । यथाः—

चौदह राजु उतग नभ, लोक पुरुष सठान ।
ता मे जीव अनादि ते, भरमत है बिन ज्ञान ।।

११. बोधि-दुर्लभ-भावना—भगवान् आदिनाथ के अठानवे पुत्रो की तरह 'ससार मे सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ है', ऐसा चितन करना । यथा.—

धन-जन-कचन-राजसुख, सबहि सुलभ कर जान ।
दुर्लभ है ससार मे, एक यथारथ ज्ञान ।।

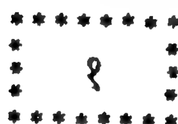
१२. धर्म-भावना—धर्मरुचि अरणगार की तरह धर्म-मार्ग की दुर्लभता पर चितन करना एव धर्म को सर्वोत्कृष्ट सुख-दाता समझना । यथा —

याचे सुर-तरु देय सुख, चितित चिता-रैन ।
बिन याचे बिन चितिये, धर्म सकल सुख देन ।।



स्तवन-विभाग

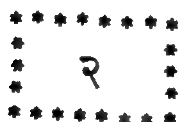
(I) स्तुति



(तर्ज फागण की ऋतु आई रे)

मगल वेला आई रे 'मगल चार मनाओ।
कटे करम की काई रे मगल चार मनाओ ।।
अरिहत मगल, प्रणमो प्रतिपल।
खल जावे विनसाई रे मगल चार मनाओ' ।।
मगल सिद्धा, आतम समृद्धा।
सिद्धि पावे सुखदाई रे मगल चार मनाओ ।।
साधक मगल, करणी उज्ज्वल।
सरलता अपनाई रे 'मगल चार मनाओ ।।
धर्म मगल है, लाभ सकल है।
जीत मिले जग माई रे' मगल चार मनाओ ।।

—उ प्र. श्री लालचदजी म सा.



(तर्ज : फागण की ऋतु आई रे)

मगल मोद मनायें रे होवे आनद अनुपम ।
विघ्न सकल गल जायें रे होवे आनद अनुपम ।।
मगलमय हैं, अरिहत-सिद्ध वर।
सिद्धि-भडार भराये रे होवे आनंद अनुपम ।।

धर्म के धारक, पाप-निवारक।
साधु-पद मन भाये रे होवे आनद अनुपम' '॥
जिन-भाषित शुद्ध, धर्म हमारा।
शिवपुर शीघ्र वराये रे होवे आनद अनुपम' ॥
सघ चतुर्विध, मगलदायक।
पायक सब सुख पाये रे होवे आनद अनुपम ॥

—श्री पार्श्वचद्रजी म सा



सुख-कारण भवियण, सुमरो नित नवकार।
जिन-शासन-आगम, चौदह पूर्व नो सार।
इण मत्र नी महिमा, कहता न लहिये पार।
सुर-तरु-जिम चिंतित, वाछित-फल-दातार॥ १ ॥

सुर-दानव-मानव, सेवा करे कर जोड़।
भूमण्डल विचरे, तारे भवियण कोड़।
सुर छन्दे विलसे, अतिशय जास अनत।
पद पहले नमिये, अरिगजन अरिहत ॥२॥

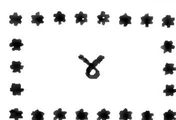
जे पनरे भेदे, सिद्ध थया भगवत।
पचम गति पहुचे, अष्ट कर्म करि अत।
कल-अकल स्वरूपी, पचानन्तक देह।
जिनवर-पद प्रणमू, बीजे पद बलि एह ॥३॥

गच्छ-भार-धुरधर, सुन्दर शशधर शोभ।
कर सारण-वारण, गुण छत्रीसे थोभ।
श्रुतजाण-शिरोमणि, सागर जिम गभीर।
तीजे पद नमिये, आचारज गुणधीर ॥४॥

श्रुतधर गुण-आगर, सूत्र भणावे सार।
तप-विधि-सयोगे, भाखे अर्थ विचार।
मुनिवर गुण-युक्ता, कहिये ते उवझाय।
पद चौथे नमिये, अह-निश तेहना पाय ।।५।।

पंचास्रव टाले, पाले पचाचार।
तपसी गुणधारी, वारे विषय-विकार।
त्रस-थावर-पीहर, लोक माहि जे साध।
त्रिविधे ते प्रणमू, परमारथ जिण लाध ।।६।।

अरि-करि-हरि-सायण, डायण-भूत-वेताल।
सब पाप पणासे, वरते मगल-माल।
इण सुमरथा सकट, दूर टले तत्काल।
इम जपै "जिनप्रभ, सूरी-शिष्य" रसाल ।।७।।



(तर्ज नेमजी की जान वणी भारी')

जपो नवकार मत्र ज्ञाता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता।
भीत-रुज तन मे नही आता, रिपु कोई कर न सके घाता।

क्रोड केवली गुण करे, तो पिण-नावे पार।
महाप्रभाविक मत्र परमेष्ठि, जपता जय-जयकार
मिटावे जनम-मरण खाता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता ।।

प्रथम अरिहत जिन नामे, दोष नहि अष्टादश जामे।
अखिल गुण द्वादश ही पामे, गिरा-गुण पणतीसे तामे।
जघन्य दोय कोड़ केवली, उत्कृष्टा नव मान।

करम घातिया वेद खपावी, पाम्या केवल ज्ञान।
विडौजा चउसठ गुण गाता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता ॥

नमो पद दूजे श्री सिद्धा, ज्ञान-दर्शन करि समृद्धा।
करम वसु हणि वसु गुण लीधा, अत भव-अर्णव का कीधा।
द्रव्य प्राण नही एक भी, भाव प्राण हैं चार।
ज्योति रूप निकलक निरजन, अविनाशी अविकार
ध्यान उर योगीन्दर ध्याता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता ॥

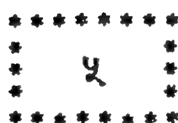
नमो पद आचारज तीजे, सपदा अष्ट देख रीझे।
छत्तीसे गुण गिरवा लीजे, ओपमा सुरतरु की दीजे।
हरि-समान चउ सघ मे, गीतारथ गुण-धाम।
पडित योग अखडित पाले, धर्म जहाज निरयाम ।
सुजस वर लोक मे ख्याता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता ॥

नमो पद चौथे उवझाया, विमल गुण पच्चीसे पाया।
भारती वक्त्र-वास ठाया, मिथ्यादर्शन-सल अगडाया।
भणे-भणावे सूत्र सब, चरण-करण को धार।
डिगता प्राणी धरम सूं स कोई, थिर कर राखणहार
भविक ने बोध-बीज दाता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता ॥

नमो पद पचम उपकारी, साधु गुण सप्तविंश धारी।
अमल चित स्व-जधाचारी, तपोधन घोर ब्रह्मचारी।
नमो ज्ञान-दर्शन भणी, तप चारित्र उदार।
अष्ट सिद्धि नव निधि मगल है, पग-पग मिले अपार
विघन घन मेटण ने वाता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता ॥

भणे जो भव्य शुध भावे, थोक मनवाछित सब पावे।
अंचिती कमला घर आवे, लावणी "किसनलाल" गावे।
सार चतुर्दश पूर्व को, परम मत्र नवकार।

सव मगल मे ध्रुव यह मगल, सकल पाप क्षयकार
सिमरता वरते सुखसाता, स्वर्ग-अपवर्ग-सुख-दाता···॥
—स्व श्री किशनलालजी म



(तर्ज रेशमी सलवार)

मत्र श्री नवकार, महा वलकारी है ।
पूरे एक सौ आठ, गुणो का धारी है ॥

अरिहत सिद्ध आचार्य, उवझाय गुणो के सागर ।
जर-जोरु घर के त्यागी, मुनिवर के चरण-कमल पर ।
मन वलिहारीहै पूरे एक सौ आठ गुणो का धारी है ॥

गुण वारह आठ व छत्ती, फिर पच्ची और सताई ।
ये क्रमश. पाच पदो की, गुण गणना कर वतलाई ।
न्यारी न्यारी है पूरे एक सौ आठ गुणो का धारी है ॥

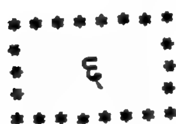
इस मन को शुद्ध वनाकर, जो प्रेम से सुमिरण करता ।
दुख-कष्ट व आधि-व्याधि, इक पल मे सारी हरता ।
मगलकारी है पूरे एक सौ आठ गुणो का धारी है ॥

दिल जिसका पुष्प-सुकोमल, अनुकपा का अनुरागी ।
कर सकता सुमिरण केवल, वही नेक पुरुष वडभागी ।
शुद्धाचारी है पूरे एक सौ आठ गुणो का धारी है ॥

नौ लाख वार जो जपले, ना नरक गति मे जाता ।
सुख स्वर्ग-मुक्ति के अद्भुत, ये भक्तो को दिखलाता ।
शक्ति भारी है पूरे एक सौ आठ गुणो का धारी है"॥

वह श्रावक सेठ सुदर्शन, नवकार का महापुजारी ।
की सूली तुरत सिहासन, यह दग हो गई भारी ।
दुनिया सारी है पूरे एक सौ आठ गुणो का धारी है ॥
अय "चदन" सोमा ने जब, जप हाथ घडे मे डाला ।
इक पल मे ही वह काला, वो फनियर बन गई माला ।
विपद निवारी है पूरे एक सौ आठ गुणो का धारी है ॥

—श्री चदनमुनिजी म 'पजाबी'



(तर्ज हरिगीतिका छद)

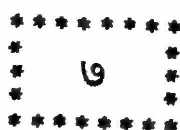
श्री आदिनाथ अजित सभव वदू श्री अभिनदन,
चरण जिनके शीश धर कर करू पल-पल वदनम् ।
सुमतिनाथ श्री पद्मप्रभजी तारण-तिरण सुपासजी,
चद्रप्रभजी को नाम लेता मिटत जम की त्रास जी ॥

सुविधिनाथ श्री देव शीतल श्रेयास त्रिभुवन-ईश जी,
वासुपूज्य जी के चरण मेरा रहो निशदिन शीश जी ।
विमलनाथ श्री अनत धर्म जी को ध्यान निज उर मे धरो,
श्री शाति जिनवर नाम लेता फिरे न चौरासी-फरो ॥

कु थुनाथ अरनाथ जिनवर, मल्ली अशरण-शरण है,
मुनिसुव्रतजी के पडत पावा हटत जामन-मरण है ।
नमिनाथ श्री अरिष्टनेमि पारस पा रस ध्याइये,
श्री वीर जिनवर चरण फरसत निर्भय शिव-सुख पाइये ॥

छोड सकल मिथ्यात्व कुगुरु देव धर्म परीक्षा करो,
श्री देव अरिहत नाम जप-जप मुक्ति-मारग पग धरो ।

सदा जपते होत मगल ये चौबीसो नाम है,
कहत 'ऋषि जय' जाण निहचै महासुखो के धाम हैं ।।



(छद त्रिभगी)

श्री आदि जिनद समरस कद अजित जिनद भज प्राणी ।
सभव जग-त्राता शिवमग-राता दो सुखसाता हित आणी ।
अभिनदन देवा सुमति-सुसेवा करो नितमेवा रिपुघाता ।
चौविस जिनराया मन-वच-काया प्रणमु पाया दो साता ।।

श्री पद्म सुपास ससि-गुणरास सुविधि-सुवास हितकारी ।
श्री शीतल स्वामी अतरजामी शिवगत गामी उपकारी ।
श्रेयास दयाला परम कृपाला भविजन-व्हाला जगदाता ।
चौविस जिनराया मन-वच-काया प्रणमु पाया दो साता ।।

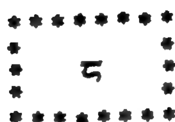
वासुपूज्य सुकंत विमल अनत धर्म श्री सत सतकारी ।
कुथु अरनाथ तज जग-साथ मल्लि सुआथ सग धारी ।
मुनिसुव्रत सुनमि आत्मा ने दमी दुर्मति ने वमी तप-राता ।
चौविस जिनराया मन-वच-काया प्रणमु पाया दो साता ।।

रिष्टनेमि वडाई नारन व्याही तोरण जाइ छटकाई ।
नाग-नागण ताइ दिया वचाइ पारस साइ सुखदाई ।
जय-जय वर्द्धमान गुणनिधि खान त्रिजग-भान शुद्ध आता ।
चौविस जिनराया मन-वच-काया प्रणमु पाया दो साता ।।

ससार का फदा दूर निकदा धर्म का छदा जिन लीना ।
प्रभु केवल पाया धर्म सुनाया भव समझाया मुनि कीना ।

कहे 'रिख तिलोक' सदा तस घोक दो सुख-थोक चित चाता ।
चौविस जिनराया मन-वच-काया प्रणमु पाया दो साता ।।

—श्री तिलोक ऋषिजी म सा



(तर्ज ठाकुर भले विराज्या जी)

साहिब भले विराज्या जी चौबीसे महाराज मुक्ति मे
भले विराज्या जी ।।

ऋषभ अजित सभव अभिनदन, सुमति पदम सुपास ।
चदाप्रभुजी ने सुविधि जिनेश्वर, शीतल दो शिव-वास ।।

श्री श्रेयास वासुपूज्य समरो, विमल विमल-मतिवत ।
अनतनाथ प्रभु धर्म जिनेश्वर, शाति करो श्री सत ।।

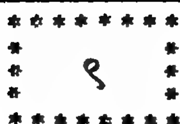
कुथुनाथ प्रभु करुणा-सागर, अरहनाथ जगदीश ।
मल्लिनाथ श्री मुनिसुव्रतजी, नित्य नमाऊ शीश ।।

एकविशमा नमिनाथ निरुपम, रिष्टनेमि जगधार ।
तोरण से प्रभु पाछा फिरिया, शिव-रमणी भरतार ।।

पारस पारस सरिखा प्रभु जी, निरवारस का नाथ ।
वर्धमान शासन का स्वामी, प्रणमू जोडी हाथ ।।

तुम विन पायो दुख अनतो, जनम-मरण-जजाल ।
"तिलोकरिख" कहे जिम-तिम करने,तारो दीन-दयाल ।।

—श्री तिलोक ऋषिजी म. सा



(तर्ज मन डोले, मेरा तन डोले)

सुबह औ शामे, प्रभु के नामे, कर रसना निज सुपवित्र रे
नर-तन का फल पाये ॥
ऋषभ अजित सभव अभिनदन, सुमति पदमप्रभ स्वामी
सुपार्श्व चद्रप्रभ सुविधि जिन है, शीतल अन्तर्यामी, नमो तुम ।
प्रभु श्रेयासा, जिन अवतसा, वासुपूज्य को मित्र रे
तू बनाये सब सुख पाये ॥
विमल अनत धर्म शाति जिन, कुथु अर मल्लीशा
मुनिसुव्रत नमि अरिष्टनेमि, पार्श्व वीर जगदीशा, नमो तुम ।
ये तीर्थंकर, सभी सुखकर, पहुचे मुक्ति विचित्र रे
जो ध्याये वही समाये ॥
मन माने नकली प्रभुओ से, तू नही कभी तिरेगा
खाली बादल गरजेगा पर, वर्षा नही करेगा, कभी वह ।
कागज की कली, आता नही अली, नही निकलता इत्र रे
क्यो नकल मे दिल बहलाये ॥
खुल्ले मुह बोलन की प्रभु ने, की है साफ मनाही
इक-इक अक्षर जीव असख्या, क्यो हणाते हो भाई, अरे तुम ।
मुखपति बाधे, सब सुख साधे, छह काया के पित्र रे
जो दया-धर्म अपनाये ॥
तेईस जनवरी तेसठ दिन को, "अमरणलाल" गुण गाये
गाव मुगेली शुभ दो ठाणे, चद्र गुरु भिजवाये, अरे हाँ ।
नागर सारे, हर्ष अपारे, तम-हर जिन-वच मित्र रे
निज हृदय-कमल विकसाये ॥

—उ प्र. श्री लालचदजी म. सा

१०

श्री नेमीश्वर सभव स्वाम, सुविधि धर्म शाति अभिराम।
अनत सुव्रत नमिनाथ सुजाण,श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

अजितनाथ चदाप्रभु धीर, आदीश्वर सुपार्श्व गभीर।
विमलनाथ विमल-जस जाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

मल्लिनाथ जिन मगल रूप, धनुष पचीस सुदर स्वरूप।
श्री अरनाथ नमू वर्धमान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

सुमति पद्मप्रभ अवतस, वासुपूज्य शीतल श्रेयास।
कुथु पार्श्व अभिनदन भाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

इण परे जिनवर सभार, दुख दारिद्र विघ्न निवार।
पच्चीसे पैसठ परमाण, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

इण भणता दुख नावे कदा, जो निज पासे राखो सदा।
धरिये पच तणू मन ध्यान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

श्री जिनवर नामे वाछित मिले, मन-इच्छित सहु आशा फले।
"धर्मसिह मुनि" नाम निधान, श्री जिनवर मुझ करो कल्याण ।।

११

(तर्ज आरती)

जिन चौबीस जयो अर्हम् जिन चौबीस जयो।
नवग्रह-शाति-विधायक नायक नित्य नयो ।।

रवि सुख दे पद्मप्रभ प्रणमे, चद्र चद्रप्रभ को।
मगल भजलो भव्य भाव से, वासुपूज्य प्रभ को ।।

विमल - अनत-धर्म - शाति जिन, कुथु-अर प्यारे ।
नमि महावीर धीर मन धरलो, बुध सब सुखकारे ॥
ऋषभ-अजित - सभव - अभिनदन, सुमति-सुपासा ।
शीतल और श्रेयास-भजन से, गुरु पूरे आशा ॥
सुविधि-जाप से शुक्र सुखद पुनि, शनि मुनिसुव्रत जो ।
नेमि नमे राहु शुभ प्रगमे, विगमे कर्म रजो ॥
केतु हेतु मल्ली प्रभु पारस, आलस छोड भजो ।
"श्रमणलाल" गुरु-कृपया निशदिन, सुख के साज सजो ॥

—उ. प्र. श्री लालचद जी म. सा.

१२

(तर्ज नाथ कैसे गज को फद ')

पदम प्रभु ! पावन नाम तिहारो पतित उद्धारन-हारो "॥
जदपि धीवर भील कषाई, अति पापिष्ठ जमारो ।
तदपि जीव-हिंसा तज प्रभु भज, पावे भवनिधि पारो '॥
गो-ब्राह्मण-प्रमदा-बालक की, मोटी हत्याचारो ।
तेहनो करणहार प्रभु भजने, होत हत्या सु न्यारो ' ॥
वेश्या-चुगल-छिनार-जुआरी, चोर महा वटमारो ।
जो इत्यादि भजे प्रभु तोने, तो निवृत्ते ससारो ' ॥
पाप-पराल को पुज वण्यो अति, मानो मेरु-आकारो ।
ते तुम नाम हुताशन सेती, सहजे प्रजलत सारो ॥
परम धरम को मरम महारस, सो तुम नाम उचारो ।
या सम मत्र नही कोई दूजो, त्रिभुवन-मोहनगारो' ' ॥

तो सुमिरण बिन इण कलयुग में, अवर न कोई आधारो ।
मैं वारी जाऊ तो सुमिरण पर, दिन-दिन प्रीत वधारो ।।

सुषमा राणी को अगजात तू, श्रीधर राय कुमारो ।
"विनयचद" कहे नाथ निरंजन, जीवन-प्राण हमारो ।।

रविवार —श्रावक विनयचद जी

१३

(तर्ज मन डोले, मेरा तन डोले)

यही इक आशा, वर दो जरा-सा, पद्मप्रभ जिनराज रे
मैं पाऊ तव पद-सेवा ।।

जन-जन्म ले जगत मे मैंने, धन भी खूब कमाया ।
भरे तिजोरी और भी ओरी, फिर भी तृप्ति न पाया अरे हाँ
दूरदुराशा,करके दिलासा,दीजै दया कर आज रे मैं पाऊ ।।

विषय-वासना-वश बस होके, सुख का साज सजाया ।
कमी रखी ना कोई उसमे, तो भी मन न अघाया रे मेरा
अनत आकाशा,सम अभिलाषा,समझा अब यह राज रे मैं पाऊ ।

अमित राज्य का बन अधिकारी, सत्ता बहुत सभाली ।
अत समय मे चला अकेला, देखो हाथो खाली चला मैं ।
अन. विमाशा, बनू न तमाशा,शरण ग्रहू जिनराज रे मैं पाऊ ।

प्रभु-पद-सेवा प्राप्त करन की लगन लगी अब म्हारी ।
कर्म-शत्रु को "जीत-मुनि" बन, जाऊ मोक्ष मझारी मैं तो
मिटे प्रवासा, सुखद सुवासा, ऐसा है शिवराज रे मैं पाऊ ।।

सोमवार —आ प्र श्री जीतमल जी म. सा

विमल - अनत-धर्म - शाति जिन, कु थु-अर प्यारे ।
नमि महावीर धीर मन धरलो, बुध सब सुखकारे ॥

ऋषभ-अजित - सभव - अभिनदन, सुमति-सुपासा ।
शीतल और श्रेयास-भजन से, गुरु पूरे आशा ॥

सुविधि-जाप से शुक्र सुखद पुनि, शनि मुनिसुव्रत जो ।
नेमि नमे राहु शुभ प्रगमे, विगमे कर्म रजो ॥

केतु हेतु मल्लो प्रभु पारस, आलस छोड भजो ।
"श्रमणलाल" गुरु-कृपया निशदिन, सुख के साज सजो ॥

—उ. प्र. श्री लालचद जी म. सा.



(तर्ज · नाथ कैसे गज को फद")

पदम प्रभु ! पावन नाम तिहारो " पतित उद्धारन-हारो ।
जदपि धीवर भील कपाई, अति पापिष्ठ जमारो ।
तदपि जीव-हिसा तज प्रभु भज, पावे भवनिधि पारो ॥

गो-ब्राह्मण-प्रमदा-बालक की, मोटी हत्याचारो ।
तेहनो करणहार प्रभु भजने, होत हत्या सु न्यारो" ॥

वेश्या-चुगल-छिनार-जुआरी, चोर महा वटमारो ।
जो इत्यादि भजे प्रभु तोने, तो निवृत्ते ससारो ॥

पाप-पराल को पुज बण्यो अति, मानो मेरु-आकारो ।
ते तुम नाम हुताशन सेती, सहजे प्रजलत सारो ॥

परम धरम को मरम महारस, सो तुम नाम उचारो ।
या सम मत्र नही कोई दूजो, त्रिभुवन-मोहनगारो " ॥

तो सुमिरण बिन इण कलयुग मे, अवर न कोई आधारो ।
मैं वारी जाऊ तो सुमिरण पर, दिन-दिन प्रीत वधारो ॥

सुषमा राणी को अगजात तू, श्रीधर राय कुमारो ।
"विनयचद" कहे नाथ निरजन, जीवन-प्राण हमारो ॥

रविवार —श्रावक विनयचद जी

१३

(तर्ज मन डोले, मेरा तन डोले)

यही इक आशा, वर दो जरा-सा, पद्मप्रभ जिनराज रे ·
मैं पाऊ तव पद-सेवा ॥

जन-जन्म ले जगत मे मैंने, धन भी खूब कमाया ।
भर तिजोरी और भी ओरी, फिर भी तृप्ति न पाया अरे हाँ
दूरदुराशा,करके दिलासा,दीजै दया कर आज रे मैं पाऊ ॥

िष्य-वासना-वश बस होके, सुख का साज सजाया ।
म्मी रखी ना कोई उसमे, तो भी मन न अघाया रे मेरा
ग्नत आकाशा,सम अभिलाषा,समझा अब यह राज रे ·मैं पाऊ ।

ध्रमित राज्य का बन अधिकारी, सत्ता बहुत सभाली ।
न्न समय मे चला अकेला, देखो हाथो खाली चला मैं ।
ग्र. विमाशा, बनू न तमाशा,शरण ग्रहू जिनराज रे मैं पाऊ ·।

प्रु-पद-सेवा प्राप्त करन की लगन लगी अब म्हारी ।
र्म-शत्रु को "जीत-मुनि" बन, जाऊ मोक्ष मझारी मैं तो ·
टि प्रवासा, सुखद सुवासा, ऐसा है शिवराज रे मैं पाऊ ॥

सवार —आ प्र श्री जीतमल जी म. सा

१४

जय जय जगत-शिरोमणी, हू सेवक ने तू धणी ।
अब तोसूं गाढी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी ॥
मुझ महर करो . चद्रप्रभ जग-जीवन-अतर्यामी ।
भव-दु ख हरो . सुणिये अरज हमारी त्रिभुवन-स्वामी ॥
चन्द्रपुरी नगरी हती, महासेन नामा नरपति ।
राणी श्री लखमा सती, तस नदन तू चढ़ती रती ॥
तू सर्वज्ञ महाज्ञाता, आतम-अनुभव को दाता ।
तू तूठा लहिये साता, धन्य जगत मे तुम ध्याता ॥
शिव-सुख प्रार्थना करसू, उज्ज्वल ध्यान हिये धरसू ।
रसना तुम महिमा करसू, प्रभु इण विध भव-सागर तिरसू ॥
चद्र चकोरन के मन मे, गाज आवाज होवे घन मे ।
प्रिय अभिलाषा त्रिय-तन मे, त्यो वसियो प्रभु मोय चितवन मे ॥
जो शुभ नजर साहब तेरी, तो मानो विनती मेरी ।
काटो करम-भरम-वेरी, प्रभु पुनरपि नहिं करू भव-फेरी ॥
आतम-ज्ञान दशा जागी, प्रभु ! तुम सेती लिव लागी ।
अन्य देव भ्रमणा भागी, "विनयचद" तिहारो अनुरागी ॥
सोमवार —श्रावक विनयचदज

१५

(तर्ज जब तुम्ही चले परदेश)

विश्ववद्य भगवान, चद्रप्रभ-ध्यान,
धरे शिव पावे जो निश-दिन शुध-मन ध्यावे ॥

ससार दु.खो का सागर है ।
जहाँ डूबे प्राणी पामर है ।
जो लेवे तेरा नाम तुरत तिर जावे ॥

जो जनम-मरण की ज्वाला मे ।
पड पचते भव-वन-शाला मे ।
वे लेकर तेरा नाम सुखी बन जावे ॥

तव नाम सदा जयकारी है ।
लगता सबको प्रियकारी है ।
बलिहारी हरबार तुम्हारी जावे ॥

जन्माष्टमी सोम सुहाया है ।
'मुनि जीत' जिनद-गुण गाया है ।
सवत दोय हजार बीस मन भावे ॥
सोमवार, —आ प्र श्री जीतमलजी म.सा.

१६

(तर्ज तेरी फूल सी देह पलक मे)

प्रणमू वासुपूज्य जिन नायक, सदा सहायक तू मेरो ।
विषमी वाट घाट भयथानक, परम सिरे शरणो तेरो ॥

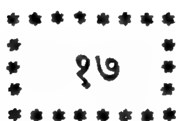
खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण, जो चौ तरफ दिये घेरो ।
तो पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी, अरियन होय प्रगटे चेरो ॥

विकट पहार उजार बीच कोई, चोर कुपात्र करे हेरो ।
तिण बिरिया करिया तो सुमरण, कोई न छीन सके डेरो ॥

राजा बादशाह जो कोई कोपे, अति तकरार करे छेरो ।
तदपि तू अनुकूल होय तो, छिन मे छूट जाय केरो ॥

राक्षस भूत पिशाच डाकिनी, शाकिनी भय न आवे नेरो ।
दृष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे, प्रभु तुम नाम भज्या गहरो ॥
विस्फोटक कुष्टादिक सकट, रोग असाध्य मिटे सगरो ।
विष-प्यालो अमृत होय प्रगमे, जो विश्वास जिनद केरो ॥

मात जया वसु-नृप के नदन, तत्त्व जथारथ बुध प्रेरो ।
बे-कर जोड 'विनयचद" विनवे, वेग मिटे मुझ भव-फेरो ॥
मगलवार —श्रावक विनयचदजी


१७

(तर्ज मन डोले, मेरा तन डोले)

तू भज प्राणी, प्रभु भज प्राणी, वासुपूज्य भगवान रे
तेरे जन्म-मरण मिट जायें ॥

लाख चौरासी योनि मे भटकत, मानव का भव पाया ।
जिन-गुण गाने का अब तेरे,शुभ अवसर यह आया .रे चेतन ।
अरे दिवानी, यह तो जवानी, भजले तज अभिमान रे ॥
भटक रहा है तू तो भोला, भूल भोगो में भाई ।
भोग रोग की खान सदा है, मन को ले समझाई. रे चेतन ।
तुझ हित जानी, कहूँ यह वानी, कर जिनवर-गुणगान रे ॥
दुनिया के इस भूल-भूलैया-भ्रम मे पडे जु आई ।
वडा कठिन है बाहर आना, मार्ग मिले नाभाई रे चेतन ।
सीख सयानी, मन ले मानी, होय सकल दु ख हान रे ॥
सवत दो हजार उगणीसे, नगर कवर्धा आये ।
रात्रि-व्याख्यान मे भौमवार को,जिनवर के गुण गाये. रे चेतन ।
निर्मल ध्यानी, शशि गुरु ज्ञानी, "जीत" धरे नित ध्यान रे ॥
मगलवार —आचार्यप्रवर श्री जीतमलजी म सा.

१८

(तर्ज सुणिये रे वाला कुटिल)

सुज्ञानी जीवा भजले रे जिन इकवीसवाँ ।।
विजयसेन नृप विप्रा राणी, नमीनाथ जिन जायो ।
चौसठ इन्द्र कियो मिल उत्सव, सुर नर आनद पायो रे' ।।
भजन किया भव-भव रा दुष्कृत, दुख-दुर्भाग्य मिट जावे ।
काम-क्रोध-मद-मत्सर-तृष्णा, दुर्मति निकट न आवे रे " ।।
जीवादिक नव तत्त्व हिये घर, हेय ज्ञेय समझीजे ।
तीजो उपादेय ओलख ने, समकित निरमल कीजे रे ' ।।
जीव अजीव बध ये तीनो, ज्ञेय जथारथ जानो ।
पुण्य पाप आस्रव परिहरिये, हेय पदारथ मानो रे ।।
सवर मोक्ष निर्जरा निज गुण, उपादेय आदरिये ।
कारण कारज जाण भली विध, भिन-भिन निरणो करिये रे ।
कारण ज्ञान स्वरूप जीव को, कारज क्रिया पसारो ।
दोनू को साखी शुद्ध अनुभव, आपो खोज तिहारो रे ।।
तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो ।
सच्चिद्-आनद-रूप "विनयचद", परमातम-पद भेटो रे ।।
बुधवार —श्रावक विनयचदजी

१९

(तर्ज प्रभाती)

तू धन-तू धन-तू धन प्रभुजी, शाति जिनेश्वर स्वामी ।
मिरगी मार निवार कियो प्रभु, सर्व भणी सुखगामी ।।

अवतरियो अचलादे - उदरे, माता साता पामी ।
शाति-शाति जगत वरताई, सर्व कहे शिर नामी ॥

तुम प्रसाद जगत सुख पायो, भूले मूढ हरामी ।
कचन डार काच चित देवे, वां री मति मे खामी' ॥

अलख निरजन मुनि-मन-रजन, भय-भजन विश्रामी ।
शिवदायक नायक गुणगायक, पायक है शिवगामी ॥

'रतनचद' प्रभु कुछ नही चाहत, सुनिये अतरजामी ।
तुम रहवा की ठोर दिखादो, या मे सहु भर पामी ॥

बुधवार   –पू. रतनचदजी म. सा.

२०

(तर्ज कोरो काजलियो)

श्री शातिनाथ भगवान् ! अरजी सुन लीजो ।
कर जोड करू गुणगान, अरजी सुन लीजो ॥
थे तो अचिरा दे जी रा लाडला ।
थारो नाम लिया दुख जाय, अरजी सुन लीजो ॥
म्हा ने भवजल पार उतारिये ।
म्हा रे दूजी नही कोई चाय, अरजी सुन लीजो ॥
इन्द्र - चन्द्र - नर - देवता इन्द्र - चन्द्र - नर-देवता ।
थारे लुल-लुल लागे पाय, अरजी सुन लीजो ॥
म्हे तो ओलख लिया आपने ।
म्हाणे दूजो न आवे दाय, अरजी सुन लीजो ॥
स्वामी नाथ-शिष्य "चौथमल्ल" कहे…।
म्हारे शातिनाथ वर दाय, अरजी सुन लीजो ॥

बुधवार   –स्वामी श्री चौथमल्ल जी म.सा.

२१

(तर्ज प्रभाती)

महावीर स्वामी ने सिंवरू, पलक-पलक पल घडी-घड़ी ।
वर्धमान स्वामी ने सिंवरू, पलक-पलक पल घडी-घडी ।।

सिद्धारथ नृप सुदर राणी, त्रिशला रूप परी ।
दशवा स्वर्ग थकी चवि आया, स्वप्नातर से खबर पड़ी ''।।

मधु-मास शुकल-पख तेरस, रजनी मध्य खरी ।
जन्म भयो सुरपति-कर-पुट मे, ले चाल्या प्रभु मेरु गिरी ।।

सब इन्दर सुर अपसर मिलकर, महोछव विविध करी ।
चरण अगुण्ठे मेरु कपायो, महावीर तसु नाम धरी '।।

भर जोबन सुदर सुख भोगव, परिहरि राज-सिरी ।
सजम ले तप कठिन करम हण, केवल ले शिव वेग वरी ।।

महावीर मन माये सिवर्यां, भाजत करम अरी ।
'कुशालचद' कहे शिवपुर आपो,जन्म-मरण-दुख जाय टरी' ।।

बुधवार —स्वामी कुशालचद जी म सा.

२२

जो आनद-मगल चाहो रे, मनाओ महावीर ।।

प्रभु त्रिशला जी के जाया, है कचन वरणी काया ।
ज्या रे चरणां शीश नमाओ रे मनाओ महावीर ' ।।

प्रभु अनत ज्ञान-गुण धारी, ज्या री सूरत मोहनगारी ।
ज्या रा दर्शन कर सुख पाओ रे ..मनाओ महावीर ।।



(तर्ज नर नारायण बन जायेगा)

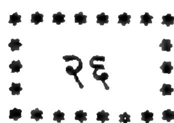
जय बोलो महावीर स्वामी की, घट-घट के अतर्यामी की ॥

जिस जगती का उद्धार किया, जो आया शरण उसे पार किया ।
जिस पीड सुनी हर प्राणी की, जय बोलो महावीर स्वामी की ॥

जो पाप मिटाने आया था, भारत को आन जगाया था ।
उस त्रिशला-नदन ज्ञानी की, जय बोलो महावीर स्वामी की ॥

हो लाख बार प्रणाम तुम्हे, हे वीर प्रभु भगवान् तुम्हे ।
"मुनि दर्शन" मुक्ति-गामी की, जय बोलो महावीर स्वामी की ॥

बुधवार



(तर्ज उमादे भटियाणी)

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमू सिर नामी तुम भणी,
प्रभु अतरजामी आप ।
मो पर म्हेर करीजे हो, मेटीजे चिंता मन तणी,
म्हारा काटो पुराकृत पाप ॥
आदि धरम की कीधी हो, भरतक्षेत्रऽवसर्पिणी काल मे,
प्रभु जुगल्या धर्म निवार ।
पहिला नरवर मुनिवर हो, तीर्थंकर जिन हुआ केवली,
प्रभु तीरथ थाप्या चार ॥

मा मरुदेवी थारी हो, गज होदे मुक्ति पधारिया,
तुम जन्म्या ही परमाण॰॰।
पिता नाभि महाराजा हो, भव देव तणो करी नर थया,
प्रभु पाम्या पद निरवाण॰ ॥
भरतादिक सौ नदन हो, बे पुत्री ब्राह्मी-सु दरी,
प्रभु ए थारा अगजात ।
सघला केवल पाया हो, समाया अविचल जोत मे,
काइ त्रिभुवन मे विख्यात ॥
इत्यादिक बहु तारया हो, जिन कुल मे प्रभु तुम ऊपन्या,
काइ आगम मे अधिकार॰॰॰।
और असख्य तारया हो, उद्धारया सेवक आपरा,
प्रभु शरणा ई आधार ॥
अशरण शरण कहीजे हो, प्रभु विरुद विचारो साहिबा,
काइ अहो गरीब निवाज॰।
शरण तुम्हारी आयो हो, हूँ चाकर जिन चरणा तणो,
म्हारी सुनिये अरज आवाज॰ ॥
तू करुणाकर ठाकुर हो, प्रभु धरम-दिवाकर जग-गुरु,
काइ भव-दु ख दष्कृत टाल॰।
'विनयचद' ने आपो हो, प्रभु निज गुण सपत शाश्वती,
प्रभु दीनानाथ दयाल ॥

गुरुवार —श्रावक विनयचदजी

२७

(तर्ज काफी)

चेतन जाण कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण, मन चचल थिर कर रे॰॰

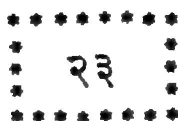
प्रभु जी की मीठी वाणी, है अनत सुखो की खानी ।
थे धार-धार तिर जाओ रे...मनाओ महावीर ॥

ज्या रा शिष्य बडा है नामी, सदा सेवो गौतम स्वामी ।
जो ऋद्धि-सिद्धि थे चावो रे मनाओ महावीर ॥

थारा सर्व विघ्न टल जावे, मन-वाछित सुख प्रगटावे ।
फिर आवागमन मिटाओ रे मनाओ महावीर ॥

है साल गुणियासी भाई, देवास शहर के माही ।
कहे "चौथमल्ल" गुण गाओ रे . मनाओ महावीर ॥

बुधवार —जै. दि श्री चौथमलजी म. सा.



(तर्ज पछी बावरिया)

महावीर मनाओ, रे मेरे सब भाई ॥

कायरता को दूर भगाकर ।
एक चित्त से ध्यान लगाकर ।
मन का बहम मिटाओ, रे मेरे सब भाई ॥

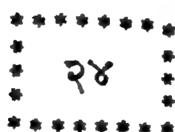
दुनियादारी एक सरा है ।
ना इसमे कुछ सार धरा है ।
काहे यहा ललचाओ, रे मेरे सब भाई ॥

सुख-दुख का यहा लगा है तांता ।
एक है आता एक है जाता ।
क्यो फूलो-कुमलाओ, रे मेरे सब भाई ॥

प्रभु-नाम का पीलो प्याला।
बनाओ जीवन को तुम आला।
किसी से ना घबराओ, रे मेरे सब भाई ॥

मान-गुमान को छोडो प्यारे।
प्रभु मे मन को 'लाल' बना रे।
उसी से शिव-सुख पाओ, रे मेरे सब भाई ॥

बुधवार —उ. प्र. श्री लालचन्द्रजी म. सा.



वीर जिनेश्वर सोई, दुनिया जगाई तूने।
ज्ञान की मधुर सुरीली, वशी बजाई तूने ॥

भारत की नैया डोली, मृत्यु आ शिर पर बोली।
स्वर्ग से आकर भगवन्, पार लगाई तूने ॥

पशुओ पे छुरिया चलती, रक्त की नदिया बहती।
करुणा के सागर करुणा - गगा बहाई तूने ॥

देवो की करना पूजा, काम था और न दूजा।
मानव की अटल प्रतिष्ठा, जग मे जताई तूने ॥

पथो का झूठा झगडा, जनता का मानस बिगडा।
भेद सहिष्णुता की, रखी सच्चाई तूने ॥

पापो का पक धोना, नर से नारायण होना।
"अमर" अमर-पद की, राह दिखाई तूने ॥

बुधवार —उ अमरमुनि जी म.

२५

(तर्ज नर नारायण वन जायेगा ")

जय बोलो महावीर स्वामी की, घट-घट के अतर्यामी की ।।

जिस जगती का उद्धार किया, जो आया शरण उसे पार किया ।
जिस पीड़ सुनी हर प्राणी की,जय बोलो महावीर स्वामी की ।।

जो पाप मिटाने आया था, भारत को आन जगाया था ।
उस त्रिशला-नदन ज्ञानी की, जय बोलो महावीर स्वामी की ।।

हो लाख वार प्रणाम तुम्हे, हे वीर प्रभु भगवान् तुम्हे ।
"मुनि दर्शन" मुक्ति-गामी की, जय बोलो महावीर स्वामी की ।।

बुधवार

२६

(तर्ज उमादे भटियाणी)

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमू सिर नामी तुम भणी,
प्रभु अतरजामी आप ।
मो पर म्हेर करीजे हो, मेटीजे चिंता मन तणी,
म्हारा काटो पुराकृत पाप ।।
आदि धरम की कीधी हो, भरतक्षेत्रऽवसर्पिणी काल मे,
प्रभु जुगल्या धर्म निवार ।
पहिला नरवर मुनिवर हो, तीर्थंकर जिन हुआ केवली,
प्रभु तीरथ थाप्या चार ।।

मा मरुदेवी थारी हो, गज होदे मुक्ति पधारिया,
तुम जन्म्या ही परमाण ।
पिता नाभि महाराजा हो, भव देव तणो करी नर थया,
प्रभु पाम्या पद निरवाण ।।
भरतादिक सौ नदन हो, बे पुत्री ब्राह्मी-सु दरी,
प्रभु ए थारा अगजात ।
सघला केवल पाया हो, समाया अविचल जोत मे,
काइ त्रिभुवन मे विख्यात ।।
इत्यादिक बहु तारया हो, जिन कुल मे प्रभु तुम ऊपन्या,
काइ आगम मे अधिकार ।
और असख्य तारया हो, उद्धारया सेवक आपरा,
प्रभु शरणा ई आधार ।।
अशरण शरण कहीजे हो, प्रभु विरुद विचारो साहिबा,
काइ अहो गरीब निवाज ।
शरण तुम्हारी आयो हो, हूँ चाकर जिन चरणा तणो,
म्हारी सुनिये अरज आवाज ।।
तू करुणाकर ठाकुर हो, प्रभु धरम-दिवाकर जग-गुरु,
काइ भव-दु ख दष्कृत टाल ।
'विनयचद' ने आपो हो, प्रभु निज गुण सपत शाश्वती,
प्रभु दीनानाथ दयाल ।।

गुरुवार —श्रावक विनयचदजी

२७

(तर्ज काफी)

चेतन जाण कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण, मन चचल थिर कर रे ··

श्रेयास जिनद सुमर रे ॥
सास उसास विलास भजन को, दृढ विश्वास पकर रे
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच, सो सुमिरन जिनवर रे ॥
कदर्प क्रोध लोभ मद माया, ये सब ही परिहर रे
सम्यग्-दृष्टि सहज सुख प्रगटे, ज्ञान - दशा अनुसर रे ॥
झूठ प्रपच जोबन तन धन अरु, सजन सनेही घर रे
छिन मे छोड चले पर-भव को, बाध शुभाशुभ थर रे ॥
मानस जनम पदारथ जाकी, आशा करत अमर रे
ते पूरब सुकृत कर पायो, धरम-मरम दिल धर रे ॥
विश्वसेन नृप विष्णा राणी को, नदन तू न विसर रे
सहज मिटे अज्ञान अविद्या, मुक्ति-पथ पग भर रे ॥
तू अविकार विचार आतम-गुण, भ्रम-जजाल न पर रे
पुद्गल-चाह मिटाय "विनयचद", तू जिन ते न अवर रे ॥

गुरुवार —श्रावक विनयचंद जी

****

२८

****

(तर्ज छुप-छुप आते हो)

आदिनाथ भज अब, मनुज तू हो गया ।
सोने का समय तेरा, सोने मे ही खो गया ॥

नाभिराज नृप - सुत, मरुदेवी - लाडले
जप-जप ऋषभ को, जनम सुधारले, जी ।
गये का न सोचकर, धर्म को जो पा गया ॥
आतमा को प्यारे ! भव-सागर मे तारले
ज्ञान की जरा-सी घूट, उर मे उतारले, जी ।
जगत के नाथ जिन-चरणो मे आ गया ॥

छोड मद-मोह-माया, और काम-वासना
ममता के जाल मे तू, मन-मृग फास ना, रे ।
समता का सूर्य शुभ, उदय जो हो गया ॥

परभव जाना पर, भद्रिक परिणाम ले
बार-बार कहे 'मुनि-जीत' कर्म मोक्ष ले, जी ।
पायेगा अनत सुख, दुःख दूर हो गया ॥
गुरुवार —आ प्र. श्री जीतमल जी. म. सा.

२९

काकदी नगरी भली हो, श्री सुग्रीव नृपाल ।
रामा तस पट-रागनी हो, तस सुत परम कृपाल
श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो ॥
त्यागी प्रभुता राज नी हो, लीधो सजम-भार ।
निज आतम-अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार श्री ॥
अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन ।
शुध समकित चारित्र नो हो, परम क्षायक गुण लीन श्री ॥
ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अत ।
ज्ञान-दर्शन-बल ये तिहू हो, प्रकटया अनतानत श्री ॥
अव्याबाध सुख पामिया हो, वेदनी करम खपाय ।
अवगाहना अटल लही हो, आयु क्षय कर जिनराय .श्री ॥
नाम करम नो क्षय करी हो, अमूर्त्तिक कहाय ।
अगुरुलघु-पणो अनुभव्यो हो, गोत्र करम थी मूकाय श्री ॥
अष्ट गुणा कर ओलख्यो हो, ज्योति रूप भगवत ।
"विनयचद" के उर बसो हो, अहोनिश प्रभु पुष्पदत श्री ॥
शुक्रवार —श्रावक विनयचद जी

३०

तुव चरणा चित्त दीनो, सुविधि जिन, तुव चरणा चित्त दीनो ।।
काकदी नगरी निरुपम नीकी, सुग्रीव पति क्षिति नो ।
रामा राणी उदर ऊपन्यो, नदन चढती रती नो ' ।।
काल अनंत विहायो भरम ते, निज कारज नही कीनो ।
पचेंद्रिय विषयन मे राच्यो, पुद्गल के रग भीनो ''' ।।
नरक नीगोद तणा दु.ख दुक्कर, आगम सुनकर व्हीनो ।
पाप पुरातन दूर करण कू, अब तुम शरणो लीनो ।।
कुगुरु कथन हिसा धर्म काने, माने सो मति हीनो ।
मिथ्या भरम मिटावी मन को, झाल्यो मत जिन झीणो ।।
अन्य देव मुझ लगत न आछा, तुम सु चित लय लीनो ।
कवल वसन काच कुण लेवे, छोड जड़ाव जरीनो . ।।
करम कठिन दल तोडन कारण, समकित-रस म्है पीनो ।
"सूर्यमल्ल" कुशलेश कृपा कर, दीनो ज्ञान नगीनो ' ।।
शुक्रवार —स्वामी सूर्यमल्लजी म.

३१

(तर्ज पछी वावरिया ')

सुविधि जिनेश्वर जाप, जपो भवि शुध मन से ।
आत्मार्पण कर आप, प्रीति धरो जिन-पद से ।।
काकदी नगरी के राजा
श्री सुग्रीव पुण्यवली ताजा
रामा राणी नद .सुवंदित सुर-नर से ' ' ।।

घाती - अघाती कर्म नाश कर
केवल दर्शन - ज्ञान प्राप्त कर
पाया अविचल-स्थान मुक्त हुए बधन से ' ॥

सिद्ध-बुद्ध विभु त्रिभुवन-स्वामी
घट-घट के हैं अतर्यामी
भव-ज्वाला करे शात . सुखद है चदन से ॥

प्रभु-सेवा से निर्मल आत्मा
हो जाये, तब वह परमात्मा
रहे न अतर कोई बने फिर जिन जन से .. ॥

जन-जन से रक्षा की सब तुम
आशा करते आये हरदम
जिन-नाम सुरक्षा सांच और क्या बधन से ॥

"जीतमुनि" कहे खजवाणा मे
चलो-चलो अब जिन-आणा मे
सकल मिटे सताप रहो नित आनद से . ॥

शुक्रवार —आचार्य प्रवर श्री जीतमलजी म. सा.

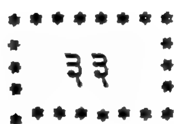
३२

(तर्ज चेतरे चेतरे मानवी)

श्री मुनि सुव्रत साहबा, दीनदयाल देवा तणा देव के ।
तारण-तरण प्रभु मो भणी,उज्ज्वल चित्त सुमरू नितमेव के ॥

हू अपराधी अनादि को, जनम-जनम गुना किया भरपूर के ।
लूटिया प्राण छ काय ना, सेविया पाप अठार करूर के ॥

पूर्व अशुभ कर्त्तव्यता, तेहने प्रभु तुम नाहि विचार के ।
अधम-उधारण विरुद छे, शरण आयो अब कीजिये सार के ॥
किंचित पुण्य-परभाव थी, इण भव ओलख्यो श्री जिन धर्म के ।
निवर्तूं नरक-निगोद थी, एहवो अनुग्रह करो परिब्रह्म के ॥
साधुपणो नहिं सग्रह्यो, श्रावक-व्रत नहिं किया अगीकार के ।
आदरया तो न आराधिया, तेह थी रुलियो हूँ अनत ससार के ॥
अब समकित व्रत आदरयो, तेने आराधी उतरू भव-पार के ।
जनम-जीतव सफलो हुवे, इण पर वीनवू बार हजार के ॥
सुमति नराधिप तुम पिता, घन-घन श्री पदमावती माय के ।
तस सुत त्रिभुवन-तिलक तू, वदत 'विनयचद' सीस नवाय के ॥
शनिवार —श्रावक विनयचद्रजी



(तर्ज पछी वावरिया)

मुनिसुव्रत जिनराज, हृदय ! तू ध्याले रे ।
मोक्ष-नगर का राज, पलक मे पाले रे ॥
वैर-विरोध हुआ हो जिन से
सरल आतमा करके उनसे
समता का सज साज सभी को खमाले रे ॥
पाप लगे जो याद किये जा
मिथ्या दुष्कृत उनका दिये जा
निर्मल होकर आज जिनेश मनाले रे ॥
समकित-रवि का होगा सवेरा
मिट जावे मिथ्यात्व-अधेरा
विमल ज्ञान का आज प्रकाश फैलाले रे ॥

"जीतमुनि" कहे भव-भव-फेरा
मिट जायेगा तव सब तेरा
बैठ धर्म की नाव जिनद-गुण गाले रे ॥
शनिवार —आ. प्र श्री जीतमलजी म सा

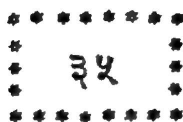
३४

(तर्ज लावणी)

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी
कु भ पिता परभावती मइया, तिनकी कु वारी ॥
मा नी कूख कदरा माही, उपन्या अवतारी ।
मालती कुसुम-मालानी वाछा, जननी उर धारी ॥
तिण थी नाम मल्लि जिन थाप्यो, त्रिभुवन प्रियकारी ।
अद्भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी, वेद धरयो नारी ॥
परणन काज जान सज आये, भूपति छह भारी ।
मिथिला पुरी घेरो चौतरफो, सेना विस्तारी ॥
राजा कु भ प्रकाशी तुम पे, बीतो विधि सारी ।
छहु नृप जान सजी तो परणन, आया अहकारी ॥
श्रीमुख धीरप दिधी पिता ने, राखो हुशियारी ।
पुतली एक रची निज आकृति, थोथो ढकवारो ॥
भोजन सरस भरी सा पुतली, श्री जिन सिणगारी ।
भूपति छह बुलवाया मदिर, बिच बहु दिन टारी ॥
पुतली देख छहुँ नृप मोह्या, अवसर विचारी ।
ढाक उघाड दियो पुतलो को, बभक्यो अन्न-वारी ॥
दुसह दुगन्ध सही ना जावे, उठ्या नृप हारी ।
तब उपदेश दियो श्रीमुख से, मोह-दशा टारी ॥

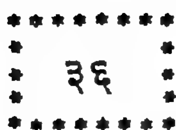
महा असार उदारिक देही, पुतली - इव प्यारी।
सग किया भटके भव-भव मे, नारि नरक-वारी ... ॥
भूपति छह प्रतिबोध मुनि हो, सिद्ध गति सभारी।
"विनयचद" चाहत भव-भव मे, भक्ति प्रभु थारी ॥

शनिवार —श्रावक विनयचदजी



श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे ॥
समुद्रविजय-सुत श्री नेमीश्वर, जादव-कुल को टीको।
रत्न कुक्ष धारिणी शिवादे, तेहनो नदन नीको श्री ... ॥
सुन पुकार पशु की करुणा कर, जानि जगत-सुख फीको।
नव भव नेह तज्यो जोवन मे, उग्रसेन नृप धी को श्री ... ॥
सहस पुरुप सग सजम लीधो, प्रभु जी पर-उपकारी।
धन-धन नेम-राजुल की जोडी, महा वाल-ब्रह्मचारी श्री ... ॥
बोधानद सरूपानद मे, चित्त एकाग्र लगायो।
आतम-अनुभव-दशा अभ्यासी, शुक्लध्यान जिन ध्यायो ... श्री ... ॥
पूर्णानद केवली प्रगटे, परमानद पद पायो।
अष्ट कर्म छेदी अलवेसर, सहजानद समायो श्री ॥
नित्यानद निराश्रय निश्चल, निर्विकार निर्वाणी।
निरातक निरलेप निरामय, निराकार वरनाणी श्री ॥
एवो ज्ञान समाधि सयुत, श्री नेमीश्वर स्वामी।
पूरण कृपा "विनयचद" प्रभु की, अव तो ओलख पामी श्री ॥

शनिवार —श्रावक विनयचद जी



सुगुरु चिंतामणि देव सदा, मुझ सकल मनोरथ पूर मुदा।
कमला कर-दूर न होय कदा, जपता प्रभु पारस नाम जदा।।

जल अनल मतगज भय जावे, अरि चोर निकट पण नही आवे।
सिंह सर्प रोग नहि सतावे, धन-धन प्रभु पारस जिन ध्यावे।।

भल मच्छ-मगर जल माहि भमैं, वडवानल नीर अथाह गमैं।
प्रवहण बैंठा नर पार पमैं, नित जे प्रभु पार्श्व जिनद नमैं।।

विकराल दावानल विश्व दहै, ग्रसती घन ग्रास आकाश ग्रहै।
तुम नाम लिया उपशाति लहै, बन नीर सरोवर जेम बहै।।

झरतो मद लोल कलोल झरै, भ्रमरा गु जारव रोस भरै।
करि दुष्ट भयकर दूर करै, सिरी पारसनाथ जिके सुमरै।।

छाना छल-छिद्र विनाय छलै, जस वास सुणी मन माहि जलै।
ते पिशुन पडे नित पाय तलै, वयरी प्रभु जपता जाय विलै।।

धन देखि निशाचर क्रोड धसै, मुझ मदिर पेश कदे न मुखै।
अति उच्छव तास आवास अखै, परमेश्वर पारस जास पखै।।

असराल विदारण हाथ हटै, गललोल जिहा गज कु भ घटै।
मृगराज महा भय भ्राति मिटै, रसना जिननायक जेह रटै।।

फिरतो चहु फेर फुकार फणी, धरणेंद्र धसै धरि रीस घणी।
भय त्रास न व्यापे तेह भणी, धरता चित पारसनाथ धणी।।

कफ कुष्ट जलोदर रोग कृशै, गड गुबड देह अनेक ग्रसै।
विन भेषज व्याधि सब विनसै, वामा-सुत पारस जे स्तवसै।।

धरणेन्द्र धराधिप सुर ध्यायो, प्रभु पारस-पारस कर पायो।
छवि रूप अनूपम जग छायो, जननी धन वामा सुत जायो।।

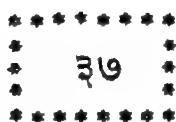
करता जिन जाप सताप कटै, दु ख दारिद दोहग शोक घटै ।
हठ छोड जहा रिपु जोर हटै, पदमावती पार्श्व जहा प्रगटै ।।

मत्राक्षर गाथा गूढ मढ्यो, चितामणि जाणे हाथ चढ्यो ।
वलि मान महातम तेज वढ्यो,प्रभु पार्श्व जिन-स्तव जेह पढ्यो ।।

तीरथ पति पारसनाथ तिलो, भणता जस वास निवास भलो ।
मणि मत्र सकोमल होय मिलो, प्रभु पारस अमची आस फलो ।।

लोका-गच्छ-नायक लाभ लिए, हित क्षेमकरण गुरु नाम हिये ।
दिन-दिन गच्छनायक सौख्य दिये,कीरति प्रभु पार्श्व जिनद किये।।

शनिवार



प्रणमामि सदा प्रभु पार्श्व जिन, जिननायक दायक सौख्य घन ।
घन चारु मनोहर देह धर, धरणीपति नित्य सुसेवकर ।।

करुणा रस रजित भव्य फणी, फणि सप्त सुशोभित मौलिमणी।
मणि कचन रूप त्रिकोट घट, घटिता सुर किन्नर पार्श्व तट ।।

तटिनी पति घोष गभीर स्वर, शरणागत विश्व अशेष नर ।
नर-नारि नमस्कृत नित्य मुदा, पदमावती गावति गीत सदा ।।

सततेंद्रिय गोप यथा कमठ, कमठासुर वारुण मुक्तहठ ।
हठ हेलित कर्म कृतात वल, वलधाम दर दल पक जल ।।

जलज-द्वय पत्र प्रभा नयन, नयनदित भव्य तरी शमन ।
मन्मत्थ महीरुह वह्नि-सम, समता गुण रत्नमय परम ।।

परमार्थ विचार सदा कुशल, कुशल कुरु मे जिन नाथ अल ।
अलिनी नलिनी नल नील तनु , तनुता प्रभु पार्श्वजिन सुधन ।।

सुधन धान्य कर करुणा पर,
परम सिद्धि कर दधता वर ।
वरतर अश्वसेन कुलोद्भव,
भवभृता प्रभु पार्श्वजिन शिव ।।

शनिवार

३८

(तर्ज प्रभाती)

आरति वेग हरो अलवेसर, बडो भरोसो भारी है ।।
इष्ट सयोग भोग मन गमतो, आणी मिले अपारी है ।
तह मन-वच-तन करने ध्यावे, ताकू सौख्य तैयारी है ।।
चिंता हरण, करण सुखसाता, दाता शिव-अधिकारी है ।
ध्याता, पाता है सुख वाछित, इष्टायक जसधारी है ।।
धरणेन्दर पदमावति सोहे, मोहे मनशा हमारी है ।
वेग सहाय करो प्रभु मेरी, अब तो आश तिहारी है ।।
करुणा करने पार उतारो, अगम अतट दुख भारी है ।
सेवक जाण, आण मन माहि, ऐसी अरज गुजारी है ।।
पारस वारस सकल कर्म को, 'नथ' कू आश तिहारी है ।
चित ना चिंतित कारज सारो, चरण-कमल बलिहारी है ।।

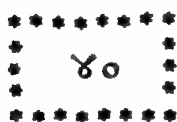
शनिवार —स्वामी श्री नथमलजी म सा

३९

विहरमान वीस नमू ।।
सीमधरजी ने सुमरता, युगन्धर देव ।
बाहुजी स्वामी तीसरा, सुबाहुजी नी सेव ।।

सुजात स्वामी पाचवा, स्वय-प्रभ जाण।
ऋषभानन जी सातवा, अनंतवीर जी बखाण ।।
सूरप्रभ नववा नमूं, दशवा श्री विशाल।
वज्र धर-चद्रानन, हूँ वदू त्रिकाल ।।
चंद्रबाहु स्वामी तेरवा, चवदवा श्री भुजग।
ईश्वर नेमिप्रभ नमू, राता धर्म-सुरग ।।
वीरसेण प्रभु जी सतरवा, महाभद्र जी जाण।
देवयश जी उगणीसवा, अजितवीर जी बखाण ।।
जयवता है जिनवरू, महाविदेह क्षेत्र मझार।
ऋषि 'जयमल' इम वीनवे, उतारो भव-पार ।।

—आचार्य-प्रवर श्री जयमलजी म. सा.

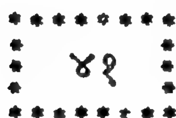


४०

श्री इद्रभूति जी को लीजे नाम, तो मन-वाछित सीझै काम।
मोटा लब्धि तणा भण्डार, वदू इग्यारह गणधार ।।
अग्निभूति गौतम जी का भाई, वीरजी ने दीठा समता आई।
ऋद्धि त्याग लियो सजम-भार, वदू इग्यारह गणधार ।।
वायुभूति मोटा मुनिराय, ये तीनो ही सगा भाय।
पाच-पाच सौ निकल्या लार, वदू इग्यारह गणधार ।।
विगतस्वामी जी चौथा जाण, भजन किया मिले अमर-विमाण।
देवलोके सुख रा भणाकार, वंदू इग्यारह गणधार ।।
स्वामी सुधर्मा वीर जो रे पाट, जन्म-मरण सेवक ना काट।
मुझ ने आप तणो आधार, वदू इग्यारह गणधार ।।
मडीपुत्र ने मौर्यपूत, मुक्ति जावण रो कर दियो सूत।
त्रिविधे त्याग्या पाप अठार, वदू इग्यारह गणधार ।।

अकंपित ने अचलभ्रात, वीर जी रे वचने रह्याऽनुरात ।
चवदह पूरब ना भडार, वदूं इग्यारह गणधार ।।
मेतारज ने श्री प्रभास, मोक्षनगर मे कर दियो वास ।
जपता होवे जय-जयकार, वदू इग्यारह गणधार ।।
ये इग्यारह उत्तम जात, चम्मालीस सौ निकल्या साथ ।
ज्या कर दीनो खेवो पार, वदू इग्यारह गणधार ।।
इण नामे सहू आशा फले, दोषी दुश्मन दूरा टले ।
ऋद्धि-वृद्धि पामे सुख सार, वदू इग्यारह गणधार ।।
इण नामे सब नाशे पाप, नित रो जपिये भविजन जाप ।
चित चोखा हृदय मे धार, वदू इग्यारह गणधार ।।
सवत् अठारह(सौ)तियालिस जाण,पूज्य जयमलजी री अमृतवाण।
चौमासे स्तवन कियो पीपाड, वदू इग्यारह गणधार ।।
आषाढ सुदि सातम रे दिन, गणधर जी ने गाया इक मन ।
"आशकरण" पभणे अणगार, वदू इग्यारह गणधार ।।

—पूज्य आशकरण जी म. सा.



शीतल जिनवर करू प्रणाम, सोलह सती रा लेसूँ नाम ।
ब्राह्मी चदना राजमती, द्रौपदी कौशल्या मृगावती ।।१।।
सुलसा सीता सुभद्रा जाण, शिवा कुती शीलगुण-खाण ।
नल-धरणी दमयती सती, चेलणा प्रभावती पद्मावती ।।२।।
शील-गुणे सुहावे सिरी, ऋषभदेव नी धिया सुदरी ।
सोलह सतिया शील-गुण भरी,भवियण प्रणमो भावे करी ।।३।।

ये सुमरचा सब सकट टले, मन-चिंतित मनोरथ फले।
इण नामे सब सीझे काज, लहिये मुक्तिपुरी नो राज ॥४॥
भूत-प्रेत इण नामे टले, ऋद्धि-सिद्धि घर आई मिले।
इण नामे सहू होय जगीश, ये सतिया सुमरो निश-दीश ॥५॥



(तर्ज प्रभाती)

आनद-मगल करू आरती, सत-चरण की सेवा।
शिव-सुख-कारण विघ्न-निवारण, पच परमेष्ठि देवा ॥
पहली आरती अरिहत देवा, कर्म खपे तत्खेवा।
चौसठ इद्र करे तुम सेवा, वाणी अमृत-मेवा ॥
बीजी आरती सिद्ध निरजन, भजन भव-भय केरा।
चिदानद चिद्रूप अखडित, मिटे भवोभव फेरा ॥
त्रीजी आरती श्री आचारज, छत्रीस गुण गभीरा।
सघ-शिरोमणि सोहे दिनमणि, दे हित-बोध घनेरा ॥
चौथी आरती उपाध्याय जी, भणे-भणावे एवा।
सूत्र-अर्थ करे तत्खेवा, सेवा करे तस देवा ॥
पाचवी आरती सर्व साधुजी, भारड पखी जेवा।
महाव्रत पाले दूषण टाले, अविचल शिव-सुख लेवा ॥
भाव धरी ने गावे आरती, पच परमेष्ठि देवा।
"विनयचद" मुनि-गुण गावे, लेवा शिव-सुख-मेवा ॥

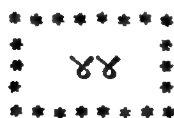
—श्रावक विनयचदजी



(तर्ज आसावरी)

जय जय जय जयकार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।
जय जय भविजन-बोध-विधाता,जय जय आतम-शुद्धि-विधाता ।
जय भव-भजन-हार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।
जब सब सकट चूरण-कर्त्ता, जय सब आशा पूरण-कर्त्ता ।
जय जग-मगलकार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।
तेरा जाप जिन्होने कीना, परमानद उन्होने लीना ।
कर गये खेवा पार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।
लीना शरण सेठ सुदर्शन, सूली से बन गया सिंहासन ।
जय जय करे नर-नार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।
द्रौपदी-चीर सभा मे हरना, तब तेरा ही लीना शरना ।
बढ गया चीर अपार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।
सोमा ने तुम सुमिरन कीना, सर्प फूल-माला कर दीना ।
वरते मगलाचार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।
"अमर" शरण मे सप्रति आया, कर्मो के दु ख से घबराया ।
शीघ्र करो उद्धार, परमेष्ठी ! जय जय जय जयकार ।।

—उ अमरमुनि जी म.

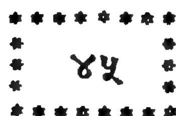


(तर्ज पछो वावरिया)

कर मन-वच शुध काय, मनाये अरिहत जी ।
दोष अठारह दूर, किये जो जिनवर जी ।।

मोह-मिथ्यात्व अज्ञान मिटाकर
माया-क्रोध रु लोभ हटाकर
पाया पद अरिहत मनाये अरिहत जी ॥
निद्रा- मद - रति - अरति-कर्म को
शोक - अलीक - अदत्त - कर्म को
तजकर बने जिनेंद्र मनायें अरिहत जी ॥
हिंसा-मत्सर-भीति त्याग कर
हास्य-क्रीडा अरु प्रेम छाड कर
हुए परातमा शुद्ध. मनाये अरिहत जी ॥
ऐसे अरिहत जी के गुण को
गाए, पाए मोक्ष-नगर को
"जीत" सदा पद वद मनायें अरिहत जी ॥

—आ.प्र. श्री जीतमलजी म.सा.



मनाऊ मैं तो श्री अरिहत महत ॥
तरु अशोक जाको अवलोकत, शोक-समूह नशत ।
सुर-कृत बाण वरण के नभ से, अचित सुमन वरसत ॥
अर्धमागधी वाणी जाकी, योजन इक पर्यंत ।
सुनत अमर-नर-पशु हिलमिल के, समझ सुबोध लहत ॥
मुनि-मन-सम-सित चमर-अमर-गण, प्रमुदित ह्वै ढारत ।
स्फटिक रत्न के सिंहासन पर, त्रिजग-पति राजत ॥
प्रभावलय तम प्रलय करन हित, दिनकर-सम दमकत ।
पृष्ठ भाग रहि प्रभुजी के सो, प्रबल प्रकाश करत ॥

गगन माहि घन-गर्जारव-सम, दुदुभि शब्द वजत ।
तीन छत्र सिर सोहे ताते, तू त्रिभुवन को कत ।।
तुम सुमिरे सुख सपति पावे, सुर-नर पद प्रणमत ।
अष्ट सिद्धि नव निधि घर प्रकटे, तेरो जाप जपत ।।
"माधवमुनि" कर जोड वीनवे, विनय सुनो भगवत ।
ऋद्धि-वृद्धि-वुध-वैभव देवो, अरु सुख सादि अनत ।।

—श्री माधवमुनि जी म.

४६

तुम तरण-तारण दुख-निवारण, भविक-जीव-आराधन ।
श्री नाभिनदन जगत-वदन, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।१।।
जगत - भूषण विगत - दूषण, प्रणव - प्राण-निरूपक ।
ध्यान-रूप अनूप उपम, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।२।।
गगन - मडल मुक्ति - पदवी, सर्व - ऊर्ध्व-निवासन ।
ज्ञान-ज्योति अनत राजे, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।३।।
अज्ञान - निद्रा विगत - वेदन, दलित-मोह निरायुष ।
नाम - गोत्र - निरन्तराय, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।४।।
विकट - क्रोधा मान - योधा, माया - लोभ - विसर्जन ।
राग-द्वेष - विमर्द - अकुर, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।५।।
विमल-केवल-ज्ञान-लोचन, ध्यान - शुक्ल - समीरित ।
योगिनामतिगम्य रूप, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।६।।
योग ने समोसरण - मुद्रा, परिपल्यक - आसन ।
सर्व दीसे तेज-रूप, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।७।।

जगत जिनके दास-दासी, तास श्रास-निरासन ।
चद्र पै परमानद-रूप, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।८।।

स्व-समय-समकित-दृष्टि जिनकी, सो य योगी श्रयोगिक ।
देख तामा लीन होवे, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।६।।

चद्र - सूर्य - दीप - मणि की, ज्योति येन उलघित ।
ते ज्योति थी श्रपरम ज्योति, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।१०।।

तीर्थ-सिद्धा श्रतीर्थ-सिद्धा, भेद पच-दशाधिक ।
सर्व - कर्म - विमुक्त-चेतन, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।११।।

एक मा ही श्रनेक राजे, श्रनेक मा ही एकक ।
एक, श्रनेक की नाही सख्या, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।१२।।

श्रजर - श्रमर - श्रलख - श्रनत, निराकार - निरञ्जनम् ।
परब्रह्म ज्ञान श्रनत दर्शन, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।१३।।

श्रतुल-सुख की लहर मे प्रभु, लीन रहे निरतर ।
धर्म-ध्यान थी सिद्ध-दर्शन, नमो सिद्ध निरञ्जनम् ।।१४।।

ध्यान - धूप मन - पुष्प, पचेंद्रिय - हुताशन ।
क्षमा जाप सतोष पूजा, पूजो देव निरञ्जनम् ।।१५।।

तुम मुक्ति-दाता कर्म-घाता, दीन जानि दया करो ।
सिद्धार्थ-नदन जगत-वदन, महावीर जिनेश्वरम् ।।१६।।



सेवो सिद्ध सदा जयकार, जासे होवे मगलाचार ।।

श्रज श्रविनाशी श्रगम श्रगोचर, श्रमल श्रचल श्रविकार ।
श्रतर्यामी त्रिभुवन - स्वामी, श्रमित शक्ति - भडार ।।

कर पणट्ठ कमट्ठ अट्ठ गुण, युक्त मुक्त ससार।
पायो पद परमेष्ठी तास पद, वदू बारबार ॥

सिद्ध प्रभु को सुमिरन जग मे, सकल सिद्धि-दातार।
मनवाछित पूरण सुर-तरु-सम, चिंता चूरणहार ॥

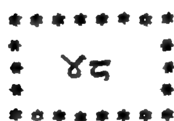
जपे जाप योगीश रात-दिन, ध्यावे हृदय मझार।
तीर्थंकर हु प्रणमे उनको, जब होवे अणगार ॥

सूर्य-उदय के समय भक्तियुत, स्थिर चित्त दृढता धार।
जपे सिद्ध यह जाप तास घर, होवे ऋद्धि अपार ॥

सिद्ध-स्तुति यह पढे भाव से, प्रतिदिन जो नर-नार।
सो दिव-शिव-सुख पावे निश्चय, बना रहे सरदार ॥

'माधवमुनि' कहे सकल सघ मे, बढे हमेशा प्यार।
विद्या-विनय-विवेक समन्वित, पावे प्रचुर प्रचार ॥

—श्री माधवमुनिजी म सा.



(तर्ज आरती)

नमो आयरियाण, प्रतिदिन, नमो आयरियाण।
भविक-विकासन शासन-भासन, दिनकर सम जाण ॥

कामादिक रिपुओ पर की 'जय-मल्ल' समान बली।
पचाचार परायण प्रभु की, पदवी प्राप्त भली ॥

श्रमण-सघ के 'राय चद्र'-सम, उडु मुनि परिवारी।
पच महाव्रत शुद्ध आराधक, भवजल-निधि तारी ॥

मुक्ति प्रयास 'आश करण' के, पूरक पुण्य धनी ।
इद्रिय पच-अवचित विजयी, शुभतम है करनी ॥

अन्यमती कृत आक्षेपो को, 'सबल' हो तुम हरने ।
चार कषाय मिटाय भव्य मे, समता-रस भरने ॥

श्रावक श्राविका हृदय घरे निज, 'हीरा' अनमूला ।
नवविध ब्रह्मचर्य के धर्ता, सब के अनुकूला ॥

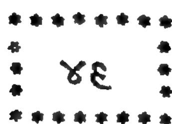
जस-कीर्ति 'कस्तूरि' जैसी, दिश - दिश मे महके ।
पाच समितिया जीवन उपवन, चिड़िया ज्यो चहके ॥

त्याग विरती पचखान आपके, 'भीषम' व्रत मानु ।
तीन गुप्तिया गुप्त गुणो का, प्रकटावत भानु ॥

सब इद्रिय मे प्रमुख आप हो, 'कान' समान प्रभो ।
जग मे रहकर जगत-विमुख हो, गुण छत्तीस विभो ॥

यत्र तत्र सर्वत्र 'जीत' की, ध्वनि गुजा देता ।
"अमणलाल" निहाल हो रहा, पा तुम-से नेता ॥

—उ प्र. श्री लालचदजी म. सा



(तर्ज -दयामय, ऐसी मति होजाय)

नमो उवज्झायाण घर ध्यान ॥

सागोपाग स्वमत-परमत के, आगम अवगत कीन ।
चरण-करण की दोनो सित्तरी, यथायोग्य धर लीन ।
सघ मे, जिनका अप्रतिम ज्ञान …नमो ॥

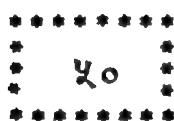
प्रथम जीत के प्रतिवादी को, जिनशासन जयवत ।
प्यार अपार सभी से रखके, देते ज्ञान अत्यत ।
छाई है, सब जग मे महिमान 'नमो ' ।।

अमर सुयश है आज उन्ही का, बहुत सराहत लोग ।
वस्तु-तत्त्व निरूपण शैली, देश-काल के योग ।
जला ही, करते ईर्ष्यावान ' नमो ।।

गधहस्ति-सम अद्‌भुत प्रतिभा, रतन किरण साक्षात ।
आकर्षित करके करते है, जिनवाणी-वरषात ।
विविधता, पूरित है व्याख्यान ' नमो ' ।।

नाना कुमत दलन समर्थ है, पद चतुर्थ विराज ।
"श्रमणलाल" ये आगम-सेवक, सर्व सुधारे काज ।
समुन्नत, होता सघ महान नमो ' ।।

—उपाध्याय-प्रवर श्री लालचद जी म



(तर्ज सदा याद अर्हं)

सदा सयमी विश्व के वदनीय ।
सभी भाति हैं सर्व सम्माननीय ।।

हैं इद्रिय सभी निर्विकारी स्व-वश मे ।
है मन भी अहो ! मग्न परमात्म-रस मे ।
सुपथ पर ही चलते, अत. दर्शनीय ।।

न परवाह जिनको किसी आदमी की ।।
न तन की न धन की न मन की जमी की ।
इसी से हैं प्रत्येक के प्रार्थनीय ।।

विषय-वासना की तजो अब गुलामी ।
बनो मत मिथ्यात्वी कुमत के ही हामी ।
यह उपदेश जिनका है वहु चिंतनीय ॥

जिन्होने है मोक्षार्थ कामार्थ छोडा ।
सुधर्माचरण से ही नाता है जोडा ।
तन-मन-वचन से है जो श्लाघनीय ॥

सताती जिन्हे ना कभी आधि-व्याधि ।
समाधि की उन्नत अवस्था जो साधी ।
"श्रमण-लाल" का हाल आनदनीय "॥

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म. सा.

५१

(तर्ज उठ भोर भई टुक जाग मही)

सुख-शाति का डका त्रिभुवन मे, वजवा दिया गुरु निर्ग्रन्थो ने ॥
चचल लक्ष्मी चचल आयुष, चचल जीवन चंचल यौवन ।
इक धर्म अचल जगती-तल मे, फरमा दिया गुरु निर्ग्रन्थो ने ॥

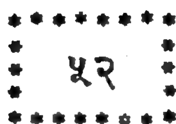
जग बीच कमल दल जल सम सब, रहना सीखो अय भवि प्राणी ।
अनुभव-अमृत-रस यह हमको, पिलवा दिया गुरु निर्ग्रन्थो ने ॥

इन बाह्य वस्तुओ पर प्यारो, अपनी ममता सब दूर करो ।
हम कौन ? हमारा यहाँ कौन ?,सिखला दिया गुरु निर्ग्रन्थो ने ॥

ये रूपी-रूपी है सारे, कोई न हमारे हैं साथी ।
इनसे हम भिन्न अरूपी हैं, वतला दिया गुरु निर्ग्रन्थो ने ॥
स्वाभाविक निर्मल सुखमय यह, निज-रूप कर्म ने दबा लिया ।
इस अनादि-वधन को क्षरण मे, तुड़वा दिया गुरु निर्ग्रन्थो ने ॥

उनकी सुदया से "सूर्यभानु", कुछ आत्म-तत्त्व का भान हुआ ।
मृग ने समझा कस्तूरी को, समझा दिया गुरु निर्ग्रंथो ने ।।

—श्री सूरजचद्र डागी 'सत्यप्रेमी'



(तर्ज नर नारायण बन)

जय-जय हो भूधर गुरुवर की,
उस शिष्य-वर्ग सुखकर की ।।

जो स्वय तपस्वी पूरे थे ।
नही चेले रहे अधूरे थे ।
तब शोभा थी सब मरुधर की ।।

प्रतिबोधित नारायण पण्डित ।
कालू आनदपुर आनदित ।
रुचि विकसित की शिव शकर की ।।

रघुपति का मन-विक्षेप मिटा ।
सच्चा अमरत्व दिमाग बिठा ।
दी उपमा जिन रत्नाकर की ।।

इन्हे देख जेतसी चेते थे ।
शुभ साज नित्य ही देते थे ।
निभी प्रीति हरि-हलधर की ।।

थे चौथे चेले जयमल जी ।
सब जपते जिनको पल-पल जी ।
है कीरति कुशल कलाधर की ।।

थे लघुतम शिष्य श्री कुशलो जी ।
वे महावीर के थे फौजी ।
लो देख छटा सब गजवर की ॥

जय 'श्रमरण लाल' गुरण गाता है ।
वरते सब ही सुखसाता है ।
सब उपकृति गुरु वख्तावर की ॥

—उ प्र श्री लालचद जी म सा.

५३

पूज्य जयमल जी हुग्रा ग्रवतारी,ज्यारा नाम तरणी महिमा भारी ।
कष्ट टले मिटे ताव तपो, पूज्य जयमलजी रो जाप जपो ॥

पूज्य नामे सब कष्ट टले, वलि भूत-प्रेत पिरण नाय छले ।
मिले न चोर हुवे गुप छुपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो ॥

लक्ष्मी दिन-दिन वढ जावे, वलि दुख नेड़ो तो नहिं ग्रावे ।
व्यापार मे होवे वहुत नफो, पूज्य जलमल जी रो जाप जपो ॥

ग्रडचो काम तो हो जावे, वलि विगडचो काम भी वरण जावे ।
भूल-चूक नहिं खाय डफो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो ॥

राज-काज मे तेज रहे, वलि खमा-खमा सब लोक कहे ।
ग्राछो जागा जाय रूपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो ॥

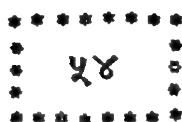
पूज्य नाम तरणो जो लियो ग्रोटो, ज्यारे कदे नहिं ग्रावे टोटो ।
घर-घर वारणे काय तपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो ॥

एक माला नित नेम रखो, किरणी बात तरणो नहिं होय घखो ।
खाली विमारण ग्ररु टलेजी सपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो ॥

स्वभक्त तणी प्रतिपाल करे, 'मुनिराम' सदा तुम ध्यान धरे।
कोई परतिख बात मतो उथपो, पूज्य जयमलजी रो जाप जपो ।।

पूज्य नाम प्रताप इसो जबरो, दुख-कष्ट-रोग जावे सगरो।
केई भवांरा कर्म खपो, पूज्य जयमल जी रो जाप जपो ।।

—पू. रामचद्र जी म सा



(तर्ज : मोहन मुरली वाले)

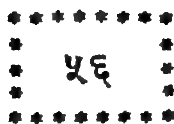
जयमल पूज्य पियारे, तेने किया है कल्याण ।।
मरुधरा मन मोहनकारी ।
गाव 'लाबिया' है सुखकारी ।
जन्मभूमि सुख-खान, तेने किया है कल्याण ।।
समदडिया वशे अवतस ।
मोहनदास सुमानस हस ।
'महिमा दे' मा जान, तेने किया है कल्याण ।।
'रिडमल' के तुम छोटे भाई ।
जयमल नाम सदा सुखदाई ।
प्यारे पुण्य-निधान, तेने किया है कल्याण ।।
'लाछाँ-दे' ललना को छोडी ।
दुनिया से निज ममता मोडी ।
गुरु भूधर गुणवान, तेने किया है कल्याण ।।
उनका नाम जपो सब कोई ।
मिट जाये जग की यह दोई ।
करे 'लाल' गुणगान, तेने किया है कल्याण ।।

—उ. प्र. श्री लालचद जी म. सा.



नाम जपवा दे जयमल जी को,
म्हने इणमे ही आनद आवे, मनड़ा ॥
भोग भोगू तो भोगी बाजू
म्हारो नर-भव विरथा जावे, मनड़ा ॥
मान करू तो कोई काल मैं
ओ मान अपमान करावे, मनड़ा ॥
नेह न चाहू किणरो ही मे
ओ नेही छेह दिखावे, मनड़ा ॥
मिलणा मे सुख दुनिया माने
वो तो बिछुडण दु.ख बतावे, मनड़ा ॥
'लालमुनि' ने तो रात-दिवस एक
इणरो ही नाम सुहावे, मनडा ॥

—उ. प्र. श्री लालचद जी म. सा.



(तर्ज उठ भोर भई टुक जग सही)

सव श्रावक-गरण हिल-मिल करके,जय बोलो पूज्य जयमलजी की ।
मन मोद करी कीर्ति-कमला, अपनाओ पूज्य जयमल जी की ॥
महिमा मही-मडल मे महकी, उनके अनुपम गुण-कुमुमो की ।
भारत के कोने-कोने मे, जय जय है पूज्य जयमल जी की ॥
गुरुवर भूधर के बुद्धिमान, पूज्य पदवी-धारक शिष्य हुए ।
उत्कृष्ट धारणा-शक्ति थी, प्यारे उन पूज्य जयमल जी की ॥

पीपाड पधारे थे गुरु-सग, मुनिपन को वहां पर सिद्ध किया ।
पोत्याबध ने भी बोली थी, जय-जय हो पूज्य जयमल जी की ।।

जब बीकानेर पधारे तो, यतियो ने अति उपसर्ग किया ।
फिर भी तप-बल से विजय हुई, प्यारे श्री पूज्य जयमल जी की ।।

निज जन्मभूमि हरिपुर मे, 'मुनि लालचद्र' गुणगान करे ।
महावीर-सी श्रद्धा है मेरे, मन मे श्री पूज्य जयमल जी की ।।

—उ प्र. श्री लालचदजी म. सा.



(तर्ज : जय बोलो महावीर स्वामी की)

जय बोलो उस श्रुत-सागर की, स्वामि चौथ शाँति सुधाकर की ।

माता 'कुवरा' के जाये है, 'हरिचद' के लाल कहाये हैं ।
उस जाट - वश - दिवाकर की जय बोलो ।।

बचपन मे सयम धार लिया, जिन-शास्त्रो का अभ्यास किया ।
हुई महर स्वामी 'नथ' गुरुवर की जय बोलो ।।

आगम के पूरे ज्ञाता थे, वाणी से देते साता थे ।
उपदेशक अमृत जलधर की जय बोलो ।।

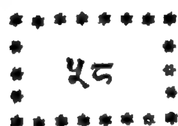
दर्शन से पातक जाता था, जन अपना दु ख मिटाता था ।
पदवी थी आशु-कवीश्वर की जय बोलो ।।

सहन-शक्ति थी हद भारी, आश्चर्य करे जनता सारी ।
उपमा हो मानो वसुधर की जय बोलो ।।

जब देखा तब खुश था मुखडा, नहिं किसी परिस्थिति मे उखडा ।
सज्जन-मन मान-सरोवर की जय बोलो ।।

स्वमुख से था सथार किया, निज-पर का भी उद्धार किया ।
तिथि तेरह स्पर्श निशाकर की जय बोलो ॥
जिन-धर्म दिपा भूमण्डल मे, फिर पहुचे तुम सुर-मडल मे ।
यश-सौरभ है कुसुमाकर की जय बोलो ॥
"शुभ" सदा भावना शुभ भावे, गुण-गण से आतम सरसावे ।
स्तुति करू सदैव सुखकर की जय बोलो ॥

—स्वामी श्री शुभचदजी म. सा.



(तर्ज सेवो सिद्ध सदा जयकार)

गुरुवर चादमल्ल महाराज, आपकी महिमा अपरपार ।
महिमा अपरपार, आपका, यश है अपरपार ॥

पिता आपके 'जगाराम' जी, मा 'पारी' के लाल ।
'फूल-माली' घर जन्म लियो है, देखो पुण्यवंत बाल ॥

दश वर्ष घर अदर रहकर, आयो मन वैराग ।
निर्वेद-भावना आई मन मे, छोड्यो सब से राग ॥

पूज्य श्री जयमल-समुदायी, 'नथमलजी' गुरु-नाम ।
विचरत-विचरत आप पधारे, 'पीपलिया' शुभ ग्राम ॥

दो वर्ष गुरु-सग मे रहकर, कीना ज्ञान-अभ्यास ।
फिर जल्दी से सयम लेकर, पूरी मन की आस ॥

'उन्नीस सौ पैसठ' सवत मे, चैत्र पूर्णिमा खास ।
'रायपूर' मे दीक्षा लीनी, गुरु नथमल जी पास ॥

ज्ञान-ध्यान में समय विताते, रह प्रमाद से दूर ।
वैठ एक आसन से केई, लिखे शास्त्र भरपूर ॥

अक्षर आपके इतने सुदर, देखत मन हरसत ।
कठ - कला और वाणी मधुर थी, सुनकर सब सरसत ॥

मरु - मेवाड - महाराष्ट्र पधारे, गुर्जर मध्यप्रदेश ।
भक्तजनो का मान निवेदन, फरसा आध्रप्रदेश ॥

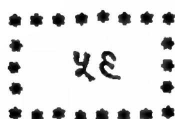
प्रात दक्षिण से वापिस बबई, आये गुरुवर 'चद' ।
'विलेपारले' का चौमासा, बीत रहा सानद ॥

तीन मास के बाद अचानक, दु ख मे बदला हास ।
कार्तिक सुद आठम को सिधारे, यश की छोड सुवास ॥

दे उपदेश आपने मुझ पर, किया अमिट उपकार ।
याद आती है घडिया वे सब, जीवन मे कई बार ॥

शात-सरल और धीर-वीर थे, गुरुवर गुण-आगार ।
शिष्य आपका "शुभ" कहता है, वदन हो शतवार ॥

—स्वामी श्री शुभचद जी म. सा.



(तर्ज जय बोलो महावीर स्वामी की)

जय जीत मुनि, जय लाल मुनि, आचार्य-प्रवर ये ज्ञान धनी ॥

ममता तज समता-पान करें, सयम का दान-प्रदान करे ।
घर-घर मे यश की बात सुनी जय जीत मुनि ॥

निर्मल हो, पर नही निर्बल हो,स्वाध्याय-व्रती तुम पल-पल हो ।
तुम भला करते खमा धणी जय जीत मुनि॰॰॰ ॥

तुम धर्म-देव हो मगल हो, चदन जैसे तुम शीतल हो ।
तुम वरदानी ज्यो पार्श्वमणी जय जीत मुनि ॥

जय-सप्रदाय-अधिनायक हो, सुखदायक हो वरदायक हो ।
दर्शन से हुलसे कणी-कणी जय जीत मुनि ॥

हम गीत 'जीत' का गाते है, यो जीत सदा ही पाते है ।
तुम गुण अनत हो ऐसे गुणी जय जीत मुनि ॥

तुम उपाध्याय पद चौथे हो, नित बीज ज्ञान का बोते हो ।
है वचन-सपदा सरस सनी जय जीत मुनि ॥

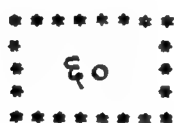
अमृत का मेघ सलोना ज्यो, हरसाता कोरा-कोना त्यो ।
हम भक्त तुम्हारे सदा ऋणी जय जीत मुनि ॥

ज्ञाता हो ज्ञान-प्रदाता हो, जिनवाणी के उद्गाता हो ।
आगम-सम्मत जो चुनी-चुनी जय जीत मुनि ॥

गभीर हृदय गभीर गिरा, जिनवाणी का है सार भरा ।
भव-भव की तोड़ी तना-तनी जय जीत मुनि ॥

गुरुवर के गुण जो गाएगे, कर्मों की कोटि खपाएगे ।
वदन हो इनको पुनी-पुनी जय जीत मुनि ॥

—प. मुनीद्रकुमार जी जैन



(तर्ज नवकार मत्र है महामत्र)

आचार्य प्रवर श्री जीतमुनि को, भाव सहित नित वदन हो ।
सद्गुरु को वदन करने से, तेरे शिथिल सदा भव-बधन हो ॥

गुण-सागर ज्ञान उजागर हैं, और धर्म-दिवाकर यशधारी ।
चारित्र प्रबल आचार सबल, प्रतिपल चितन इनका भारी ।
तप-पूत बने अवधूत बने, इस योगी का अभिनदन हो ॥

ये शात परम हैं दांत सदा, इद्रिय के विषय निवारी हैं ।
जिनवाणी के उद्गाता और, समता के आप पुजारी है ।
इनके चरणो मे रमने से, माटी के पुतले कचन हो ॥

ये उपाध्याय पद शोभित है, आराध्य हमारे लालमुनि ।
ये ज्ञान-दान का दान करें, इनके हम सब हैं बड़े ऋणी ।
हैं सरस सुधारस वचन सदा,सुन-सुनकर जिनका मथन हो ॥

तू जनम-जनम का प्यासा हो, तो आकर प्यास मिटा लेना ।
गुरुवर की पावन गगा मे, तू अपने पाप बहा देना ।
गुरु-चरण सदा सुखदायी हैं, ये शीतल जैसे चदन हो ॥

शुभ मुनिवर तो शुभकारी हैं, ये पारस, स्पर्श हैं पारस के ।
ये नूतन नूतन-ज्ञान सदा, गुणवत सुगुण है मानस के ।
भद्रिक तो भद्र सदा जीवन, औ ऋषभ तपस्वी जीवन हो ॥

जीवन मे मिलता सब कुछ है, सद्गुरु का मिलना कठिन बडा ।
अमृत का घट है हाथ लगा, तू देख रहा क्यो खडा-खडा ।
निर्भय हो विचरण करो साथ, जब जीतमुनि दु ख-भजन हो ॥

—प. मुनीद्रकुमारजी जैन



(तर्ज चादनी ढल जायेगी)

श्रद्धा-भक्ति - भाव से, उमग - उछाह से ।
नमन हमारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ॥

हिवडे के हार तुम, शासन-श्रृ गार तुम ।
तिरें और तारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ॥

गच्छाधिपति हैं आप, तप और जप-जाप।
चितन अपारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।
शात और दात है, कभी नही क्लात है।
पूल सुकुमारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।
उपाध्याय मुनि लाल, सागर विशाल आप।
पावे रसधारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।
सूरज यही चाद यही, ढू ढने क्यो जायें कही।
भाग्य हमारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।
शुभमुनि पार्श्वमुनि, नूतन-गुणवंत गुणी।
भद्रेश भडारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।
काशी यही हरिद्वार, तीर्थ तेरे आया द्वार।
भव-भय हारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।
भक्ति जैसे चदना, करो नित वदना।
सांझ औ सवारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।
नाम तेरा पूज रहा, घर-घर गू ज रहा।
सुयश-नगारा हो, जीत गुरु प्यारा हो ।।

—प. मुनीद्रकुमारजी जैन

६२

म्हाने विजनस देसी तार, भरोसो है जिनवाणी को ।।
ऐसी परम पवित्र है वाणी
जिसको इद्र-इद्राणी मानी
दुनिया मे दूजी नही जानी
महामोटी मगलीक, सदा दिव-शिव सुखदानी को ।।

सुनता वाणी कोइय न धापे
सुनता वैर-विरोध न व्यापे
कठिन करम चेतन का कापे
आपे अविचल ठौर और पद इद्र-इद्राणी को ॥

रामचद्र को दुनिया जाने
कृष्णचद्र ने पिण सब माने
पाडव ने सारा पहचाने
वाणी के प्रताप तिर्या सब भव-दुख-पानी को' ॥

परदेशी राजा ने तारयो
अर्जुनमालाकार उबारयो
सयति नृप नो जन्म सुधारयो
मारयो उन मृग एक वचन धारयो गुरु ज्ञानी को ॥

तारयो फिर शुकदेव सन्यासी
खधक ऋषि तापस मठवासी
सात सौ अबड अतेवासी
सरध लिये जिन-वैन चैन लीनो सुरधानी को ॥

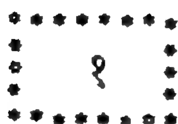
इण पर जीव अनत उधरिया
जैन धरम की कर-कर किरिया
'चौथमल्ल' कहे भवजल तिरिया
गुरुवर श्री नथमाल हाल सब कह्यो जिनवाणी को ॥

—स्वामी श्री चौथमल्लजी म



स्तवन-विभाग

(II) उपदेश



रे जीवा ! जिन-धर्म कीजिये, धरम ना चार प्रकार ।
दान शील तप भावना, जग मे एतला सार ॥
वरस दिवस ने पारणे, आदीसर सुखकार ।
इक्षुरस दान वहिरावियो, श्री श्रेयास कुमार ॥
चपा बार उघाडियो, चालणी काढ्यो नीर ।
सती सुभद्रा यश थयो, शीले सुर गिरि धीर ॥
तप करि काया सोखवी, सरस-निरस आहार ।
वीर जिणद वखाणियो, ते धन्नो अणगार ॥
अनित्य भावना भावता, धरता निर्मल ध्यान ।
भरत आरीसा-भवन मे, पाम्यो केवल ज्ञान ॥
श्री जिनधर्म सुरतरु समो, जेहनी शीतल छाह ।
"समयसुदर" कहे सेवता, मुक्ति तणा फल पाह ॥

—महोपाध्याय समयसुदरजी म



वीरा म्हारा गज थकी उतरो, गज चढया केवल न होसी रे ॥
राज तणा अति लोभिया, भरत वाहूबलि जूझै रे ।
मूठ उपाडी मारवा, वाहूबलि प्रतिबूझे रे ॥

बाधव गज थी ऊतरो, ब्राह्मी-सुदरी भासे रे।
ऋषभ जिनेश्वर मोकली, बाहूबलि तुम पासे रे ।।

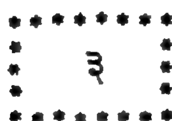
लोच करी सजम लीयो, आयो वलि अभिमानो रे।
लघु बाधव वादूँ नही, काउसग्ग रह्यो शुभ ध्यानो रे ।।

वरस सीम काउसग्ग रह्यो, बेलडिए बींटाणो रे।
पखी माळा माडिया, शीत-तावड सोखाणो रे ।।

साधवी वचन सुणी करी, चमक्यो चित्त विचारो रे।
हय गय रथ सवि परिहरचा, पिण चढचो हूँ अहकारो रे ।।
वैरागी मन ने वाळीयो, मूक्यो निज अभिमानो रे।
चरण उपाडचो वादवा, पाम्यो केवल ज्ञानो रे ।।

पहुता केवलि परषदा, बाहूबलि ऋषिराया रे।
अजर अमर पदवी लही, "समयसुदर" वादे पाया रे ।।

–महोपाध्याय समयसुदरजी म



(तर्ज प्रभाती)

आतम ! तू तो शुद्ध उपयोगी, क्यो पर छिद्र निहालत है ।।

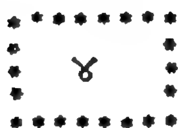
पर अवगुण सरसव-कण जितरो, मेरु जेम दिखालत है ।
अवर्ण बहुत भर्यो वपु तेरे, सो तू नाहि सभालत है ।।

बाहर क्रिया दिखावत बहुरी, अतर शुद्ध नहि पालत है ।
देखे दोष अनेक और के, आप एक नही टालत है ।।

पर निदा कर शोभा अपनी, जन-मन शका डालत है ।
प्रेम के फद बध मे फसकर, रतन कीच मे रालत है ।।

केलब कपट करण शुद्ध आतम, वाहर देह पखालत है ।
भीतर मैल मिटचा विन भोला, वाहर केम उजालत है… ।
धन्य मुनि श्रावक समदृष्टि, अत शल्य निकालत है ।
'सूर्यमल्ल' कहे आतम-निंदा, भव-भव पाप प्रजालत है ॥

—स्वामी सूर्यमल्लजी म



(तर्ज मैं जाती हूँ गिरनार)

तुम खूब करो धर्मध्यान, पर्यूषण आये पर्यूषण आये ।
धरो मती परमाद, प्रभु फुमराये ॥

दान शील तप भाव, क्षमा तुम करियो ।
कठिन वचन मुख बोल, काहू मत लरियो ।
हुओ किसी से वैर, देर विन खामो ।
रखो न दुश्मन-भाव, गुणी शिर नामो ।
रखो न मन अहकार, धर्म जो पायो ।
जो रखो मन अहकार, तो धर्म गमायो ।
मुनिवर केरो सेव, करो मन भाये धरो मती ॥

केई अत समय कहे तात, बात पुत्रा ने ।
अमुक से जावज्जीव, न बोलो (कोई) टाने ।
रखजो गाढा वैर, कहूँ तूं माने ।
मरणे-परणे न रखो रीत, सपूत गिणु थाने ।
जो रखोला कछु व्यवहार, तो (हूलो) दानगिरी थारो ।
लीजो इनसे वैर, वचन सुनो म्हारो ।
दीजो छोरा ने सीख, लीक ए राखे ।

कोई उत्तम पुनवत जीव, धर्म कूं लाखे।
करे सू स पचखाण, सारा ने खमाये ' धरो मती ॥

करो कुशील का त्याग, रात्रि मत खावो।
रखो हरी का नेम, और मत न्हावो।
रात्रि-भोजन दोष, ज्ञानी कह्यो मोटो।
द्रव्ये भावे दोय, इसी मे टोटो।
व्रत जो होय मलीन, फेर उजवालो।
पग-पग रखो उपयोग, हिंसा को टालो।
एक देऊ तुम को सीख, हीये मे राखो।
कोई भूल-चूक पर-निंद, करी मत भाखो।
न देवो हूकारो भूल, न सुनियो काने।
एह दीवी तुम कु सीख, चौडे नही छाने।
तो होगा कारज सिद्ध, सदा मन भाये धरो मती ॥

तुम करो सामायिक शुद्ध, और पडिकमणो।
सम्यग्दर्शन - ज्ञान, चारित्र मे रमणो।
जिन-धर्म कू जानो सार, आतम कू दमणो।
गुणो नी श्री नवकार, छूटे तेरो भमणो।
सुनियो नित व्याख्यान, अज्ञान कूं वमणो।
कठिन वचन सुनि कान, सुधे दिल खमणो।
"मुनि राम" कहे जिनराज, तणो लो शरणो।
और कारज कू छोड, धरम है करणो।
तातें तेरा जन्म, मरण मिट जाये ' धरो मती ॥

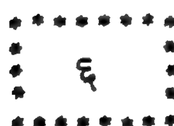
—पूज्य श्री रामचद्रजी म. सा.



(तर्ज प्रभाती)

रे चेतन ! पोते तू पापी, पर ना छिद्र चितारे क्यू ।
निरमल होय कर्म-कर्दम सू, निज गुण अबु नितारे तू ।।
सम्यग्दृष्टि नाम धरावे, सेवे पाप अठारे तू ।
नरक-निगोद थकी किम छूटे, जो पर हियो न ठारे तू ।।
जिम-तिम करने शोभा अपणी, या जग माहि दिखावे तू ।
प्रकट कहाय धर्म को धोरी, अतर भरयो विकारे तू ।।
परमेश्वर साखी घट-घट को, जा की शरम न धारे तू ।
कुभीपाक नरक मे पडसी, अतर सल न निवारे तू ।।
पर निदा अघ पिड भरीजे, आगम साख सभारे तू ।
"विनयचद" कर आतम-निंदा, भव-भव दुष्कृत टारे तू ।।

—श्रावक विनयचद जी



इण काल रो भरोसो भाईरे को नही, किण विरिया माहे आवे रे।
बाल-जवान गिणे नही, ओ सर्व भणी गटकावे रे ।।
बाप-दादो बैठो रहे, पोतो उठ चल जावे रे ।
तो पिण बेठा जीव ने, धर्म री बात न सुहावे रे ।।
महल-मदिर अने मालिया, नदी य निवाण ने नालो रे ।
स्वर्ग-मृत्यु-पाताल मे, कठे न छोडे कालो रे ।।

घर नायक जाणी करी, रक्षा करी मन गमती रे।
काल अचानक ले चल्यो, चोक्या रह गई झिलती रे ॥

रोगी उपचारण कारणे, वेद विचक्षण आवे रे।
रोगी ने ताजो करे, अपणी खबर न पावे रे ॥

सुन्दर जोडी सारखी, मनहर महल रसालो रे।
पोढ्या ढोल्या पे प्रेम सु, आय पहुचे कालो रे ॥

राज करे रलियावणो, इद्र अनूपम दीसे रे।
वैरी पकड पछाडियो, टाग पकड ने घीसे रे ॥

वल्लभ बालक देखने, माडी मोटी आसो रे।
पलक माही परभव गयो, रह गयो आप निराशो रे ॥

नार निरखने परणियो, अप्सरा रे उणिहारे रे।
सूल उठने चल दियो, ऊभी हेला पाडे रे ॥

नटवो चढियो नाचवा, दाम लेवण रो कामी रे।
पग छिटकी पडियो तले, ऐसा काल अलामी रे ॥

चेजारे चित्त चूप सू, करी इमारत मोटी रे।
जीमण उतरतो वो पड्यो, खाय न सकियो रोटी रे ॥

सुर-नर-इन्दर-किन्नरा, कोई न रहे निशका रे।
मुनिवर काल ने जीतिया, जे दिया मुगत मे डका रे ॥

किशनगढ मे सडसठे, आया सेखे कालो रे।
"रतनचद" कहे भवियण, कीजे धर्म रसालो रे ॥

—पूज्य श्री रतनचद्र जी म



(तर्ज सेवो सिद्ध सदा जयकार")

भज मन भक्ति-युक्त भगवान्, भरोसा क्या जिंदगानी का ।।

चचल अमल कमल दल ऊपर, ज्यो कण पानी का ।
जान तरल त्यो तन क्षण-भगुर, जग मे प्राणी का ' ।।

शरद जलद बुद-बुद सम जाहिर, जोर जवानी का ।
मत कर गर्व गुमान मान कहना गुरु ज्ञानी का ।।

था जग मे कहो कौन दैत्य दस-मुख की सानी का ।
बता पता है कहाँ उसी, रावण अभिमानी का" ।।

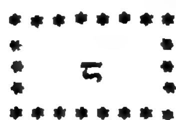
उदय अस्त लौ राज हुआ था, पति इद्राणी का ।
बना तदपि रहा लोभ तोय हा, कोडी काणी का ' ।।

है दुर्गति-दातार प्रेम, दूजी दिल जानी का ।
को नही पाया क्लेश प्रेम कर, त्रिया विरानी का ।।

क्या विश्वास श्वास का पुनि, दुनिया फानी का ।
ले ले सबल सग नही घर, आगे नानी का ।।

जयपुर का श्री सघ रसिक है, श्री जिनवाणी का ।
"माधवमुनि" कहे कथन मान मन, समति सयानी का " ।।

—श्री माधवमनि जी म



(तर्ज रग दे रग दे रे रगरेजा)

तज दे-तज दे रे पुण्यवता, भोजन आधो रैन को रे ।।

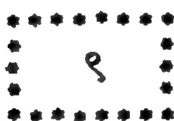
म्हाना जीव नजर नहिं आवे, जो कोई लालटेन लई आवे ।
उसमे पड-पड़ प्राण गमावे, भागो मास तणो लग जावे ।
सद्गुरु समझावे हरबार, मान ले उत्तम वैण को रे ॥

काग कपोत पछी कहलावे, वे भी रात चुगण नहिं जावे ।
तब फिर मानव कैसे खावे, द्रव्य रोग पाप है भावे ।
उनको रुचै नही हरगिज जो, चाहे अपनी चैन को रे ॥

जैनी बाजो आप जनाब, रात्रि खाणो निपट खराब ।
तजिया दोनो भव मे लाभ, जम को देणो पडे जवाब ।
उपदेश लीजो दिल मे धार, झेलायो मारग जैन को रे ॥

वैष्णव मत मे फेर बयान, देखो मार्कण्डेय पुराण ।
अन-जल को दी क्या उपमान, भाखे "मगनमुनि" हित आण ।
मानो मरजी हो तो, म्हारो, फर्ज है शिक्षा देन को रे ॥

—स्व स्वामी श्री मगनमलजी म. सा



(तर्ज रग दे रग दे रे रगरेजा)

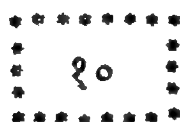
तज दे तज दे रे गुणवता, सग पराई बैर को रे ॥

देखत चित को लेवे चोर ।
हरती वीर्य करे कमजोर ।
परभव नरक बिना नहिं ठोर ।
भुगते दुख-दारुण घनघोर, खरो यह काटो खैर को रे ॥

बुरो यो बदनामी को मूल ।
पड गई कितनो के सिर धूल ।

फिट्-फिट् बाजे फेर फिजूल ।
कुण सुख पायो कह्यो न जाय, जगायो सूते शेर को रे ॥
जिनकी छाया तक नही छीवे ।
उनकी काय फरसना की वे ।
चपत चतुराई कर दी वे ।
दिल मे चचलता दिन-रात, रहे जिम समदर-लहर को रे ॥
कीचक आदि प्राण गमाया ।
खत्ता घणा खलक मे खाया ।
देखो दशकधर दुख पाया ।
म्हारो मान कह्यो मतिवत, पिये मत प्यालो जहर को रे ॥
राखो शील-रत्न सभाल ।
मिलसी वाछित मगल माल ।
जोडी "मगनमुनि" आ ढाल ।
रची बियासी को है साल, चौमासो अहिपुर शहर को रे ॥

—स्व. स्वामी श्री मगनमलजी म सा



(तर्ज पनजी मू डे बोल)

ले सग खरची रे, परभव की खरची लीधा सरसी रे ॥

कूड़-कपट कर धन जो कमाई, जोड़ जमी मे धरसी रे ।
सुदर महल बाग ने छोड़ी, जाणो पड़सी रे ॥
आगे घघो पाछे घघो, घघो कर-कर मरसी रे ।
धरम सुकृत नाय करे परभव काई करसी रे ॥

राजा वकील वेरिस्टर से कर, मोहबत तू सग फिरसी रे ।
कौन छुडावे काल आय जब, घेटी पकडसी रे ।।

पाच कोस गामातर खातिर, खरची लेई निकलसी रे ।
नया शहर है दूर नही, मनियाडर मिलसी रे ।।

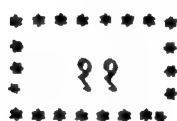
यौवन की थने छाक चढी बूढापा आया उतरसी रे ।
इस तन की तो होसी खाक कहा तक निरखसी रे ।।

घर की नारी हाडी फोड ने, पाछी घर मे वरसी रे ।
मसाण-भूमि मे छोड थने फिर, कुटुम्ब विछडसी रे ।।

लख चौरासी की घाटी करडी, कैसे पार उतरसी रे ।
रत्ती सीख नही लागे थारी, छाती बजर-सी रे ।।

साल गुण्यासी हातोद मे जिन-वाणी जोर से वरसी रे ।
गुरु-प्रसादे "चौथमल्ल" कहे, किया धर्म सुधरसी रे ।।

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म



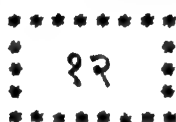
उठ भोर भई टुक जाग सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।
अब नीद-अविद्या त्याग सही, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।।

जग जाग उठा तू सोता है, अनमोल समय यह खोता है ।
तू काहे प्रमादी होता है, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।।

यह समय नही है सोने का, है वक्त पाप-मल धोने का ।
अरु सावधान चित्त होने का, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।।

तू कौन कहा से आया है, अब गमन कहा मन भाया है ।
टुक सोच यह अवसर आया है, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।।

रे चेतन चतुर हिसाव लगा, क्या खाया-खरचा लाभ हुआ ।
निज ज्ञान जमा तू सभाल लिया, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु·····।।
गति चार चौरासी लाख रुला,यह कठिन-कठिन शिव-राह मिला ।
अव भूल कुमार्ग विषे मत जा, भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ·।।



(तर्ज फागण)

साधु जैन का·· मुखडा रे ऊपर मुखपति बाधे रे ।।
पाच महाव्रत पाले मुनिवर, टाले दोषण सारा रे ।
सब जीवा ने साताकारी, सो गुरु म्हारा रे ।।

सीयाळा मे सीयां मरे पण, धूणी नही धुकावे रे ।
कारण अग्नि देवता ने, नही सतावे रे·· ·।।

उन्हाळा मे वीजणा से, वायरो नही खावे रे ।
वायुकाय का जीव वळे, माछर मर जावे रे ।।

हेठे तो आकाश ऊपर, पवन ऊपरे पानी रे ।
पानी रे ऊपर है पृथ्वी, साची मानी रे· ।।

तुलसी के नही फेरा खावे, पत्तो पिण नही तोडे रे ।
गौ वचन मे पडिया पीछे, अन-जल छोडे रे ।।

रात पड्या अन-जल रो खेरो, मूं डा मे नही नाखे रे ।
सूई जितरो ही पिण धातु, रात न राखे रे· ।।

लीलोती रे भेला साधु, भूल कदे नही होवे रे ।
विपया के वश होय नार के, सामो न जोवे रे · ।।

भाग - धतूरा गाजा रे तो, नेडा ही नही जावे रे ।
तन्दूरा परमुख कोई बाजा, नही बजावे रे ॥

पहर रात गया के पीछे, ध्यान वा शयन लगावे रे ।
पिरण नही गाय - बजाय के वे, रात जगावे रे ॥

पग उभराणे चाले किंचित, करडावरण नही करता रे ।
पर - उपकार के कारणे, दुनिया मे फिरता रे ॥

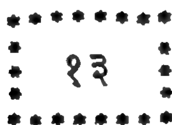
हाथी - घोडा - रेल - मोटर की, नही करे असवारी रे ।
दूर - दूर देशावर देखे, पाय - विहारी रे ॥

बोली तो नही बोले ऐसी, खटके जैसी खारी रे ।
अमृत बोली बोल माणे, मोज मजा री रे ॥

गृहस्थ रे घर नेतियोडा, जीमरण ने नही जावे रे ।
लूखी - सूखी लाय ने, थानक मे खावे रे ॥

होली-चौमासो नानरणा मे, दोय ठारणा सु आया रे ।
नाथ-शिष्य 'चौथू' पचाराव, स्तवन बनाया रे ॥

—स्वामी श्री चौथमलजी म सा



(तर्ज ख्याल)

धर्म ध्यान करोनी, आया पजूसरण भरिया भादवे ॥

पर्व पर्यू षरण आविया सरे, खूब करो धर्मध्यान ।
आठ दिवस लग शील ज पालो, देवो सुपात्र दान, जी ॥

लीलोती नही खानी प्यारे, निशि भोजन परिहार ।
रगडो-झगडो न करनो किसी से,रहनो शुद्ध आचार, जी ॥

बारह महीना माय ने सरे, हुई जो किन से रार।
क्षमा करीने तास खमावो, ज्यू उतरो भव-पार, जी ।।

श्रावक नी करनी जो प्यारे, करनी करो कबूल।
निंदा-विकथा लारे नाखो, पनरे घोबा धूल, जी ।।

सीरो पुडिया और खडिया, घाया पाच पकवान।
लपटा सु जो नीचे उतरिया, तो परमेश्वर-आन, जी ।।

स्टेशन पर यह रेल खडी है, टुगर-टुगर क्या जोवो।
लेना टिकट हुवे सो लीजो, भरी नीद क्यो सोवो, जी ।।

इकोतर भादव वदी बारस, शहर सादडी आया।
स्वामी श्री नथमाल मुनि-शिष्य, 'चौथू' है सुख पाया, जी ।।

—स्वामी श्री चौथमल्लजी म



(तर्ज ख्याल की)

करजो भवि प्राणी, नित-नित सामायिक सुधर्या भाव सू ।।

दोय करण अरु तीन जोग री, वीर सामायिक भाखी।
समता भाव सामायिक कहिजे, सूत्र आवश्यक साखी हो ।।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव का, गुरु-मुख निर्णय कीजे।
द्रव्य शुद्ध जब होय सामायिक, तीन चीज गह लीजे हो ।।

भव्य द्रव्य, त्रसनालि क्षेत्र है, कालऽद्धपुग्गल ऊन।
भाव क्षयोपशम जानिये सरे, भाव सामायिक तून हो ।।

अतिचार पण सामायिक रा, टाले कोई पुनवान।
दोष बत्तीस टाल, फिर टाले, विकथा चार प्रमान हो ।।

श्रावक का बारह वरता मे, नवमो व्रत है एह।
"चौथमल्ल" ने ज्ञान दियो यह, गुरु नथमल गुण-गेह हो ॥

—श्रुताचार्य स्व स्वामी श्री चौथमल जी म



(तर्ज मेरे मा-वाप ने रे)

मुक्ति ना मिले रे, सम्यग्ज्ञान - क्रिया बिन भोला ॥
काशी जाओ, मथुरा जाओ, चाहे जाओ गगा।
खाक लगाओ, भगवा पहनो, चाहे पहनो अगा ॥

चाहे लुचन करलो चाहे, जटा बढालो जगा।
चाहे पैदल फिरलो चाहे, करो सवारी सगा ॥

चाहे धोला वस्त्र पहनलो, चाहे पहनो रगा।
चाहे (कर) लोह-कडा पहनलो, चाहे रखलो कगा ॥

चाहे एक लगोट लगालो, चाहे रहलो नगा ।
सम्यग्ज्ञान-चरण बिन चेतन, चित नही होवे चगा ॥
दोनो मिलकर गाव पहुचगा, अघा और अपगा।
ज्ञान अपग है किरिया आधी, शिवपुर शहर सुरगा ॥

भाव ज्ञान अरु शुद्ध क्रिया को, नमिये नित उतमगा।
स्वामी नाथ ने "चौथमुनि" का, सहज किया सुढगा ॥

—स्वामी श्री चौथमलजी म सा



पइसो प्यारो रे दुनिया ने लागे मोहनगारो रे ।।
पइसा से नर प्यारो लागे, ज्यो काजर से कारो रे ।
अजब चीज दुनिया मे पइसो, कहे जग सारो रे ।।
पइसा खातर परमेश्वर की, सो-सो सोगन खावे रे ।
प्राण-प्यारी ने छोड पुरुष परदेशा जावे रे ।।
पइसा से दुनिया दे आदर, आगे आप पधारो रे ।
निर्धन ऊभो टुग-मुग जोवे, लागे खारो रे ।।
पइसा आगे पतो न लागे, जो परमेश्वर आवे रे ।
महादेव ने पार्वती आ, बाहर कढावे रे ।।
काणा-खोडा-लूला-बोळा ने, ओ पइसो परणावे रे ।
निर्धन जग मे छैल-भवर पिण, नार न पावे रे ।।
मात-पिता पइसा बिन बोले, है बेटो दुखदाई रे ।
बिन पइसा थी बेनड बोले, ओ काई भाई रे ।।
बिन पइसा थी पडो धेड मे, बोले सगी लुगाई रे ।
सासु-सुसरा बोले मिलियो, बुरो जमाई रे ।।
मुरदा ने पिण कोइय न बाळे, काग-कुता मिल खावे रे ।
साव सगो भाई पइसा बिन, नही बतलावे रे ।।
तालाब पाणी रो सीर घर मे, आता भावज पाले रे ।
तरकारी नही घाले बोले, आइजे काले रे ।।
पइसा ने जो धूल बराबर, समझे सो नर ज्ञानी रे ।
"चौथमल्ल" नथमाल-शिष्य कहे, सुनो भवि प्राणी रे ।।
उगणीसे की साल अस्सी मे, गाव विसलपुर माई रे ।
पौष वदि द्वितीया के दिवसे, जोड सुनाई रे ।।

—स्वामी श्री चौथमलजी म. सा.



(तर्ज माता सीता की गोदी मे)

प्यारा दे सतगुरु उपदेश, सुनो चित लाय के रे।
मत ना हारो नर-अवतार, अमोलक पाय के रे॥

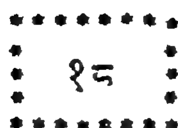
पूंजी साथ पुण्य की लाया
मिल गया मिनख-जनम मन-चाया
आर्य देश उत्तम-कुल पाया
भाया! भजले तू भगवान, सदा चित चाय के रे ॥

तन-धन-जोबन थिर नही थारो
है जग सगलो ही हटवारो
साचो नही है सुख सपना रो
थारो उर-अंधियारो मेट, हिये हरषाय के रे ॥

दान-शील-तप भाव आराधो
अब तो आतम-कारज साधो
कोई पाप-करम मत वाधो
ले लो परभव-खरची खूब, साथ कमाय के रे ॥

छिन्नू साल पीपाड मे आया
सेखे काल जेठ मे भाया
धर्मध्यान किया मन-चाया
"रावत" रचि है चवदस सुद मे, सुनाई गाय के रे ॥

—स्व. स्वामी श्री रावतमल जी म सा.



(तर्ज म्हारा छैल-भवर रो कागतियो ')

म्हारा भाग्य-उदय सूं आज म्हने, मिल गये गुरु ज्ञानी रे ।
सारा पाप-करम कमजोर हुआ, प्रगटी पुनवानी रे ॥

लाख चौरासी भमता-भमता, काल अनत गमायो रे ।
सुर-तरु जैसे सतगुरु जी को, दुर्लभ दर्शन पायो रे
हो गई मनमानी रे ॥

सुत दारा सज्जन सुख सारा, वार अनती मिलिया रे ।
जनम-मरण और दु ख जीवा रा, किण सु भी नही टलिया रे'
हुई उलटी हानी रे ॥

एक वचन सतगुरु को सुनकर, निहचै नियम निभावे रे ।
भगवत भाखी शास्त्र है साखी, नही नरक मे जावे रे
जाहिर जिनवाणी रे ॥

लाख सूरज ऊगा पिण हिय को, मिटे नही अधारो रे ।
गुरु-रवि ज्ञान-किरण-वच विकस्या,उर मे होय उजारो रे
है उत्तम प्राणी रे ॥

पाहन लोह तिरे जल माहि, जहाज माय धर देवे रे ।
ऐसे भव-सिधु तर जावे, सुगुरु-चरण जो सेवे रे
सदेह मत आणी रे ॥

निन्याणु की साल नगीने, (प्रथम) जेठ शुक्ल मन चायो रे ।
मगनमुनि महाराज-प्रसादे, "रावत" तवन बनायो रे
ज्यो गुरु-मुख जाणी रे ॥

—स्वामी श्री रावतमल जी म. सा

१९

श्रागे जाणो चेतनिया ! साथे, खरची ले लीज्यो ।
खरची लिया पहला ही मनडो, वश मे कर लीज्यो ॥

साथ चाले धरम इण से, प्रीत धर लीज्यो ।
शुभ कर्म कमाई चेतन, पैली कर लीज्यो ॥

श्रातम-शुद्धि रे खातिर थे तो, तपस्या कर लीज्यो ।
थें तो क्षमा करी ने माया, मद ने हर लीज्यो ॥

पायो मानव-भव ओ रुडो, म्हारी सुन लीज्यो ।
शुद्ध करणी करवा मे चेतन ! देरी मत कीज्यो ॥

शिक्षा "नाथुमुनि" री हिरदा, माहे धर लीज्यो ।
प्रभु-भक्ति करी ने मुक्ति, बेगी वर लीज्यो ॥

–स्व श्री नाथूलाल जी म

२०

(तर्ज जब तुम्ही चले परदेश)

अरे मित्र ! ले मान, कथन यह जान
तू सत्य हमारा बिन मतलब कोई न प्यारा ॥

वह पुत्र पिता को भाता है, जो द्रव्य कमाकर लाता है ।
नहिं तर लगने लगता वो ही खारा ॥

जो बहन को देता भाई है, वह मीठा लगे सदा ही है।
नहि तर कहलाता है वही ठगारा ॥

वह पति पत्नी को प्यारा है, जो जीवन-सूत्र सहारा है।
वरना होवे रायप्रदेशी दारा ॥

यो समझो सज्जन तुम सारा, "मुनि जीत" कहे है हितकारा।
छोडो जग-जजाल होवे निस्तारा ॥

—आचार्य प्रवर श्री जीतमल जी म. सा



(तर्ज ये दो दीवाने दिल के)

जग मे सभी चल-चल है, लगा बैठा क्यो दिल है।
बना क्यो, बना क्यो, बना क्यो अनजान ॥

आशा है तेरी देखो, धन को कमाऊँ।
कोटीश्वरो मे मेरा, नाम धराऊँ।
बनू मैं जग का राजा, करू जो मन मे आ जा बना क्यो " ॥

उलझा है तेरा तन-मन, भोगो का प्यासा।
भरा सरोवर देखे, लग जाये आशा।
चला है बन-ठन के, दुल्हा-सा देखो बन के बना क्यो ॥

प्यारी यह काया-माया, सग मे न जाये।
"जीतमुनि" कहे तुझे, धर्म सग आये।
शिक्षा यह मन मे धरके, बनो पथिक शिवपुर के बना क्यो ' ॥

—आचार्य प्रवर श्री जीतमल जी म सा.

२२

(तर्ज उड-उड रे, उड-उड रे)

सुन-सुन रे सुन-सुन रे सुन-सुन रे मेरे भोगी भ्रमर मन !
मोह त्याग दे सुख पासी मोह त्याग दे सुख पासी ।।

कमल की कलिया खिली हजारा ।
देख - देख बन मत मतवारा ।
प्यार किया तो बध जासी मोह त्याग दे सुख पासी ।।

स्वार्थ - प्यार का तार जुडा है ।
बधा हुआ तू इसमे पडा है ।
लगी काटले गल-फासी मोह त्याग दे सुख पासी ।।

ममता का तू मारा - मारा ।
चला बावला जीवन हारा ।
पाप लगा जो सग आसी मोह त्याग दे सुख पासी ।।

मात - पिता - सुत - बाधव - नारी ।
मतलब की है दुनिया सारी ।
सोच-समझ रे बनवासी मोह त्याग दे सुख पासी ।।

मोह-त्याग की कठिन तपस्या ।
अब सुलझाले यही समस्या ।
परम-ज्योति मे रम जासी मोह त्याग दे सुख पासी ।।

अत समय मे जाना अकेला ।
झूठा सारा जगत - झमेला ।
'जीत' मुनि-पन सुख-राशि मोह त्याग दे सुख पासी ।।

—आ प्र श्री जीतमल्ल जी म. सा

२३

श्रावक के भाई, नियम सुखदाई, जिन जी बताये होऽऽऽ ।।

सचित्त वस्तु की कर मर्यादा, द्रव्य विगय की और ।
पाद-त्राण तवोल वस्त्र को, करके सीमित और ।
ममता हटाये, आत्मा सुख पाये, जिन जी बताये हो " ।।

पुष्पादिक अरु वाहन का भी, शयन विलेपन का भी ।
कर परिमाण कुशील का प्यारे, और दिग्गमन का भी ।
आस्रव घटाये, सवर वढाये, जिन जी वताये हो " ।।

देश स्नान और सर्व स्नान का, फिर भोजन-परिमाण ।
चितन करते प्रात चतुर्दश, श्रावक जो हो सुजान ।
नियम निभाये, प्रतिदिन का ये, जिन जी बताये हो " ।।

विक्रम सवत दो सहस्र और, उगणीसे की साल ।
"जीतमुनि" कहे धमधा आये, फाल्गुन मास मे चाल ।
तीज सोम सा ये, चद्रगुरु राये, जिन जी वताये हो ।।

—आचार्य प्रवर श्री जीतमलजी म. सा.

२४

(तर्ज मेरी छोटी-सी है नाव)

पर्व पर्युषण सार, आये देखो नर-नार, करो धर्म का प्रसार
आओ यहाँ रस घोल के, दिल खोल के' ।।

मिथ्या मोह के भ्रम को भगादो, सोये अतर को आप जगादो ।
देव-गरु-धर्माचार, तत्त्व तीनो ये विचार, करो धर्म का प्रसार '।।

लगे दोषों का शुद्धीकरण हो, व्रतो-त्यागो का दृढीकरण हो ।
यही आत्मा का सधार,शुध सम्यक्त्व को धार,करो धर्म का प्रसार ।

दया तपस्या का ठाट लगादो, आत्मिक ज्ञान की ज्योति जगादो ।
आये नर अवतार, लाभ लीजिये अपार, करो धर्म का प्रसार ॥

रात्रिभोजन का त्याग तुम कीजिये, खेल खेलना भी छोड दीजिये ।
निंदा-विकथा निवार,पर-स्त्री का परिहार,करो धर्म का प्रसार ॥

नही मुह से गाली उचरना, सदा शाति से दिल को भरना ।
झूठ-क्लेश को विसार,मीठे बोलो रसधार,करो धर्म का प्रसार ॥

दया पौषध सामायिक व्रत ले, चौविहार ब्रह्मचर्य धरले ।
डाल अच्छे सस्कार, भर जीवन-भडार, करो धर्म का प्रसार ॥

एक धर्म ही साथ मे चलेगा, सारा ठाट यही पे रहेगा ।
ज्ञानी कहे बारबार, सारा झूठा है ससार,करो धर्म का प्रसार ॥

तुम आठो दिवस श्रुत सुनना, कभी आलस-प्रमाद मत करना ।
कहे 'जीत' अनगार, गाव कुचेरा मझार,करो धर्म का प्रसार ॥

पर्युषण —आचार्यप्रवर श्री जीतमल जी म सा.

२५

(तर्ज : पछी बावरिया ')

पर्व पर्युषण आये, कि जिन-गुन गा ले रे ।
समय वृथा नहिं जाये, कि लाभ उठाले रे ॥

ईर्ष्या कर क्यो दिल को जलाओ, मोद-भावना मन मे भाओ ।
निर्मल आत्मा बनाये, कि जिन-गुन गा ले रे ॥

पर की प्रशसा सुनकर फूलो, अपनी बडाई करना भूलो।
स्वात सदा सरसाये, कि जिन-गुन गा ले रे · ॥

बौद्धिक धन का आज दिवाला, पर की बुराई करके निकाला।
जरा हृदय समझाये, कि जिन-गुन गा ले रे · ॥

पर-गुन सुनना हमको न आवे, अपने मे फिर गुन न बढावे।
कैसी रीत चलाये, कि जिन-गुन गा ले रे ॥

सच्चे गुरु तो एक शरन है, नाना कुगुरु किये मरन है।
सत्य बोध जो पाये, कि जिन-गुन गा ले रे ॥

सफल बनाना जो है जीवन, क्षमायाचना करना शुध मन।
"जीतमुनि" समझाये, कि जिन-गुन गा ले रे ॥

पर्युषण —आचार्यप्रवर श्री जीतमल जी म सा

२६

(तर्ज देख तेरे ससार की हालत)

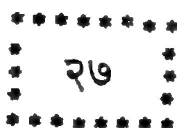
चचल मन को, स्थिर कर प्राणी, कर ईश्वर का ध्यान
तेरे सफल बनेगे प्राण ·· ॥
मुश्किल से नर-जन्म मिला है, कर अपना कल्याण
तेरे सफल बनेगे प्राण ॥

अनत काल से है तू सोया, मोह-माया मे जीवन खोया।
सुकृत का तो बीज न बोया, लक्ष्मी के पीछे पड़ रोया।
समझ-समझ ले चेतन! अब तो, छोड बुरी यह बान ··तेरे ॥

समय-समय से आयु कटता, अजलि-सभृत जल ज्यो घटता।
दिन-दिन रूप-यौवन है हटता, फिर भी विषयो को ही रटता।
अगर होना है अमर तुझे तो, तज दे यह विष-पान तेरे · ॥

जीव-अजीव विभेद विचारी, मन की ममता तजकर सारी ।
कर्म-शत्रु को ले सहारी, अटल शाति का बन अधिकारी ।
'जीतमुनि' तब होगा तेरा, सिद्धिवास प्रस्थान तेरे ॥
दो सहस्र की साल अठारा, फाल्गुन सुद बारस रविवारा ।
वालाघाट नगर सुविशाला, धर्मध्यान का ठाट निराला ।
बने जहा के श्रावक सारे, सेवाभावी महान तेरे ॥

–आचार्यप्रवर श्री जीतमल जी म सा.



(तर्ज सच्चा भगत वन जाऊ)

जिनवर-पद-रज पाऊ सुख, अवर न चाहूँ कुछ भी ॥

तन-मन मेरा अर्पण करके ।
श्री-चरणो की शरण ले करके ।
अपने-पन को भुलाऊ . सुख ॥

अगर सामने लक्ष्मी आये ।
नाना रूप ले जो ललचाये ।
तो भी ना डिगने पाऊ .सुख ॥

सकट चाहे आये सताने ।
सीने पर सगीने ताने ।
जरा नही घबराऊ ...सुख ॥

मान-वडाई पद का प्रलोभन ।
उसमे भी नही उलझे मुझ मन ।
सेवा कर सुख पाऊ सुख ॥

निंदा कर क्यो जन्म गवाऊ।
तव भक्ति मे मन को लगाऊ।
निर्मल निज को बनाऊ सुख ॥

सवत दोय हजार सुवीसे।
नगर रायपुर वर्षावासे।
'जीत' करम शिव पाऊ सुख ॥

—आ प्र. श्री जीतमल जी म सा

२८

(तर्ज ख्याल)

विन त्याग-वरत रे, विरथा जावे है थारी जिन्दगी ॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म री वाता, दिन-दिन वधती जावे।
गुरु निर्ग्रंथ देव अरिहत री, क्यो न आसता आवे जी ॥

छ काया रा आरभ माही, रुचिया-पचिया रेवो।
परिग्रह तृष्णा सात कुव्यसना, रसना रे वस वेवो जी ॥

पाप किया सू पाप लगे आ, सीधी सी है वात।
अव्रत सू भी समय-समय ह्वै, आस्रव को उत्पात जी ॥

पुद्गल-सुख सुरलोक तणा पण, क्रिया लगे नितमेव।
कत्लखाना वेश्याओ की भी, लगती रहे सदैव जी ॥

अव्रत-आस्रव वद हुआ सू, सवृत वाजे जीव।
खुला प्रमाद कषाय योग है, तो भी धरम री नीव जी ॥

देवाधिक वे मानव है जो, धारे व्रत अरु नेम।
प्रेम रखे प्राणा सू अधिको, वरते कुशल-क्षेम जी ॥

आरकोणम् सू विचरत - विचरत, काचिपुरम् मे आया ।
"श्रमणलाल" दो चार पैसठ ने, इसा भाव दरसाया जी ।।
—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा



(तर्ज व्याव बीदनी, विलखू मैं तो)

आज जावणो, काल जावणो, आखिर मे है जावणो ।
करियोडा करमा रो भाई, आगे है फल पावणो ।।

करे बिखेरो साझ-सवेरो, आगो-नेडो जावे है ।
अवेरणा मे समझे है नहि, नित का फद फैलावे है ।।
अरे भोळिया, गजब गोळिया, काई थने समझावणो ।।

मन रे माथे खाच-खाच ने, क्यू ओ बोझो लेवे है ।
झूठो ही लोगा ने सारो, क्यू थत्तोबो देवे है ।
जवाबदारी, दिवी विसारी, सीख काबू मे आवणो ।।

औरा ने हुशियार करे तू, खुद गैबू बणियोडो है ।
थारे माथे किता जणा रो, छल-ताणो तणियोडो है ।
कुण केडो है, कुण नेडो है, इण रो पतो लगावणो ।।

ओ भी करलू , वो भी करलू , सभी काम म्हे करलू ला ।
इण सू ले लू , उण सू ले लू , पाछा सभी चुका दू ला ।
घालमेल ने, छोड गेल ने, पडे न मगज पचावणो ।।

"श्रमणलाल" अब सरल होय कर,इण मन ने सुलझाले तू ।
हलको हुय ने मनसूबा सू , निज मे ध्यान लगाले तू ।
मन भी सरसे, जन भी हरसे, सगळे हरस-वधावणो ।।
—उ प्र. श्री लालचद जी म सा



(तर्ज म्हाने अबके बचाले)

तू तो अबके बचाले थारो जीव, फसण दे मत ना फद मे ।।

पुद्गल ऊभो पारधी रे, जाळ विषय री लेय ।
सावधान रहजे सदा रे, इण मे ही है थारो श्रेय ।।

प्यालो ले मद-मोहणी रो, ऊभो कलुष कलाळ ।
चुस्की तू लीजे मती रे, खाच लेवेला थारी खाल ।।

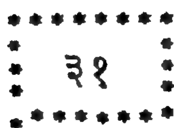
कुमति कुटिला कचणी रे, नखरा करे हजार ।
निज गुण-धन ने लूटने रे, तने काढेला दे पजार ।।

मिनखा-देही पायने रे, जो तू रह्यो गवार ।
पछताणो पडसी घणो रे, लागेला नही उपचार ।।

जैन धर्म मिलियो थने ज्यू, दुर्लभ अमर-विमान ।
निज नगरी मे पूग जा रे, जगत ठगा रो तज स्थान ।।

हिम्मत रख मत हारजे रे, कर्म-वैरी ने जीत ।
"श्रमणलाल" तज और सू तू, करले सुगुरु सू अब प्रीत ।।

—उ.प्र. श्री लालचद जी म.सा.



आज सुधरणो, शुरु करे तो, काल सुधर तू जायला ।
काल सुधर सू सोचेला तो, काल थने खा जायला ।।

आज करे सो हो जावेला, अबार अपणे हाथ है।
छूट गयो जो साथ समय को, बणनो पड़े अनाथ है।
काल दोय है, एक आवे ने, एक कदी नही आयला ॥

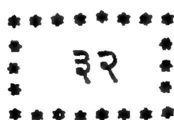
आज सुघरियां सभी जणा रो, जीव घणो सुख पावेला।
शिक्षक-दर्शक-गुरु-परिजन रा, हिय मे हर्ष न मावेला।
नही तो वे थारे कानी सू, नित का ही पछतायला ॥

काम सुधरणो चोखो ह्वै तो, आगे पर क्यू न्हाखे है।
दूजा रे घर मे क्यू छाने, आडो-टेढो झाखे है।
कोरा मनसूबा मे ही तू, रह जासी एबायला ॥

अरे! मान मन! म्हारो केणो, मानव अब तू बनजा रे।
शोषण छोड़ पूलवारी रो, दानवता सू हटजा रे।
थने मानसी, सारी दुनिया, जीवन मे सुख पायला ॥

"श्रमणलाल" है हाल हाथ मे, बाजी काम मे ले ले तू।
जीत हो जासी अपणी ऐसी, झटपट क्यू नही खेले तू।
निर्विकार बन, जावेला तो, परमानद उपजायला ॥

—उ. प्र. श्री लालचद जी म. सा.



(तर्ज ख्याल की)

सुणजो सब लोगां, पाणी अणछाण्यो कदै न वापरो ॥
जीव भर्या है एक बूद मे, ज्यारी गिणती नाय।
नदी-तलाब-निवाण माय ने, किम गठा बीडाय हो ? ॥

छोटा-मोटा केई जीवा ने, डर उपजै है थासू ।
वे जाणे ए धीवर आया, खावे-कमावे म्हांसू हो ।।

मिलसी गर कोई गोह-मगर तो, गह ऊडा ले जासी ।
जोर न चालेला वा आगे, टुकडा कर खा जासी हो ।।

कुण जाणे पेली आया वे, केडा मिनख-लुगाई ।
रोगी-सोगी तन-मन रा अणु, चिप जावे निज माई हो ।।

अपणो मैल फैले ज्यू जल मे, दूजा रो भी फैले ।
देह खेंच लेवे उण सब ने, भीतर-बाहर ले-ले हो ।।

गावा भी मत धोवो उण मे, घणो पाप है लागे ।
नाहक अपणा आलस सेती, वढे आगे सू आगे हो ।।

अणछाण्यो जल भूल न पीणो, मरे जीव अधिकाय ।
अपणा एक जीव रे खातिर, होवे घणा री घाय हो ।।

पाप लगे सो एक तरफ पण, वढे है रोग शरीर ।
केई अचानक मर जावे ने, केईक भुगते पीर हो ।।

वाळा निकळे ठोर-कुठोरा, हाथी - पगो हो जावे ।
दाव-उपाय कोई नही लागे, वेदक यू वतलावे हो ।।

राम-स्नेहिया ने देखो वे, कितरी वार छणावे ।
जैन मुनि काचा पाणी रे, नेडा ही नहि जावे हो ।।

करो त्याग काचा पाणी रो, पळे दया जीवा री ।
फरज म्हारो उपदेश देण रो, मानो तो मरजी थारी हो ।।

स्वामी चौथ गूं सुणियां जैसो, "श्रमणलाल" सुणायो ।
हलु-कर्मी तो हिरदै धारे, भवजल पार अणायो हो ।।

—उपाध्यायप्रवर लालचद जी म.सा



(तर्ज म्हारा छैल-भवर रो कागसियो)

इण जैन धरम मे तिरणे री, तरकीबा ताजी रे ।।

जगदरियो भरियो भव-जल सू, जीव झबोळा खावे रे ।
कुमति-सखी रे कपट-जाळ मे, फसियोडो दुख पावे रे .
हुय पाप रो माझी रे ।।
जिण कारण सू डील निपजियो, उण माहे मन जावे रे ।
पण सतगुरु री सीख सुणता, हियडो अति हरषावे रे
या वेळा साजी रे ।।
जीवादिक नव तत्त्वा रा तो, भिन्न-भिन्न भेद बताया रे ।
चित चचल ने थिर करणे रा, साधन घणा जताया रे
मन हो गयो राजी रे ।।
साधु-धरम की जहाज शिरोमणि, उण माहे कोई बेसे रे ।
ज्ञान-ध्यान की लहरा लेता, पहुचे जिय निज देशे रे
रहे सिद्ध विराजी रे ।।
उगणीसे अठाणू माह वद, बीज पुष्य-रवि आयो रे ।
गाव साडिये गुरु प्रसादे, "लाल" कहे सुखदायो रे
मैं जीती बाजी रे ।।

—उपाध्याय प्रवर श्री लालचद जी म सा



गौरी-गौरी देह पाई गौर करले ।
मैली-मैली आतमा का मैल हरले ।।

तेरे तन मे मन मे जुदाई क्यो, यह बीच मे खाई खुदाई क्यो ?
गुन चुन-चुन के उसमे तमाम भरले मैली-मैली ।।
तू जितना खाता-खिलाता है, सब मल ही बनता जाता है।
कुछ त्याग-वरत पचखाण करले मैली-मैली ।।
यदि सुकृत कुछ कर सकता है, जीवन सोना बन सकता है।
जाता अवसर जरा यह ध्यान करले मैली-मैली ।।
जब विदाई की बेला आयेगी, कोई चीज साथ नही जायेगी।
जितनी चाहे धरम की उमग भरले मैली-मैली ।।
तूं तारा बन कर आया है, और तेज सितारा लाया है।
"लाल" चाद-सा फैल के समद तरले मैली-मैली ।।

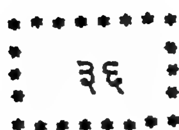
—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा.



(तर्ज पपैया, काहे मचावे)

पधारो.. पर्वों के अधिराज।
स्वागत करता समाज, पधारो ।।
बारह मास से आये हो तुम, भविक विकासन हेतु।
उजड़े आतम मे सद्गुण को, नित्य बसावन हेतु।
हर्ष है सबके मन मे आज पधारो ।।
आओ द्वेष-क्लेश मिटाओ, प्रेम बढाओ आप।
आत्मागण से दुर्गुण-मल को, आप मिटाओ साफ।
सजाया सर्व सुखो का साज पधारो ।।
आओ उन्नति-केतु फहराने, लाने सौख्य ललाम।
धर्म-रग मे "लाल" बनाके, करने को अभिराम।
दिलाओ मुक्ति-नगर का राज पधारो ।।

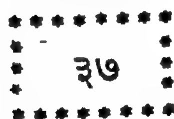
—उपाध्याय श्री लालचद जी म.सा



(तर्ज उठ भोर भई टुक जाग सही)

है शक्ति हमारे मे उसका, कहिं दुरुपयोग ना हो पाये ।
साधन हैं सब हित-साधन के, इनसे कही अहित न हो पाये ।।
है वस्तु यह जिस आत्मा की, कुछ उसको हम पल-पल परखें ।
भूले जो तो निश्चित ही वह, पद कृतघ्नता का पा जाये ।।
थे चित्त-सभूति श्रमरण उभय, साधन-सपन्न बली सम वे ।
एक आत्मबली एक देहबली, अतर निदान का रह जाये ।।
मिथ्यात्व-प्रबल आत्मा दुर्बल, सम्यक्त्व-प्रबल आत्मा है सबल ।
ब्रह्मदत्त-चित्त-मुनि-सी अनेक, घटनाए आगम मे आये ।।
हो शक्य उसे झट कर देना, शक्ति-व्याख्या सच्ची है यही ।
जो है अशक्य उसको करना, यह इच्छा ही मन क्यो लाए ।।
केवल बल बालक करता है, जो मिथ्यात्वी कहलाता है ।
जो हो विवेक बल-सह पडित, वह "श्रमरणलाल" कहला पाये ।

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचदजी म. सा.



(तर्ज नगर कीर्तन)

पाले तो कोई, श्रावक धर्म सुखदाय ।
जनम-जनम के दु ख मिट जाते परम आनंद-पद पाय ।।
सबसे पहले श्रवरण करो तुम, वीतराग की वाणी को
बनो तटस्थ पर से फिर समझो, निज-सम सब ही प्राणी को

देवादिक की तत्त्वत्रयी को, व्यवहारी घर निश्चय से
दृढ सम्यक्त्वी बन के विचरो, जग-जगल मे निर्भय से
इससे ही तो आत्मा देखो, पापो से न लेपाय "पाले " ॥

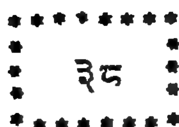
पच अणुव्रत मूल गुणो को, आजीवन करके धारण
तीन गुणव्रत वीन हृदय मे, सीमित करिये भवतारण
शिक्षाव्रत की चतुष्टयी से, नित नवीनता सस्कारण
शक्ति हो तो ग्यारह प्रतिमा, धरो कर्म के निर्जारण
ऐसो का तो शासनपति भी, श्रीमुख यश सुनवाय " पाले" ॥

अपने कारण सतजनों को, दोष नही लगने पाये
तरण-तारणी नावाओ में, छेद कही नही पड़ जाये
अग अपन हैं पूर्ण सघ के, इसको भूल नही पायें
स्वधर्मी के लिए कही, कर्त्तव्य शेष नही रह जाये
इन सब बातों पर भी अपना,रखना ख्याल सवाय पाले" ॥

पद्रह कर्मादानो से कोइ, सामग्री नहि चयन करें
वृत्ति वही आजीविका के, साथ व्रतो का वहन करें
सीमित कर आरंभ घटायें, परिग्रह की ना वृद्धि करें
सत्ता के नहि भाव रहे पर, सेवा-हित मन सज्ज करें
ऐसे श्रावक सघ-शिरोमणि, अपना धर्म निभाय' पाले" ॥

निज पर को वे तारे श्रावक, देखो आगम अभ्यासे
पाचवें आरे उत्तम श्रावक, पढलो वे तो इतिहासे
धनपालादिक सुबुद्धि श्री, रणजीतसिह जी जयपुरिया
मानव तो थे रहे परतु, जैसे कोई सुरपुरिया
नौ दो उनहत्तर माटुगे, "श्रमणलाल" बतलाय "पाले " ।

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म. सा.

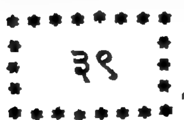


(तर्ज सेवो सिद्ध सदा जयकार)

सज मन शक्तियुक्त कर त्याग, समझ विष विषय-विकारो को ।।

जीव-अजीव-मिश्र इन तीनो, शाब्दिक आरो को ।
देख, विवेक भूल मत, मन धर, मृग-मणिधारो को ।।
वरण पच को वर न रच पर, वर सस्कारो को ।
परिहर सग, पतग-रग लख, इन अगारों को ।।
गध उपरि तू अंध न बन, स्मर, भ्रमर-गुजारो को ।
सुरभि-दुरभि पर समता रखकर, हर हुकारो को ।।
तिक्तादिक रस विरस, विसर मत, सुख-दीवारो को ।
स्वच्छ-सलिल-सचारि-मच्छ, बिछुडे परिवारो को ।।
स्पर्शाकर्षण से हर्षित हो, शुद्ध विचारो को ।
क्यो छोडे पुनि क्यो दौडे तू, गज-सचारो को ।।
स्वय इद्र हो, अरे जीव ! तू, इद्रिय-चारो को ।
प्रमुख बना, दुख क्यो लेता, सुन, धार्मिक नारो को ।।
कामगुणात्मक ग्रामधर्म यह, इष्ट गवारो को ।
"श्रमणलाल" निर्विषयी भर निज-गुण-भडारो को ।।

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म. सा.

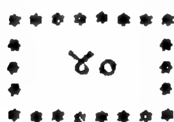


(तर्ज जब तुम्ही चले परदेश)

अब छोडो आप कषाय, बुझाओ लाय, ओ सज्जन प्यारा ।
सब करलो हृदय सुधारा ।।

अति उच्च मिला मनु-जीवन है, पुण्यानुसारी भी यह धन है।
फिर क्यो तुम करते हो, नीत-विकारा सब करलो'' ॥
नही लोभ छुटे तो मत दो तुम, पर औरो का क्यो हडपो तुम।
तृष्णा से भाई करलो जरा किनारा 'सब करलो'' ॥
कई नेम-धर्म हैं टूट रहे, धर्मी को धर्मी लूट रहे।
यो छूट रहा सद्गुण का साथ हमारा सब करलो' ॥
गुरु चाँद से शीतल पाये है, कर्मों से जीत दिलाये हैं।
वन लाल वहाओ धर्मध्यान की धारा सब करलो'' ॥
शुभ पुण्य से अवसर पाया है, नरतन पारस सुखदाया है।
क्यो अब भी उठाओ हाय, लोह का भारा सब करलो ' ॥
सबको माफी की दो भिक्षा, सतो की यह ही है शिक्षा।
अब कायरता का कोई, लो न सहारा सब करलो '' ॥
ये दो हजार उन्नीस वरस, चौमासा चलता बहुत सरस।
है "अमणलाल" ने भाव, भजन मे ढारा "सब कर लो'' ॥

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा.



(तर्ज ख्याल)

सुणजो भवि जीवा, मत दो किणने भी अतराय थे ॥
ज्ञान-ध्यान मे आडी देस्यो, अज्ञानी थे रेस्यो।
जनम-जनम लग ठोठ रेवोला, दोष प्रभु ने देस्यो रे' ।
गुरुदेवा रा दर्शन करता, जो देस्यो अंतराय।
आख्या सु कमजोर होवोला, शास्तर साफ सुनाय रे ॥

नौकर ने थे खाण-पीण रो, जो करस्यो इन्कार ।
भूखा मरता भटकोला थे, मगता ज्यू घर-द्वार रे ॥

नही करण दो धर्म-क्रिया थे, अटकावो जो रोडो ।
तो परभव मे पापी रेस्यो, जग मे सुख रो तोडो रे ॥

सामायिक-पडिकमणो-पौषो, करता करो मनाई ।
साव साफ आ बात सामने, नष्ट होवे पुन्याई रे ॥

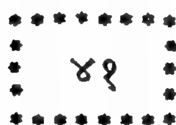
दीक्षा री मशा वाला ने, जो भिडकास्यो भाई ।
गू गा बोळा गेला होकर, दुऽख पास्यो दिन-राई रे ॥

नही करण दे तपश्चरण जो, रहे भूख रा काचा ।
महामोहणी करम बधे, बिन,भुगत्या ह्वै नही आछा रे ॥

दान देवता अटकावे जो, मिले न मागी चीज ।
शील पालता भाजो पाड़े, होवे मरने हीज रे ॥

दो हजार बावीस आषाढी, वद एकम कुज वार ।
चाद किरण "मुनिलाल" पेरबुर, बोले सभा मझार रे ॥

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा



(तर्ज विना रघुनाथ के देखे)

सबेरा हो गया है तो, अ-वेरा कर रहा क्यो तू ?
सु-वेला आ गई है तो, कु-वेला कर रहा क्यो तू ?

सुनहला सूर्य उग आया, सु-नहला ले स्मरण मे मन ।
सु-बह मे ले बहा निज को, बहाना कर रहा क्यो तू ॥

प्रभा तो खूब फैली है, जिनेश्वर के वचन-रवि की ।
मूद कर आँख अदर की, तिमिर मे फिर रहा क्यो तू ॥

समय प्रातः सुहाने मे, श्री अरिहत-सिद्ध-मुनिवर ।
और जिन-धर्म का शरणा, न दिल मे घर रहा क्यो तू ॥

क्षितिज मे पूर्व चमका है, चमकना सीखले तू भी ।
हटा अज्ञान का परदा, जगाता ज्ञान ना क्यो तू ॥

उदय और अस्त मे समता, तुम्हारे मे भी हो सकती ।
मगर परमात्म-वाणी पर, अश्रद्धा कर रहा क्यो तू ॥

श्रमण बन सिंह-सम गरजो, जैनशासन के इस वन मे ।
धुजा मिथ्यात्वि-गज-दल को, नही फिर घूमता क्यो तू ॥

"लाल" महावीर का है तो, धीर-गभीर बन करके ।
घोर ससार-सागर को, न झट से तैरता क्यो तू ॥

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म. सा.



(तर्ज सेवो सिद्ध सदा जयकार)

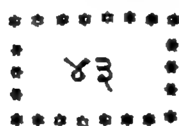
पाया मानव-तन है तो फिर, क्यो नहिं भज लेता भगवान् ॥

ऐसा भव आगे भी मिला था, किंतु न की पहचान ।
जग-जगल मे भटक गया जो, था बिलकुल सुनसान ॥

नरक लोक मे गया जहा पर, भोगे दुख असमान ।
अब क्यो वैसे कर्म करे फिर, समझ अरे नादान ॥

देवलोक में बना देव जहाँ, रहा विषय-गलतान ।
खोकर पूंजी पुण्य-सुकृत की, पडा यहाँ फिर आन ॥
पशु की योनि कई तरह की, भुगती है बे-भान ।
अब तो पशुता छोड बावरे, बनजा विवेकवान ॥
गया समय अधिकाधिक पहले, जिस-जिस गति दरम्यान ।
वही गिनाया ज्ञानी-जन ने, करले मन मे ज्ञान ॥
सासारिक सुख-दुख का ताता, सुर-नारक इक तान ।
मध्यम है तिर्यंच-मनुज का, तोडो पा निर्वान ॥
पूज्य जीत "लाल" शुभ पारस, मुनि नूतन सहु ठान ।
दो हजार तीस पोह पूनम, उच्च नानणा स्थान ॥

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा



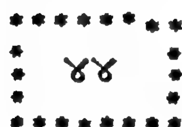
(तर्ज सभा मे मेरा तू ही करेगा. .)

धरम से तेरी, कश्ती लगेगी किनारे ॥

धन तो सारा धरा रहेगा, तन अग्नि मे अत दहेगा ।
परिजन केवल पुकारे ॥
अक्ल काम कुछ ना आयेगी, शक्ल खूब ना रह पायेगी ।
करम करे क्यो करारे ॥
पतित पुरुष पावन बन जाए, दानव-मानव सब अपनाए ।
सुरवर शरण स्वीकारे ॥
पढले तू जितना भी चाहे, किंतु कठिन परभव की राहे ।
बडे-बडे जहाँ हारे ॥

"श्रमणलाल" सच्ची जिनवाणी, जो धारे वह उत्तम प्राणी।
पाएगे सुख सारे.... ॥

—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा.



ये आये पर्यु षण आज है, कैसा खुश-दिल यह जैन समाज है।
निज आतम बनाने परमातमा, देखो सारा सजाया साज है॥

आगम वचेगा' जी मे जचेगा, सम्यग्दर्शन लहरेगा।
सवर होगा पौषघ होगा, कर्म-रोग-औषध होगा।
कैसी छटा रही यह छाज है, सब पर्वों का यह अधिराज है' ॥

सामायिको की पचरगिया नित, व्याख्यान मे तुम सब करना।
स्वधर्मी भाई बाई जो आये, उनकी सेवा मे चित घरना।
फिर चौपाई की आवाज है, जिससे मिटती दिलो की दाज है ।

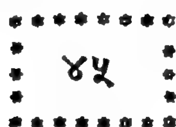
रात्रि को भोजन कोई न करना, लीलोती भी मत खाना।
प्रतिक्रमण मे पापो का विरमण, एकाग्र मन से कर जाना।
गुरुदेव रहे जो विराज है, भव-सागर तिराने की जहाज है ॥

वैर-विरोधो को है मिटाकर, क्षमा-याचना शुद्ध मन से।
आत्म-बोधन-हित जिन-स्तवन गा, समय बिताना अम्मन से।
फिर समाधान का काज है, पूछो विनय से मिलता राज है ॥

आठो दिवस तक ब्रह्मचर्य का, विधि से करना आराधन।
स्वास्थ्य-लाभ और मोक्ष-गमन का, सच्चा यही है एक साधन।
ये नाटक-सिनेमा के नाज हैं, नही बनना ऐसे कोई बाज है... ॥

बाजार पूरा बद ना रहे तो, व्यापार कुछ तुम मत करना ।
समय मिला है अनमोल हम को, शतरज चौपड से डरना ।
गुरुवर की कृपा सिरताज है, 'लाल' वीरो के नित रहे गाज है ।।

पर्युषण —उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा



पर्व पर्युषण के, आत्म-पोषण के, दिवस ये आये हैं ।।

और दिनो मे तन-पोषण की, रचना खूब रचाई जी
मन के कहे मुताबिक हमने, बातें खूब बनाई जी
इद्रिय-विषयन मे, घूम उपवन मे, खूब हरसाये है ।।

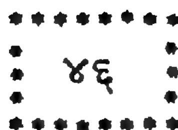
खान-पान मे खुल्ली छोडी, हमने जीभ चटोरी जी
माल-ताल मे जी ललचाकर, कर दी चट्ट कचोरी जी
अश्लील बोलन मे,दिल के खोलन मे,हम न सकुचाये है ।।

देखा नाटक खेल-कूद औ, रग-विरगी दुनिया को
सिने नटी के फोटो द्वारा, भूल गये निज विनया को
दगो को देखन मे, प्रेमी को पेखन मे, हृदय बहलाये है ।।

बन पडा तब तक तो हमने, रखी नही कुछ बाकी जी
नेम-धर्म के करन-समय मे, हमने गलिया ताकी जी
करम-भोगन मे,विवश हो मन मे, अति हि दुख पाये है' ।।

इच्छा-पूर्वक यहा जो अब भी, धर्म क्रिया कुछ कर लेवे
तो सब कर्मों के बधन को, शीघ्र नष्ट हम कर देवे
चाद-सम चमके, प्रभुजी को नमके,"लालमुनि" गाये है ।।

पर्युषण —उपाध्यायप्रवर श्री लालचदजी म सा.



(तर्ज . पछी बावरिया'' ')

हीरा जन्म गवाये, दया बिन बावरिया ।।

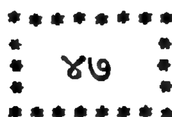
कोमलता का भाव न मन मे ।
फिर क्या सुदरता से तन मे ।
जीवन विष बरसाये, दया बिन बावरिया ' ।।

दीन-दु खी को सेवा करले ।
पाप-कालिमा अपनी हरले ।
तिहुँ जग मगल गाये, दया बिन बावरिया ।।

धन-लक्ष्मी का गर्व न करना ।
आखिर सब को तजकर मरना ।
पर-हित क्यो न लुटाये, दया बिन बावरिया ।।

यह जीवन है एक कहानी ।
पाप-पुण्य है शेष निशानी ।
'अमर' सत्य समझाये, दया बिन बावरिया ।।

—उ अमरमुनि जी म.



सच्चा भगत बन जाऊ, भगवान् तुम्हारा अब मैं ।।

क्रोध निकट नही आने देऊ, शस्त्र अचूक क्षमा का लेऊ ।
दूर ही मार भगाऊ . भगवान् तुम्हारा अब मै ।।

सत गुणी जन जब मिल जावे मद-मत्सर नही मन मे आवे ।
सादर शीश झुकाऊ भगवान् तुम्हारा अब मैं ॥

सत्य-शख का नाद बजाके, उथल-पुथल की क्राति मचाके ।
सोया जगत जगाऊ भगवान् तुम्हारा अब मैं ॥

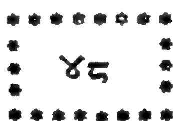
न्याय-मार्ग से मुख नही मोडू , स्वीकृत प्रण की मेड न छोडू ।
कर्त्तव्य-पथ बलि जाऊ भगवान् तुम्हारा अब मैं ॥

प्राणी-मात्र को अपना भाई, चाहू सब की करू भलाई ।
सेवा मत्र बनाऊ . भगवान् तुम्हारा अब मैं ॥

ऊच-नीच का भेद न मानू , गुण-पूजा का महत्त्व पिछानू ।
व्यक्ति न व्योम चढाऊ भगवान् तुम्हारा अब मै ॥

करुणा-निधिवर करुणा कीजे, आत्मिक बल कुछ ऐसा दीजे ।
"अमर" अमर हो जाऊ भगवान तुम्हारा अब मैं ॥

—उ अमरमनि जी म



धर्म की पू जी कमाले, कमा ले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ॥

जीवन-पट वे-रग है कब से ?
सयम - रग चढाले, चढाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ॥

बागे - जहाँ मे अपना जीवन—
पुष्प सुगन्ध बनाले, बनाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ॥

अखिल विश्व के दलित वर्ग की,
सेवा का भार उठाले, उठाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ॥

सोया पड़ा है अन्तर चेतन।
सत्सग बैठ जगाले, जगाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ।।

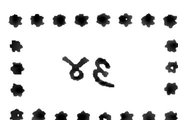
मोह-पाश के दृढ बधन से,
अपना तू पिड छुडाले, छुडाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ।।

हो तू भला इतना कि रिपु भी।
चरणो मे शीश झुकाले, झुकाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ।।

राग-द्वेष का जाल बिछा है।
दूर से राह बचाले, बचाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ।।

"अमर" सुयश के वाद्य वजेंगे।
सत्य की धूनी रमाले, रमाले, जीवा ! जीवन बन जाएगा ।।

—उ. अमरमुनि जी म.



होवे धर्म-प्रचार प्यारे भारत मे ।।

ईर्ष्या करे न कोई भाई, दिल मे सब के हो नरमाई।
सरल वने नर-नार प्यारे भारत मे ।।

मदिरा मास जुआ और चोरी, दूर हो जग से रिश्वत-खोरी।
ना खेले कोई शिकार प्यारे भारत मे ।।

मुनि गुणी जन जितने आवे, सारे उनसे लाभ उठावे।
लेवे जनम सुधार प्यारे भारत मे ।।

तजकर निंदा-झूठ-लडाई, गले मिले सव भाई-भाई।
वहे प्रेम की धार प्यारे भारत मे ।।

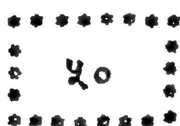
मुख से कोई न देवे गाली, बोली बोले इज्जत वाली ।
मीठी और रसदार..प्यारे भारत मे ॥

महावीर के बने पूजारी, सत्य-अहिंसा-दया के धारी ।
मत्र जपे नवकार प्यारे भारत मे ॥

धर्म का झडा फहरे फर-फर, नाम प्रभु का गू जे घर-घर ।
होवे जय-जय - कार प्यारे भारत मे ॥

"चदन" और कहे क्या ज्यादा, वेश व भोजन सब हो सादा ।
सादा हो घरबार प्यारे भारत मे ॥

—श्री चदनमुनि जी म 'पजाबी'



(तर्ज रेशमी सलवार)

प्यारा भगवन् नाम, हमेश चितारो जी ।
हीरा जनम अमोल, मुफत ना हारो जी ॥

रगीन नजारे जग के, जो दिल को बहुत लुभाते ।
है केवल एक छलावा, फिर नर्क गति दिखलाते ।
नयन उघाड़ो जी हीरा जनम अमोल मुफत ना हारो जी ॥

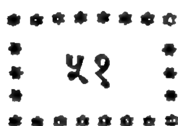
ना चीज उठाओ पर की, ना भूल करो बेईमानी ।
नित सदाचार को पालो, ना बोलो कड़वी वाणी ।
सत्य उचारो जी हीरा जनम अमोल मुफत ना हारो जी ॥

हैं प्यारे प्राण सभी को, सब जीना चाहते प्राणी ।
इस दिल मे करुणा भरके,तुम बनो दयालु दानी ।
जीव ना मारो जी हीरा जनम अमोल मुफत ना हारो जी ॥

तन इत्र से जिनके तर थे,और मुख में पान के बीडे ।
इक रोज जो देखा उनकी,इस देह में पड़ गये कीड़े ।
मान निवारो जी हीरा जनम अमोल मुफत ना हारो जी ॥

इक बार जो पत्ता टूटे, ना जुडता फेर दुबारा ।
इस जीवन ताइ "चदन", है करता साफ इशारा ।
जरा विचारो जी · हीरा जनम अमोल मुफत ना हारो जी ॥

—श्री चदनमुनि जी म. 'पजाबी'


५१

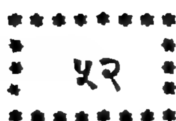
सपने सरीखी तेरी बीती रे उमरिया,
डगमग डोले तेरी नावड़ियां·· तेरी · ॥

पाप की गठरिया ले, साथ यदि जायेगा ।
मझधार डूबेगा, रोयेगा पछतायेगा ।
मोह - नीद त्याग, जाग बावरिया जाग · ॥
भूल रग-रलिया, कलिया मुरझायेगी ।
चाद-सी सलौनी रानी, फेर नही आयेगी ।
चार दिनो की, तेरी चादनिया तेरी ॥

नाजुक वदन ढल, जायेगा खो जायेगा ।
एक दिन आग के, विछौने पे सो जायेगा ।
पडी रहेगी, तेरी धन - डलियां तेरी ॥

तोड़ पाप - बधनो को, आदतें सुधार ले ।
ज्ञान का श्रृगार कर, जीवन सवारले ।
'कुमुद' बजाले, धर्म-वासुरिया धर्म ॥

—श्री सौभाग्यमुनि जी 'कुमुद'



(तर्ज जब तुम्ही चले परदेश ')

दिल तोल-तोल कर बोल, वचन अनमोल,
खोल मृदु वाणी.. जिससे सुधरे जिंदगानी ' ॥

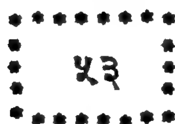
तलवार के मिट जाये झटके, नही मिटे वचन जो हिय खटके ।
दिल चीर-चीर कर रहे हरा बिन पानी ' जिससे'' ॥

है वचन-वचन में भेद बडा, एक वचन करे नूतन झगडा ।
एक वचन है अमृत-घूट सरस-रस पानी' 'जिससे ' ॥

झूठी भाषा का पाप तजो, और मर्म-वचन सलाप तजो ।
कौरव-पाडव की युद्ध की जड़ पहचानी ' जिससे ॥

वाणी अमृत का स्रोत बहे, सुनने वाले का हृदय चहे ।
बोलो वह वाणी 'कुमद' जगत-कल्याणी जिससे ' ॥

—श्री सौभाग्यमुनि जी 'कुमुद'



(तर्ज खडी नीम के नीचे)

बन्दे क्यो रोता है तू तकदीर को '' ।
हिम्मत से ले काम, बना ले साथी तू तदबीर को '' ॥

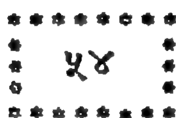
हिम्मत का है राम हिमायती महिमा बडी निराली है ।
यह अद्भुत शक्ति है जिसका, वार न जाता खाली है ' ।
चला देखले हिम्मत के इस तीर को' ' ॥

तजकर के पुरुषार्थ अगर तू, आँसू यू ही बहायेगा ।
समय सुनहरा बीत गया तो, फिर पीछे पछतायेगा ।
व्यर्थ बहाता क्यो नयनो के नीर को ॥

गैरो का क्यों करे भरोसा, तूं खुद ही निर्माता है ।
तू खुद ही है शक्ति-पुन्ज और, खुद ही भाग्य-विधाता है ।
शोभा देती नही कायरता वीर को ॥

निराशा को छोड बढा दे, पग जीवन-मैदान मे ।
"कीर्तिमुनि" कहे सीना ताने, बढता चल तूफान मे ।
सफल बनाले तू इन्सान शरीर को ॥

—श्री कीर्तिमुनि जी म.



(तर्ज : रिमझिम बरसे बादरवा)

पल-पल बीते उमरिया मस्त जवानी जाये ।
प्रभु-गीत गाले - गाले प्रभु - गीत गाले ॥

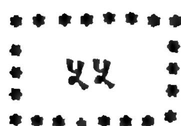
प्यारा-प्यारा बचपन पीछे, खोगया-खोगया ।
यौवन पाके तू मतवाला, हो गया-हो गया ।
बार-बार नही पावे रे बहती है गगा प्यारे ।
मौका है न्हाले - गाले प्रभु - गीत गाले ॥

कैसे-कैसे बाके जग मे, हो गये - हो गये ।
खेल-खेल कर अत जमी पर, सो गये - सो गये ।
कोई अमर नही आया रे पछी ये फूल रगीले ।
मुर्झाने वाले - गाले . प्रभु - गीत गाले ॥

तेरे घर मे माल - मसाले, होते हैं - होते है ।
भूख के मारे कई बेचारे रोते है - रोते हैं ।
उनकी कौन खबर ले रे जिनके नही तन पर कपडे ।
रोटियों के लाले - गाले . प्रभु-गीत गाले ॥

गौरा-गौरा देख वदन क्यों, फूला है - फूला है ।
चार दिनो की जिंदगानी पर, भूला है - भूला है ।
जीवन सफल बनाले रे "केवल मुनि" समझाये ।
ओ जाने वाले गाले - गाले प्रभु-गीत गाले ॥

—श्री केवलमुनि जी म.



(तर्ज जरा सामने तो आओ छलिये...)

जरा धर्म की तो गठरी बाधो, मौत मस्तक पे हो रही सवार है ।
आता-आता ही श्वास रुक जायेगा इस श्वास का न कोई इतवार है ।

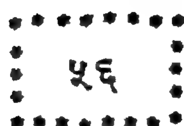
आने के बाद मौत कुछ भी न होगा, यो ही तडफ मर जाओगे ।
मन की मुरादे मन मे रहेगी, पूरी कर नही पाओगे ।
बाधो पानी से पहले पाल है, सुखी बनने का गर जो खयाल है ॥

कल पर धरम को बिलकुल न छोडो, कल क्या पता क्या हो जाए ।
बदले मे राज के वनवास हो गया, रघु भी समझने नही पाए ।
औरो का फिर क्या सवाल है, प्रभु-भक्ति ही जग मे सार है ॥

जीवन की जो पल है बीत जाती,वापिस न फिर वह आ सकती ।
आती को पकड़ो जाने लगेगी, फिर तो न पकड़ी जा सकती ।
धर्म करने का अवसर उदार है, प्यारे प्रभुजी ही तारणहार है ॥

माता के तुल्य परनारी को समझो,मिट्टी-सा समझो तुम परधन ।
आत्मा के तुल्य सब जीवो को समझो,शिक्षा सुनाता है'मुनिधन' ।
ज्ञान सुनने का फिर यही सार है, कुछ ले लो तो बेडा पार है ॥

—मुनि श्री धनराज जी म.



(तर्ज छुप छुप आते हो....)

देव-गुरु-धर्म तत्त्व, तीन ये महान हैं ।
इन्हे पहचाने वह, सच्चा बुद्धिमान है ॥

कर्म तोड़ महावीर, अरिहंत हो गये
फिर सर्व जग-हित, देशना सुना गये, जी ।
तू भी मीठा घूंट पीले, अमृत महान है ॥

वीर - पुत्र महामुनि, कर्मों से जूझते
भौतिक सुखो को छोड,आत्म-सुख ढूंढते,जी ।
षट्काय-प्रतिपाल, गुण के निधान हैं ॥

अहिंसा प्रधान धर्म, वीर ने बताया है
तेरी पुण्यवानी महा,जो कि हाथ आया है,जी ।
प्रेम से जो पाले, वह, पावे निर्वाण है ॥

तत्त्व क्या है रत्न हैं ये, मूल्य न अकात है
सकट मे, सुख मे ये, जन्म-जन्म साथ हैं, जी ।
केवल यो 'पारस' को, देत ज्ञान-दान है ॥

—श्री पारसमुनि जी म



(तर्ज जहां डाल-डाल पर सोने)

है तेरे अतर मे अनत, आनद-सिन्धु लहराता,
फिर क्यो बाहर भरमाता।

क्यो एक बिन्दु मधु-बूद स्वाद-हित, जन्म-मरण-दुख पाता,
तू क्यो पर मे ललचाता ॥

सुख-दुख दोनो क्षण-भगुर हैं, हर्ष-शोक क्या करना।
फिल्म-हॉल मे बैठ के पगले, क्या रोना क्या हँसना।
यह भी देखा, वह भी देखले, इनमे क्यो बह जाता?
फिर क्यो बाहर भरमाता ॥

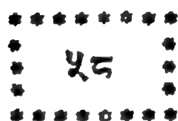
क्रोध-लोभ-मद-मोह-मान, माया जीवन की छलना।
क्षण-प्रतिक्षण जागृत हो रहना, हो न कही कुछ स्खलना।
जो सावचेत, जो सावधान वो, सत्वर मजिल पाता,
फिर क्यो बाहर भरमाता ॥

आज बिछुडना काल मिलन है, उदय-अस्त जीवन मे।
उन्नत-अवनत छाया घटती, बढती है जन-जन मे।
सुख-दुख-दाता कोई नही तू, स्वय स्वय-निर्माता,
फिर क्यो बाहर भरमाता ॥

नित्य निरजन निर्मल निर्मम, निराकार निर्भय तू।
अजर अमर अविचल अविनाशी, अमल अखड अमृत तू।
शुद्ध-बुद्ध-परिभुक्त-मुक्त तू, ही है भाग्य-विधाता,
फिर क्यो बाहर भरमाता ॥

द्वन्द्व-क्लेश उलझने अशाति, सुख-दु:ख निपट निराला।
ज्ञाता द्रष्टा साक्षी तू तो, वीतराग गुण वाला।
स्वर्ण "विचक्षण" ज्ञान-ज्योति से, अमर पार भव पाता,
फिर क्यों वाहर भरमाता" ।।

–स्व साध्वी श्री विचक्षणश्री जी म.



प्रेमी वनकर प्रेम से, जिनवर के गुण गाया कर।
मन-मंदिर में गाफिले, झाड़ू रोज लगाया कर।।

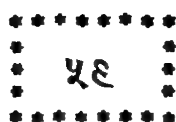
सोने मे तो रात गुजारी, दिनभर करता पाप रहा।
इसी तरह वर्वाद तू वदे, होता अपने आप रहा।
प्रात:काल उठ प्रेम से, सत्सगत मे आया कर।।

नरतन के चोले का पाना, वच्चो का कोई खेल नही।
जनम-जनम के शुभ कर्मों का, मिलता जब तक मेल नही।
नरतन पाने के लिए, उत्तम कर्म कमाया कर. . ।।

भूखा-प्यासा पडा पडौसी, तेने रोटी खाई क्या।
दुखिया पास खडा है तेरे, तेने मौज उडाई क्या।
सवसे पहले पूछकर, भोजन तू फिर खाया कर .।।

देख 'दया' उस वीर प्रभु की, जिनशासन का ज्ञान दिया।
जरा सोचले अपने मन मे, कितनो का कल्याण किया।
सव कामो को छोड कर, उसको ही तू ध्याया कर....।।

–दया वाई



(तर्ज नाथ कैसे गज को फद)

चेतन रे तू ध्यान आरत क्यो ध्यावे ।
जासो नाहक करम बधावे ॥

जो-जो ज्ञानी भाव देखिया, सो-सो हि वरतावे ।
घटे-बढे नही रच-मात्र भी, काहे को जीव डुलावे ॥

जलत काल जे चिता अग्नी, उपजे सो विनसावे ।
शोकातुर बीते दिन-रजनी, धरम-ध्यान घट जावे ॥

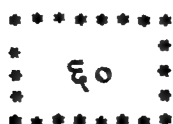
सुख से निद्रा नहिं आवे ने, अन्न-उदक नहिं भावे ।
पहिरण-ओढण चित्त नहि चावे, राग-रंग न सुहावे ॥

सुख न रह्यो तो दुःख किम रेसी, ओ भी शायद मिट जावे ।
कर्म बाध्या सो भोगणा पडसी, ज्ञानी जन समझावे ॥

भुगत्या बिन छूटे नहिं कबहु, अशुभ उदय जब आवे ।
साहुकार शिरोमणि सो ही, हर्ष सू कर्ज चुकावे ॥

प्रभु-सिमरण-युत तप करता, दुःख तुरत जल जावे ।
"जेठमल्ल" कहे सम-रस पीता, तुरत हि आनद आवे ॥

—श्री जेठमल जी चोरडिया, जयपुर



भूल्यो मन-भवरा काई भमे, भमियो दिवस ने रात ।
माया रो लोभी प्राणियो, मरने दुर्गति जात ॥१॥

कुभ काया रे काची कारमी, जिणरा करे रे जतन।
कोई साथे चाले नही, निर्मल राखजो मन ॥२॥

केहना छोरू ने वाछरू, केहना माय ने बाप।
ओ प्राणी जासी एकलो, साथे पुण्य ने पाप ॥३॥

आशा तो डूगर जेहवी, मरणो पगल्या रे हेट।
धन-सचय करि काई करो, करो जिन जी री भेंट ॥४॥

मूरख कहे धन माहरो, वो धन खर्चे न खाय।
वस्त्र विना जाय पोढियो, लखपति लकडा रे माय ॥५॥

लखपति छत्रपति सब गया, गया लाखा पे-लाख।
गरव करता ने गोखा वेसता, जल-वल हो गई राख ॥६॥

ऊचा जी महल बनावता, करता होडाहोड।
चिट्ठी पहुची काल री, गया पलक मे छोड ॥७॥

उलटो नदी रे मारग चालणो, जाणो पेले पार।
आगे नही हट बाणियो, खरची ले लो रे लार ॥८॥

खावे पीवे ने हसे रमे, जपे नही नवकार।
दान - शील - तप - भाव मे, समझे नही लगार ॥९॥

भव-सागर दुख - जल भर्यो, जेहनो छेह न पार।
बीच में छे अतर घणो, कर्म - वायु झवकार ॥१०॥

जिण घर नोबत बाजती, होती छत्तीस राग।
ते मदिर खाली पड्या, बैठण लाग्या काग ॥११॥

परदेशी पर-देश मे, किण सू करे सनेह।
आया कागद उठ चालणो, आधी गिणे न मेह ॥१२॥

घघो करी ने धन जोडियो, लाखा ऊपर कोड।
मरती बेळा मानवी, लेसी कदोरो तोड ॥१३॥

केई चाल्या ने केई चालसी, केई चालणहार ।
खुद ने भी एक दिन चालणो, थिरता नहिं रे ससार ।।१४।।

जिण बिन एक घड़ी सुधी, सरतो नही लगार ।
वर्ष घणा ही बीतिया, सूरत दिवी रे विसार ' ।।१५।।

सोवन गढ लका - पति, तेह नो रावण नाथ ।
अत समय गयो एकलो, नहिं काइ ले गयो साथ··· ।।१६।।

काया जाती इम कहे, नहिं कुछ दीनो हाथ ।
लाडू दिया दोय चूर ने, फूटी हाडी रे साथ ।।१७।।

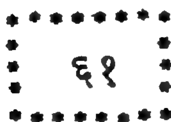
धरती अखड कुवारि आ, वरिया केता जवान ।
मेरी-मेरी कर गया, हिन्दू-मूसलमान ।।१८।।

धरणी हुई नही केहनी, वरिया केई लाख ।
मूसलमान तो गड गया, हिन्दू हो गया राख ।।१९।।

मूमण सागर धन जोडियो, अरब-खरब री जोड ।
खायो - पीयो - दीयो नही, मरिया माथो फोड ।।२०।।

'महम्मद' कहे श्रोता सुणो, कर लो धरम रो साथ ।
नियाणो तो करजो मती, सब सुख हाथो-हाथ ।।२१।।

—हीरा महम्मद



(तर्ज कद आवोला सावरिया)

जागो-जागो जी चेतन नैना खोल, थारी बारी आवेला ।
मानव-जीवन री आ बेला अनमोल, यू ही बीती जावेला ।।

सूता काई मोह-नीद मे काल-नगारा वाजे ।
सत-सजन सब बढ्या जा रह्या, थारो पाणी लाजे ।
ऊठो-ऊठो जी अतर-पट खोल, थांरी बारी आवेला ॥

थारो मारग लाबो बाकी, यू काई भूल्या भाई ।
यो विश्राम-समय नही थारो, अतिम घड़िया आई ।
ऊठो-ऊठो जी बिस्तर करो गोल, थारी बारी आवेला ॥

पायोड़ो अवसर खो देसो, थे मूरख कहलासो ।
सिर धुन-धुन कर हाथ मलोला, बार-बार पछतासो ।
थालो याद करो गुरु-बोल, थारी बारी आवेला ॥

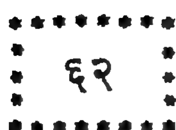
सत सुनावे बात ज्ञान की, एक न लागे थाने ।
ढीठाई री ओढ़ गूदडी, भटको छाने-छाने ।
थारा काना री खिडकिया खोल, थारी बारी आवेला ॥

घर मे थारे हानि होवे, लोग तमाशा देखे ।
परभव थांरी जाच होवेला, कर्म-राज जी लेखे ।
पछे हिया मे उठेला थारे होल, थारी बारी आवेला ॥

उठो उतारो ढीठ गूदडी, सन्मारग पर लागो ।
सद्गुरु-सेवा जिनवर-भक्ति, ज्ञान-चेतना जागो ।
देखो पायो है समय अनमोल, थारी बारी आवेला ॥

स्वर्ण समान शुद्ध बन जाओ, ज्ञान विचक्षण पाओ ।
भव-सागर की विकट भवरिया, सद्गुरु-सग तिर जाओ ।
समझो मिनख-जनम रो मोल, थांरी बारी आवेला ॥

—श्राविका भवरी बाई



(तर्ज फागण की ऋतु आई रे ')

नीठ मानव-भव पायो रे, जरा करले कमाई
करले कमाई, सुण मेरे भाई
हाथ मे हीरो आयो रे, जरा करले कमाई ।

लबो आउखो, पूरण इन्द्री ।
शरीर निरोगो पायो रे, जरा करले कमाई ।

दौलत तेरे, काम न आवे ।
काया को देख लुभायो रे, जरा करले कमाई ॥

सत्सगत को, भूल न जाना ।
धर्म अमोलक पायो रे, जरा करले कमाई ॥

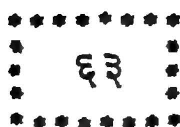
सत-समागम, मिलिया है साधु ।
अनुभव-प्याला पिलायो रे, जरा करले कमाई ॥

सुदर काया, देख लुभायो ।
विरथा ही जन्म गवाया रे, जरा करले कमाई ॥

दीनन के हित, कोडी न खर्ची ।
अपनो हि पेट भरायो रे, जरा करले कमाई ॥

'हसराज' है, पद्य बनायो ।
प्रेम-मगन होय गायो रे, जरा करले कमाई ॥

—हसराज जी कर्णावट, जोधपुर



(तर्ज म्हाने अवके बचाले मारी माय)

मैं तो ढूंढ्यो रे सहु जग माय, सुखी ना मिलियो एक भी ॥

हाट हवेली भरया खजाना, भोगण वालो नाय ।
भाटो-भाटो देव मनावे, पुत्र विना झूरे माय ॥

पैसो पायो नाम कमायो, करे सगाई बात ।
कवर साहब कपूता जन्म्या, बापूजी रोवे दिन-रात ॥

पदमण मिली दयालु कही पर, सेठ न लावो लेय ।
मिली कर्कशा नार करम सू, खावे न खावण देय ॥

छप्पर पलग महल-माळिया, जाळी झरोखादार ।
बिना कथ के झूरे कामणी, खारा लागे रे घरबार ॥

करी कमाई लक्ष्मी पाई, बगला मोटर-कार ।
बिना नार के लगे अलूणा, छोड गई रे मझधार ॥

देह मिली देवा-सी सुन्दर, रोग न छोडे लार ।
ओडपरया ने खाता देख्या, पालक की सब्जी लूखो आहार ॥

पलटन-सी है बढ रही घर मे, पर आमदनी नांय ।
कन्या कोई के चार कवारी, कोई कमावा नही जाय ॥

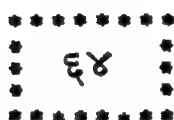
एक उदर का जाया लड़े नित, कोई बहु परिवार ।
कोई कवारा कोई दु.खिया, कोई दिवाळया कर्जादार ॥

धन वैभव पद पायो ऊचो, नही बोलण का ढग ।
कवि पडित लेखक ज्ञानी ने, पैसा सू देख्या है तग ॥

कोई के काई कमी है घर मे, कोई के काई दुःख ।
इण ससार-समदर माही, दुख तो घणा ने थोडा सुख ।।

इण जगती सू जो मुख मोडचा, लाग्या धरम के पथ ।
मन ने जीत्या "जीत" जगत मे, साँचा सुखी है निर्ग्रन्थ ।।

—श्री जीतमल जी चौपडा, अजमेर



(तर्ज म्हाने अबके बचाले मारी माय)

अब तो घुडला पर घूमे थारो बीद, वेळा तो आई तोरण की ।।

चमचम चमके केश सुनहरा, इद्रिया छोडी कार ।
नैण न दीखे कान सुने ना, मुखडा सू पड रही लार ।।

तड-तड बोले तन की कडिया, रग-रग रोग अपार ।
थर-थर धूजे अग आज तो, लकडी उठावे सारो भार ।।

रग-महला मे मौज माडता, पडचा पोल मे जार ।
कोडी न छोडी पास मे रे, अब कुण पूछे थारी सार ।।

विषय-भोग मे इद्रिया पोखी, नही राखी प्रभु साख ।
जब हसो उड जावसी रे, जळ-बळ होसी सारी राख ।।

धर्म कर्म नही कीनो बदा, रख्यो बुढापा ताय ।
मूरख सोचे काल की रे, पल मे प्रलय होय जाय ।।

श्वास-खास और हाय-हाय मे, तप-जप होवे नाय ।
मुख से प्रभु को नाम न निकले,मन की रह जासी मन माय' ।।

दान-पुण्य का भाव हुआ तो, परवश हो गयो आज ।
कलम चली जद कुछ नही कीनो,अब नही देवे कोई साज" ।।

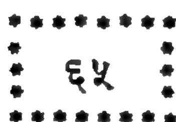
माया की मस्ती मे झूल्यो, नही परख्यो संसार ।
खेत चिड़कला चुग गया रे, हाथा सू बाजी गयो हार "।।

लख चौरासी घूमतां रे, नर-तन लीनो जोय ।
बिजळी-भळके मोतीडो रे, पोय सके तो लीजे पोय ।।

पाप-पुण्य सग जासी थारे, ले ले खरची लार ।
चेत सके तो चेत दीवाना, अब तो पाहुणो दिन चार ।।

काल सिरहाणे घूम रह्यो ज्यू, तोरण आयो बीद ।
जाग-जाग ओ "जीत" कैसे, सूतो है सुख-भर नीद ।।

—श्री जीतमल जी चौपडा, अजमेर



चतुर नर अर्थ विचारो रे, ज्ञानी, जतन करो छ काय ।।

पृथ्वी एक कणूकडे मे, जीव कह्या जिनराय ।
पारेवा सम काया करे तो, जबूद्वीपे न माय ।।

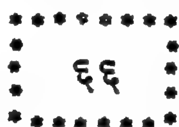
डाभ-अणी जल - बिंदुवे मे, जीव कह्या जिनराय ।
भमरा-सम काया करे तो, जबूद्वीपे न माय ।।

तेऊ एक तुणगिये मे, जीव कह्या जिनराय ।
सरसव-सम काया करे तो, जबूद्वीपे न माय ।।

वायु एक झबूकडे मे, जीव कह्या जिनराय ।
खस-खस सम काया करे तो, जबूद्वीपे न माय ।।

वनस्पति तीन जात री जी, भेद कह्या जिनराय ।
सूक्ष्म-बादर-साधारणे, असख-अनत कहवाय ।।

त्रस-थावर हिंसा करे, साधु - श्रावक नाम धराय ।
राजा लूटे रैयत ने तो, कहा पुकारे जाय . ॥
अमृत सू जीवित घटे ने, जल मे लागे लाय ।
साधू हुय जीव ने हणे तो, चौडे भूल्या जाय ॥
सुत अपनो बेचे पिता, मां मारे जहर खवाय ।
वाड भखे जो काकडी जी, तिनको कौन उपाय. ॥
धरणि धसे पाताल मे, समदर कार लोपाय ।
जहाज डुबावे लोक ने तो, साधु हणे छ काय . ॥
पन्नवणा माहे कह्यो, आगम-साख सुणाय ।
बहुश्रुती दृष्टात मे जी, "कुशल" कहे समझाय ॥



(तर्ज दिल लूटने वाले जादूगर)

यदि भला किसी का कर न सको तो, बुरा किसी का मत करना ।
अमृत न पिलाने को घर मे तो, जहर पिलाते भी डरना ॥

यदि सत्य मधुर ना बोल सको तो, झूठ कठिन भी मत बोलो
यदि मौन रखो सबसे अच्छा, कम से कम विष तो मत घोलो
बोलो तो, पहले तुम तोलो, फिर मुख-ताला खोला करना ॥

यदि घर न किसी का बाध सको तो, झोपडिया न जला देना ।
यदि मरहम-पट्टी कर न सको तो, खार नमक न लगा देना ।
यदि दीपक बनकर जल न सको तो, अधकार भी मत करना ॥

यदि फूल नही बन सकते तो, काटे बन कर न बिखर जाना ।
मानव बनकर सहला न सको तो,दिल भी किसी का दुखाना ना ।
यदि देव नही बन सकते तो, दानव बनकर भी मत मरना ॥

"मुनि पुष्प" अगर भगवान नही तो, कम से कम इन्सान बनो ।
किंतु न कभी शैतान बनो और, कभी न तुम हैवान बनो ।
यदि सदाचार अपना न सको तो, पापो मे पग मत धरना ॥



(तर्ज पनजी मू ड बोल)

बोल-बोल आदेश्वर म्हाला, काई थारो मरजी रे
म्हासु मूंडे बोल ॥

मां मरुदेवी वाट जोवती, इतरे वधाई आई रे ।
आज ऋषभ जी उतरया बाग मे, सुन हरसाई रे ॥

न्हाय-धोय ने गज-असवारी, करी मरुदेवी माता रे ।
जाय बाग मे नदन निरख्यो, पाई साता रे ॥

राज छोडने निकल्यो ऋषभो, आ लीला अद्भूती रे ।
चमर छत्र ने और सिंहासन, मोहनी मुरती रे ॥

दिन भर बैठी वाट जोवती, कद म्हारो ऋषभो आवे रे ।
कहती भरत ने आदिनाथ री, खबरा लावे रे ॥

किस्या देश मे गयो बालेसर, तुम बिन वनिता सूनी रे ।
बात कहो दिल खोल लाल जी, क्यो बणग्या मूनी रे ॥

रहया मजा मे है सुखसाता, खूब किया दिल चाया रे ।
अब तो बोल आदेश्वर म्हासु, कळपे काया रे ॥

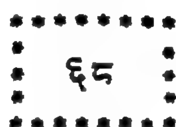
खैर, हुई सो हो गई वाला, बात भली नही कीनी रे ।
गया पछै कागद नही दीनो, खबर न लीनी रे ॥

ओलम्भा मैं देऊ कठा तक, पाछो क्यू नही बोले रे।
दुःख जननी रो देख आदेसर हियडो तोले रे ॥

अनित्य भावना भाई माता, निज आतम ने तारी रे।
केवल पामी मोक्ष सिधाया, वदना म्हारी रे ॥

मुगति रा दरवाजा खोल्या, मोरा देवी माता रे।
काल असख्या रह्या उघाड़ा जबू, जड़ गया ताला रे ॥

साल बहोतर तीरथ ओसिया, "घेवर" प्रभु-गुण गाया रे।
सुरत मोहनी प्रथम जिनद की, प्रणमू पाया रे ॥



(तर्ज घर आया मेरा परदेशी)

जीवन सफल बना प्राणी, चार दिनो की जिंदगानी ॥

भटकत-भटकत आया है, मुश्किल नर-तन पाया है।
कुछ तो सोच-समझ प्राणी, चार दिनो की जिंदगानी ॥

जग ये मुसाफिर खाना है, सब कुछ छोड के जाना है।
गफलत मत कर नादानी, चार दिनो की जिंदगानी ॥

मुट्ठी बाध के आया है, सुकृत का फल पाया है।
खाली हाथ न जा प्राणी, चार दिनो की जिंदगानी ॥

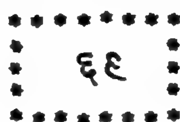
मात-पिता-भगिनी-भ्राता, मरते को नहिं रख पाता।
मूरख मन अपना जानी, चार दिनो की जिंदगानी ॥

धन-दौलत सब सपना है, किया धर्म जो अपना है।
कर-कर-कर कुछ तो प्राणी, चार दिनो की जिंदगानी ॥

चार कोश जब जाता है, खर्ची ख्याल मे लाता है।
परभव दूर बहुत प्राणी, चार दिनो की जिंदगानी ।।

करना-करना करता है, कामभोग चित्त धरता है।
अजब लगन तेरी जानी, चार दिनो की जिदगानी ।।

सुनकर के मत रह जाना, कुछ निश्चय करके जाना ।
'घन्न' वक्त फिर नही आनी, चार दिनो की जिंदगानी ।।



मुसाफिर[1] क्यो पडा सोता, भरोसा है न इक पल का ।
दमादम बज रहा डंका, तमाशा है चलाचल का ।।
सुबह जो तख्त शाही पर, बडे सज-धज के बैठे थे ।
दुपहरे वक्त मे उनका, हुआ है वास जंगल का ।।
कहाँ हैं राम और लक्ष्मण, कहाँ रावण-से बलधारी ।
कहाँ हनुमान-से योद्धा, पता जिनके न था बल का ।।
उन्हो को काल ने खाया, तुझे भी काल खायेगा ।
सफर सामा बढा ना तू, बना ले बोझ को हलका ।।
जरा-सी जिंदगी पर तू, न इतना मान कर मूर्ख ।
यह जीवन चद दिन का है, कि जैसा बुदबुदा जल का ।।
नसीहत मानले "ज्योति", उमर पल-पल मे कम होती ।
जो करना आज ही करले, भरोसा कुछ न कर कल का ।।



(तर्ज प्रभाती)

वीती रात हुओ अब तडको, अब जागण की वारा रे ।।

कोई नही तेरा तू नही किसको, तू सब सेती न्यारा रे ।
छोड जजाल अरे अब चेतन, करले जीवन सुधारा रे `` ।।

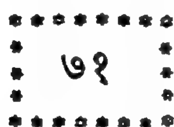
मोह-मिथ्यात की नीद घणेरी, सोया काल अपारा रे ।
अब जागरण की बार भई है, जागो चेतन प्यारा रे ।।

कुण तेरा तात कुण तेरी माता, कुण तेरी घर की दारा रे ।
अत समय तव कोई न साथी, झूठा सकल पसारा रे ।।

क्या तू लाया क्या तेने खाया, क्या जीता क्या हारा रे ।
हिसाब होवेगा परभव मे अरे, करले जन्म सुधारा रे ।।

कोडी-कोडी माया जोडी, तृष्णा अनत अपारा रे ।
अत समय तेरे सग नहि चाले, जावे हाथ पसारा रे ।।

कर कछु ज्ञान-ध्यान-तप-संजम, ये अवसर अब थारा रे ।
कहे 'वनदास' खेतडी माहि, ये थारे इखत्यारा रे ।।



(तर्ज हिवडा सु दूर मति)

मनडा ने मति भरमाय, सतगुरु समझावे ।
मिनख–जमारा रो मजो मूरखा रे एळो जाय ।।

भाई माता-पिता और नाता जिता, दुनियादारी रा मेला ।
मुख देख्या किता, सुख देख्या किता, थारे दुख मे कितरा भेला ।
हे दोरी बेळचा आ पडे तो, कोइय न नेडो आय ।।

थिर सोनो नही, थिर रूपो नही, नही थिर रेवेला माया ।
थिर राजा नही, थिर परजा नही, नही थिर रेवेला काया ।
हे . साची पू जी धरम री, थारी करे बगत पर सहाय ।।

थारा जीव री जडी, थारा जीव मे पडी, क्यू चारा कानी भटके
परमात्मा कडी,थारी आत्मा कडी, जोड़ कडी सू कड़ी अव भटके
हे 'अनूप' ऐसो पाय मोको, विरथा मति रे गवाय ।



दुनिया पैसे री पूजारी, पूजा करते नर और नारी ।
जग मे पाप कमावे भारी, माया पैसे की हो ऽऽऽ' ॥

पैसे विन माता मुख मोडे, पिता देख करम ने फोडे ।
झगडा होवे घर मे चौड़े, माया पैसे की हो ऽऽऽ ॥

पैसो मा-वापा ने प्यारो, नही तो लागे बेटो खारो ।
उणने करदे घर सू न्यारो, माया पैसे की हो ऽऽऽ' ॥

पैसो पास मे राजी नारी, नहिं तो ताना देवे न्यारी ।
केवे पीहर मे सुख भारी, माया पैसे की हो ऽऽऽ ॥

पैसो परदेशां ले जावे, नहिं तो गलिया गोता खावे ।
उणने पागल कह वतलावे, माया पैसे की हो ऽऽऽ ॥

पैसो छप्पन भोग लगावे, नहिं तो भूखा ही सो जावे ।
उणने कोई नही जगावे, माया पैसे की हो ऽऽऽ' ॥

पैसो बूढा ने परणावे, पैसो कन्या ने विकवावे ।
नहिं तो कवारी रह जावे, माया पैसे की हो ऽऽऽ ॥

पैसा सू नर पूज्यो जावे, नहिं तो याद कभी ना आवे ।
उणने सगलो जग ठुकरावे, माया पैसे की हो ऽऽऽ' ॥

७३

(तर्ज जब तुम्ही चले परदेश)

तुम समझो धन को धूल, पाप का मूल,
है धर्म तुम्हारा 'संतोष जगत मे प्यारा' ।।
जितने भी जग मे पाप बढे ।
जितने भी होते है झगडे ।
इन सब मे पापी धन का एक इशारा ।।
दुनिया यह सारी फानी है ।
जैसे बुद-बुद का पानी है ।
तन-धन-परिजन सब इद्रजाल अनुहारा ।।
लालच की लाय लगी जग मे ।
नर जलता जाता पग-पग मे ।
माया के फद मे फसा दुखी बेचारा ।।
नही महल तुम्हारे साथ चले ।
दौलत धूलि के माहि मिले ।
इस झूठे जग मे साथी कौन तुम्हारा ।।
छोटी - सी तेरी जिदगानी ।
क्यो पाप कमाता है प्राणी ।
कर प्रेम धर्म से मन मे हो उजियारा ।।

७४

(तर्ज प्रभाती)

कौन यहा है तेरा बाबा, कौन यहा है तेरा ।।

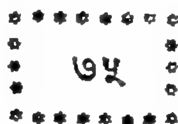
इंटा चुन-चुन महल बनाये, मूरख कहे घर मेरा।
ना घर तेरा ना घर मेरा, चिडिया-रैन-बसेरा ॥

जिस जीवन पर फूल रहा है, यह है कष्ट घनेरा।
चादनी है यहा चार दिनो की, अत मे फेर अंधेरा ॥

जिस सर को तू तैल लगाकर, चीर निकाले टेढा।
प्राण-पखेरू उड जायेंगे, वन मे होगा डेरा ॥

मोह-माया ने तुझको मूरख, चारो तरफ से घेरा।
जाग जा, मजिल दूर बहुत है, है नजदीक सबेरा ॥

जब तक पछी बोल रहा है, राह देखे सब तेरा।
आँखे बद हो जायेगी जब, कौन कहेगा मेरा ॥



(तर्ज कु जन मे चालो कान)

अवधू! निरपख विरला कोई, देख्यो सब जग जोई ॥
समरस-भाव भलो चित ज्याके, थाप-उथाप न होई।
अविनाशी के घर की बाता, जानेंगे नर सोई ॥
निंदा-प्रशसा श्रवण करी ने, शोक-हरख नही आणे।
ते जग मे जोगीसर मोटा, नित चढते गुण-ठाणे ॥
राव - रक मे भेद न जाणे, कनक उपल सम देखे।
नारी-नागिन को नही परिचय, सो शिव-मन्दिर देखे ॥
चन्द्र-समान सौम्यता जा की, सागर जेम गभीरा।
अप्रमत्त भारड परे नित, सुरगिरि-सम शुचि धीरा ॥
पकज नाम धराय पक से, रहत कमल जिम न्यारा।
चिदानद इस्या जन उत्तम, सो साहब का प्यारा ॥



मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवो को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी मे लीन रहो॥

विषयो की आशा नही जिनको, साम्य-भाव-धन रखते हैं।
निज-पर के हित-साधन मे जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख-समूह को हरते हैं॥

रहे सदा सत्सग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे।
उन्ही जैसी चर्या मे यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नही सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नही कहा करू।
परधन वनिता[1] पर न लुभाऊँ, सतोषामृत पिया करू॥

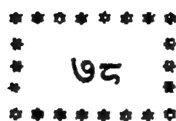
अहकार का भाव न रक्खू, नही किसी पर क्रोध करू।
देख दूसरो की बढती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरू।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य व्यवहार करू।
बने जहाँ तक इस जीवन मे, औरो का उपकार करू॥

मैत्री-भाव जगत मे मेरा, सब जीवो पर नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवो पर मेरे, उर से करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर कुमार्ग-रतो पर, क्षोभ नही मुझ को आवे।
साम्य-भाव रखू मै उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

(१) परजन

३७ काछ-लपट्टी होजे नही। ३८ सपत मे रिण रखजे नही।
३९.परनारी चित दीजे नही। ४०.कपटी मितर कीजे नही।
४१ धन जोबन मे छकजे नही। ४२.नाहक निकमो बकजे नही।
४३.साची कहता डरिये नही। ४४. बुरी पराई करिये नही।
४५.चोरी जारी कीजे नही। ४६ पूठ धणी ने दीजे नही।
४७ सूने घर मे जाजे नही। ४८ जग मे बुरो केवाजे नही।
४९.ओछो वस्ती वसजे नही। ५०.तात्पर्य बिन हसजे नही।
५१ चुगल पडोसी रीजे नही। ५२ धाम पराई लीजे नही।
५३.निरथक भटका खाजे नही। ५४ निर्धन के डरपाजे नही।
५५.भाग-तमाखू खाजे नही। ५६.ओखर खेती बोजे नही।
५७ वेश्या के घर जाजे नही। ५८ कुल को काट लगाजे नही।
५९.परधन कवहु हरिये नही। ६०. भाभे पानी तरिये नही।
६१ सूतो सिंह जगाजे नही। ६२ चुडेल ने बतलाजे नही।
६३.प्रभु की भक्ति विसरिये नही। ६४.विग्रह कवहु करिये नही।
६५ झूठी हामल भरिये नही। ६६ वचन देई फिर फरिये नही।
६७ हलकी वाणी वदीजे नही। ६८ जामन किसकी दीजे नही।
६९ वाद-विवादी होजे नही। ७० निरथक विरिया खोजे नही।
७१.राड-भाड से अडजे नही। ७२ गतराडा से लडजे नही।
७३ डूगर सेती पडजे नही। ७४ तरुवर ऊपर चढजे नही।
७५.भूठी वात फैलाजे नही। ७६ सुलभा के उलभाजे नही।
६७ अपजस काना सुणाजे नही। ७८.चच्चो-मम्मो भणजे नही।
७९ भूठो दूपण दीजे नही। ८० निवलो शरणो लीजे नही।
८१ मूरख से वतलाजे नही। ८२.अणजाण्यो फल खाजे नही।
८३.लेता-देता लजिये नही। ८४ भला माणस-सग तजिये नही।

इण चलगत चाले सुघड, भलो कहे सब कोय।
निश्चय इह-परलोक मे, पलो न पकड़े कोय।



सुभाषित

अविनाशी-अविकार-परम-रस-धाम है,
समाधान-सर्वज्ञ सहज-अभिराम है।
शुद्ध- बुद्ध- अविरुद्ध- अनादि- अनत है,
जगत-शिरोमणि सिद्ध सदा जयवत है ॥१॥

चवदे पूरब-धार कहिये, ज्ञान चार वखाणिये।
जिन नही पण जिन सरीखा, एवा सुधर्मा स्वामी जाणिये ॥२॥

मात-पिता-कुल-जाति निर्मल, रूप अनूप वखाणिये।
देवता ने वल्लभ लागे, एवा श्री जबूस्वामी जाणिये ॥३॥

रे जीवा ! जिनवर सुमरिये, सुमरचा जय-जयकार।
इण भव मे सुख-सपदा, पामे भव नो पार ॥४॥

—आचार्य-प्रवर श्री जयमल्ल जी म.सा

गुण अरिहत ना घणा, जीभ कहूँ किम एक।
पूरा कही जु ना सके, मिले जीभ अनेक ॥५॥

—वही

कर दोनो कटि ऊपरे, पुरुष फिरे चौफेर।
ओ आकार तिहुँ लोक नो, काढ्यो ग्रथ निहेर ॥६॥

—वही

अतिक्रम इच्छा जाणिये, व्यतिक्रम साधन-सग।
अतिचार देश-भग है, अनाचार सब भग ॥७॥

—वही

गुणी जनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊ नही कृतघ्न कभी मै, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ।।

कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखो वर्षों तक जीऊ या, मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ।।

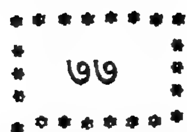
होकर सुख में मग्न न फूले, दुख मे कभी न घबरावे।
पर्वत-नदी-श्मशान भयानक, अटवी से नही भय खावे।
रहे अडोल अकप निरतर, यह मन दृढतर बन जावे।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग मे, सहनशीलता दिखलावे ।।

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर, पाप, अभिमान छोड जग, नित्य नये मगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म-फल सब पावें ।।

ईति-भीति व्यापे नही जग मे, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शाति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत मे, फैल सर्व-हित किया करे ।।

फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नही, कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब "युगवीर" हृदय से, देशोन्नति-रत रहा।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, निजानद मे रमा करे ।।

—प जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'



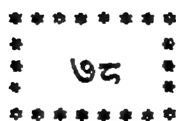
चौरासी हितशिक्षाएं

नाकारो निरसो वचन, नटिया उपजे दु:ख ।
पण चौरासी जगह पर, नटिया उपजे सुख ।।
मनुष्य जन्म को पायके, टाले इतना दोष ।
इस भव मे शोभा लहे, बण्यो रहे सतोष ।।

१.प्रभु समरता चुकिये नही । २ गुरु-सेवा से लुकिये नही ।
३.करणी कर गर्भाजे नही । ४ घर्म-नेम घटाजे नही ।
५ दान देत अलसाजे नही । ६ सत देख टल जाजे नही ।
७.गुण बिन शीश नमाजे नही । ८.नीति बात उठाजे नही ।
९.नीची सगति करिये नही । १० ऊची को परिहरिये नही ।
११.नृप से वाद वदीजे नही । १२ ओछी अकल उपाजे नही ।
१३ दया पालता लजिये नही । १४ भागभरोसो तजिये नही ।
१५ लोक विरुद्ध सो कीजे नही । १६ दान ओक फिर लीजे नही ।
१७ दान देई पछताजे नही । १८ गुरु को ज्ञान लजाजे नही ।
१९ आन आसरो लीजे नही । २०.न्याय अदल विन कीजे नही ।
१ परमारथ से मुडजे नही । २२ उजड मारग खडजे नही ।
३ मन को मान्यो कीजे नही । २४ दगा किसी को दीजे नही ।
५.सामी साझ थी सोजे नही । २६ सोग भया से रोजे नही ।
रण मे पूठ दिखाजे नही । २८.हाथा कूबर घटाजे नही ।
२.अणछाण्यो जल पीजे नही । ३० कुजस किसी को लीजे नही ।
३ झूठी कथनी कीजे नही । ३२.जाणत विष को पीजे नही ।
३ पर की निंदा कीजे नही । ३४ अरि से गाफिल रीजे नही ।
३ हिंसा विणज कमाजे नही । ३६.राज खुखारू जाजे नही ।

३७.काछ-लपट्टी होजे नही। ३८.सपत मे रिण रखजे नही।
३९.परनारी चित दीजे नही। ४०.कपटी मितर कीजे नही।
४१ धन जोबन में छकजे नही। ४२ नाहक निकमो बकजे नही।
४३.साची कहता डरिये नही। ४४. बुरी पराई करिये नही।
४५.चोरी जारी कीजे नही। ४६ पूठ धणी ने दीजे नही।
४७ सूने घर मे जाजे नही। ४८ जग मे बुरो केवाजे नही।
४९.ओछो वस्ती वसजे नही। ५० तात्पर्य विन हसजे नही।
५१ चुगल पडौसी रीजे नही। ५२ धाम पराई लीजे नही।
५३.निरथक भटका खाजे नही। ५४ निर्धन के डरपाजे नही।
५५.भाग-तमाखू खाजे नही। ५६.ओखर खेती वोजे नही।
५७.वेश्या के घर जाजे नही। ५८ कुल को काट लगाजे नही।
५९.परधन कबहु हरिये नही। ६०. झाझे पानी तरिये नही।
६१ सूतो सिंह जगाजे नही। ६२ चुडेल ने बतलाजे नही।
६३.प्रभु की भक्ति विसरिये नही। ६४ विग्रह कवहु करिये नही।
६५ झूठी हामल भरिये नही। ६६ वचन देई फिर फरिये नही।
६७.हलकी वाणी वदीजे नही। ६८ जामन किसकी दीजे नही।
६९.वाद-विवादी होजे नही। ७०.निरथक विरिया खोजे नही।
७१.राड-भाड मे अडजे नही। ७२.गतराडा से लडजे नही।
७३ डूगर सेती पडजे नही। ७४ तरुवर ऊपर चढजे नही।
७५.झूठी वात फैलाजे नही। ७६ सुलझा के उलझाजे नही।
६७ अपजस काना सुणजे नही। ७८.चच्चो-मम्मो भणजे नही।
७९.झूठो दूषण दीजे नही। ८०.निवलो शरणो लीजे नही।
८१ मूरख से वतलाजे नही। ८२ अणजाण्यो फल खाजे नही।
८३.लेता-देता लजिये नही। ८४ भला माणस-सग तजिये नी।

इण चलगत चाले सुघड, भलो कहे सब कोय।
निश्चय इह-परलोक मे, पलो न पकड़े कोय।



सुभाषित

अविनाशी-अविकार-परम-रस-धाम है,
समाधान-सर्वज्ञ सहज-अभिराम हैं।
शुद्ध- बुद्ध- अविरुद्ध- अनादि- अनत है,
जगत-शिरोमणि सिद्ध सदा जयवत है ॥१॥

चवदे पूरब-धार कहिये, ज्ञान चार वखाणिये।
जिन नही पण जिन सरीखा, एवा सुधर्मा स्वामी जाणिये ॥२॥

मात-पिता-कुल-जाति निर्मल, रूप अनूप वखाणिये।
देवता ने वल्लभ लागे, एवा श्री जबूस्वामी जाणिये ॥३॥

रे जीवा ! जिनवर सुमरिये, सुमरया जय-जयकार।
इण भव मे सुख-सपदा, पामे भव नो पार ॥४॥

—आचार्य-प्रवर श्री जयमल्ल जी म.सा

गुण अरिहत ना घणा, जीभ कहूँ किम एक।
पूरा कही जु ना सके, मिले जीभ अनेक ॥५॥

—वही

कर दोनो कटि ऊपरे, पुरुष फिरे चौफेर।
श्रो आकार तिहुँ लोक नो, काढयो ग्रथ निहेर ॥६॥

—वही

अतिक्रम इच्छा जाणिये, व्यतिक्रम साधन-सग।
अतिचार देश-भग है, अनाचार सब भग ॥७॥

—वही

शीत-ऋतु मे शीत, परदा से जासी परो।
भरो सीसा से भीत, कठे न छोडे काळियो ॥८॥
—श्रुताचार्य स्वामी श्री चौथमल जी म.सा.

सज्जन निज सद्भाव, राखे उर मे रात-दिन।
आवे अति उकळाव, निज-गुण जल छोडे नही ॥९॥
—वही

दयाशीलता, दानता, कोमलता अविरोध।
वत्सलता रु विवेकिता, किय जिनमत उर बोध ॥१०॥
—वही

अत अधारो होत तव, ऊजर पख आवत।
प्रवल दुःख आया पछे, परिघल सुख पावत ॥११॥
—वही

ओछा ने ओपे नही, मोटा हृदो मान।
मुट्ठी मे मावे नही, इतो वडो असमान ॥१२॥
—वही

दान कहो किम कर दिये, ताजा तरस्योडाह।
भूखा किम छोडे भला, भाणा पुरस्योडाह ॥१३॥
—वही

शाति राख हिय मे सदा, सद्गुण से कर प्यार।
देख-देख, निज-दोष का, कर झटपट परिहार ॥१४॥
—आचार्य-प्रवर श्री जीतमल जी म सा

ठोकर लगते एक ही, समझे चतुर सुजान।
ठोकर-पर ठोकर लगे, मूर्ख न पावे ज्ञान ॥१५॥
—वही

समता सद्गति-द्वार है, तामस दुर्गति-द्वार।
जो पाना वह लीजिए, पथ दोनो तैयार ॥१६॥
—वही

कई बार इस हृदय मे, आते है सुविचार।
पर, स्थिरता पाए बिना, हो कैसे उद्धार ॥१७॥
—वही

कोई किस का भी नही, जग है स्वप्न-समान।
अपना इसमे मानना, ही है मिथ्या-ज्ञान ॥१८॥
—वही

खोजो अपने आपको, पाओगे सब आप।
पर को खोजे ना कभी, हो सकते निष्पाप ॥१६॥
—उपाध्यायप्रवर श्री लालचद जी म सा

चेतन होकर जड को, अपना, करके कष्ट उठाता क्यो? ।
स्वाध्याय को छोड बावरे, पर मे अरे लुभाता क्यो ? ॥२०॥
—वही

सभी असभव सभव करदे, शक्ति अनत हमारे पास।
करे अगर स्वाध्याय सूत्र का, हो सकता उसका सुविकास ॥२१॥
—वही

गैल तजो गतकाल की, सजो भविष्य के हेतु।
तो तुमको निश्चय मिले, जगत-जलधि का सेतु ॥२२॥
—वही

खैर हुआ सो हो गया, अब तू मत पछताय।
पुनरावृत्ति न हो सके, करले वही उपाय ॥२३॥
—वही

घेरे को घर समझ के, क्यो रहते हो आप ।
असीम को सीमित बना, रखना भी है पाप ।।२४।।
—वही

एक निजात्मा के बिना, जगति न अपना कोय ।
अत. सभी को त्याग कर, तू अपना ही होय ।।२५।।
—वही

गये अमोही होय के, वे नमनीय महान ।
मिले उन्ही मे जाय के, उत्तम उनका स्थान ।।२६।।
—वही

देह-पोषण सतत करते मिष्ठान्नो को खाकर हम ।
विविध भाति के व्यजन चटकर रसिया भी बन जाते हम ।
आत्म-शोध के हेतु आज तक कुछ नही हम कर पाये ।
कर स्वाध्याय पाप के काले दाग मिटाकर सुख पाये ।।२७।।
—श्री पार्श्वचद्र जी म सा

ढील करे मत तू छिन की, करले झट सुकृत लाभ कमाई ।
बैठ एकात करी मन ठाम, जपो जिनराज सुध्यान लगाई ।
दान,दया,तप, सजम-मारग, श्री गुरु-सेव करो चित लाई ।
'अमृत' चित्त अलेप रखो नर, देह धरे को यही फल पाई ।।२८।।
—स्व. पू. अमीऋषि जी म

यौवन, भाषा अरु समय, बहता हुआ जल जाय ।
'खूब' कहे ये चारो हि, मुडकर आवे नाय ।।२९।।
—स्व. श्री खूबचद जी म

उद्यम कवहु न छोडिये, यद्यपि विपद पडन्त ।
'खूब' कहे उद्यम किये, कीडी शिखर चढन्त ।।३०।।
—वही

है कार्य जो करते नही अरु बोलते है जोर से।
धिक्कार उनको सर्वदा पडती यहा सब ओर से।
पर बोलते मुख से नही जो कार्य करते है सदा।
गुणगान उनके विश्व मे सब लोग करते है तदा।।३१।।
—काव्य सजीवनी ३३६

दीधी गाली एक है, पलटे होय अनेक।
जो गाली पलटे नही, रहे एक की एक।।३२।।

ढूढन चाल्या ब्रह्म को, ढूढ फिरा सब ढूढ।
जो तू चाहे ढूढना, इसी ढूढ़ मे ढूढ।।३३।।

नैण, वैण अरु श्रवण सब, सब ही के इक ठौर।
कहिबो-सुनिबो-समझिबो, चतुरन को कछु और।।३४।।

पाव पलक की खबर नही, करे काल की बात।
ना जाने क्या होत है, उगते ही परभात।।३५।।

सतति के गुण-दोष अधिकतर, मात-पिता पर निर्भर है।
सस्कारो के जीवन-पट पर, पडते चिन्ह प्रबलतर है।।३६।।
—उ अमरमुनि जी म

बूढापो आतो कहे, तीन कान मे बात।
मीठा बोलो नम चलो, गेडी ले लो हाथ।।३७।।

बावळियो काटा तज्या, वृद्ध भये की लाज।
मूरख नर समझत नही, दिन-दिन करत अकाज।।३८।।

जैसे ज्वर के जोर से, भोजन की रुचि नाय।
ऐसे कुकर्म-उदय से, धर्म-वचन न सुहाय।।३९।।

धर्म करत ससार-सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म-पथ साधे बिना, नर तिर्यंच-समान।।४०।।

सर नही ऊचा कभी, रहते सुना अभिमान का।
अपने ऊपर ही पडता है, थूका हुआ असमान का ॥४१॥

जीवन एक वृक्ष है फानी, वचपन तने, शाख जवानी।
फिर है पतझड खुश्क बुढापा, इसके बाद है खतम कहानी ॥४२॥

एक गलत आदत आदमी को अधा कर देती है।
एक बुराई व्यक्ति के तेज को मदा कर देती है।
कितना बडा सत्य है इस बात मे दोस्तो—
एक मछली सारे तालाब को गदा कर देती है ॥४३॥

कभी निराश न हो जीवन मे, कभी न दुख मे घबराना।
एक यही साधन है सुख का, अपना कर्त्तव्य किये जाना ॥४४॥

अपने अवगुण की जो निन्दा करते हैं,
पर, पर - निन्दा से सदा काल डरते हैं।
गुणवानो के सद्‌गुण का गाते गाना,
कर कर्म-निर्जरा पाते मोक्ष-ठिकाना ॥४५॥

बचपन से ही साधिये, विद्या-विनय-विवेक।
ये तीनो ही राखते, सर्व सिद्धि की टेक ॥४६॥

करत-करत अभ्यास ते, जड-मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात ते, सिल पर पडत निशान ॥४७॥

ज्ञान मुझ मे अल्प है, यह ध्यान मे मत लाइये।
हारिये मन मे न सद्-व्यवहार करते जाइये।
चद्र-रवि दोनो कुहू मे, दीख जव पडता नही।
उस समय मे दीप अपना, काम क्या करता नही ॥४८॥

न भूलो स्वर्ग-से सुख पर, भयानक नर्क के बिल हैं।
सुधा समझे हो तुम जिनको, वे ही तो हलाहल हैं ॥४९॥

—सन्यासी पृ. २२

यो 'रहीम' सुख होत है, उपकारी के अग।
बाँटन-वारे के लगे, ज्यो मेहदी का रग ॥५०॥

—रहीम

आघो आई ज्ञान की, ढही भरम की भीत।
माया-टाटी उड गई, लगी नाम से प्रीत ॥५१॥

—कबीर

नशा से आदमी का हर जगह परिहास होता है,
नशा वाले का किंचित भी नही विश्वास होता है।
नशा तो एक दानव है बचो इससे सदा 'काका',
नशा से आदमी की बुद्धि-बल का नाश होता है ॥५२॥

—हजारीलाल जैन 'काका'

'कबीर' यह मन मसकरा, कहू तो माने रोस।
जा मारग साहब मिलै, तहाँ न चाले कोस ॥५३॥

—कबीर

परनारी पैनी छुरी, मत कोई लावो अग।
रावण के दस सिर गये, परनारी के सग ॥५४॥

—कबीर

करी बुराई और ने, आप कियो उपकार।
'तुलसी' 'इन दो वात को, चित से देहु उतार ॥५५॥

—तुलसीदास जी

ससृति मे जितने भी अच्छे, कार्य कष्ट से साध्य सभी।
बिना अग्नि मे पडे स्वर्ण का, रूप दमकता नही कभी ॥५६॥

—उ. अमरमुनि जी म

दु ख दु:ख है जब आता है, सहन किया ही जाता है।
नर-जीवन मे धूप-छाह सा, सुख-दुख का चिर नाता है ॥५७॥

—वही

वीर-पुरुष की सकट मे भी, धर्म-भावना बढती है।
उलटी करने पर भी अग्नि-ज्वाला ऊपर चढती है ।।५८।।
—वही

धरम-धरम सब कोइ कहे, मरम न जाणे कोय।
जात न जाणे जीव की, धरम किणी विध होय ।।५९।।
पूर्व जन्म मे किया, मिला, अब करो वही फिर पाओगे।
जो गफलत के बीच रहे तो, मित्र ! बहुत पछताओगे ।।६०।।
बहुत भण्या काइ काम का, बोले नही विचार।
हणत पराई आतमा, जीभ चले तलवार ।।६१।।
जा लक्ष्मी के काज तू, खोवत है निज धर्म।
सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत मर्म ।।६२।।
एक विषय ने जीतता, जीत्यो सहु ससार।
नृपति जीतता जीतिये, दल, पुर ने अधिकार ।।६३।।
उत्तम बुद्धि न ऊपजे, सूझे न उद्यम सार।
गर्थ गुमावे गाठ नो, जार-कर्म करनार ।।६४।।
माणस मा उजले मुखे, वोली सके न बोल।
व्यभिचारी नी विश्व मा, तरणा तुल्ये तोल ।।६५।।
ना सुख काजी पडिता, ना सुख भूप भया।
सुख तो जब ही आवसी, तृष्णा-रोग गया ।।६६।।
जो बात कहो साफ हो, सुथरी हो भली हो।
कडवी न हो, खट्टी न हो, मिसरी की डली हो ।।६७।।
ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल लगे, आप ही शीतल होय ।।६८।।
हाथी- घोडा- गाव- गढ, एता मिले अनत।
गई इज्जत नहिं बावड़े, कहे राव 'जसवत' ।।६९।।
—राजा जसवतसिंह

बेटा मारे बाप को, नारी हणे भरतार।
एक परिग्रह कारणे, अनरथ हुवे अपार ।।७०।।

बिन पूंजी के सेठ जी, बिना सत्य को राज।
बिना ज्ञान की साधुता, कैसे सुधरे काज ।।७१।।

कायरता किण काम री, निपट बिगाडे नूर।
आदर मे इधकी पडे, घोबा भर-भर धूर ।।७२।।

तन की तृष्णा सहल है, आध-सेर के सेर।
मन की तृष्णा गजब है, गिळे मेर - सुमेर ।।७३।।

गई बात सोचे नही, आगम वाछे नाय।
वर्तमान वरते सदा, सो ज्ञानी जग माय ।।७४।।

सहज मिल्या सो दूध बराबर, माग लिया सो पाणी।
खीच लिया सो खून बराबर, यह 'दादू' की वाणी ।।७५।।

—दादू

अनुभव का कर दीप ले, बढ आगे हरबार।
तब पहुचेगा ध्येय को, ए चेतन अविकार ।।७६।।

क्षमायाचना से मिटे, क्लेश और सताप।
बढे मित्रता भय हटे, विकसित हो गुण आप ।।७७।।

शस्त्र-घाव कुछ काल तक, करता है बेचैन।
वचन-घाव लग जाय तो, दुखित करे दिन-रैन ।।७८।।

भोग को भय रोग का है, वित्त को भय राज का।
वृद्धत्व का भय रूप को, भय देह को यमराज का।
ये वस्तुएँ ससार मे सब, ही भयकर जानलो।
हा! सब अभय-दातार केवल, धर्म ही को मानलो ।।७९।।

—काव्य सजीवनी ३४८

दुःख न कोई जगत मे, दुःख पाप-सचार।
करे धर्म निष्कपट, तो, हो सुखमय ससार ॥८०॥
—श्रा. प्र. श्री जीतमल जी म. सा.

सब मगल का मूल जो, सभी शिवो का हेतु।
जिनशासन विजयी रहे, सब धर्मों का केतु ॥८१॥



प्रकीर्णक-विभाग

समाधिमरण

यह प्रकृति का अटल नियम है कि जो जन्म लेता है वह मरता अवश्य है, परतु मरने-मरने मे अतर है। जिस प्रकार जीवन जीने की कला होती है उसी प्रकार मरने की भी कला है। मरना जब निश्चित है फिर कला-पूर्वक ही क्यो न मरा जाये ? जैन-परिभाषा मे इस कला-पूर्वक मरने को 'समाधि-मरण' की सज्ञा दी गई है। समाधि-मरण की तैयारी के लिए साधक को अपना अतिम समय जान लेना अति आवश्यक है। अतिम समय जानने के कुछ सकेत इस प्रकार है :

(१) अपनी आख को भौह (भोपण), नाशाग्र और जिह्वाग्र दिखाई नही दे तो नव दिन के बाद मृत्यु जानना।

(२) स्नान करने के बाद सारा शरीर तो भीगा रहे और मुख पहले ही सूख जाये तो पद्रह दिन के भीतर मृत्यु जानना।

(३) कानो की कूपर पतली हो जाये, नाक की डडी टेढी (बाकी) हो जाये, आख सफेद हो जाये, कपाल काला पड जाये, नासिका लाल हो जाये, मू छ के बाल खिरने लगे, होठ सफेद हो जाये, तो तीन दिन के भीतर ही मृत्यु समझना।

(४) भोजन व पानी स्वाद न लगे, नाक के श्लेष्म की गध दूध जैसी हो जाये, छाती के दाहिनी ओर धड़कन बढ जाये, हस्त-तल और पाद-तल लाल हो जाये, नाखून काले पड़ जायें, शरीर की गध मृतक शव के जैसी हो जाये, नाड़ी सुस्त हो जाये, क्रोध बढ जाये, विभ्रमता या मूर्च्छा आ जाये, छाती पीली,

जघा श्वेत, गला नीला या लाल दिखाई दे, नाक मे सल पड़ जायें, हस्त रेखाएँ मद हो जाये, एक या दोनो आखो की पुतलियाँ फिर जाए और दिखाई नही दे, हाथ-पाव ठण्डे और मस्तक गर्म रहे तो मृत्यु निकट जानना।

(५) शरीर के अगो का स्वाभाविक वर्ण वदल जाये (जैसे तालु-जीभ आदि लाल हैं वे काले-पीले या सफेद हो जायें), मास-वसा आदि नरम अग कड़े पड जायें, अचल अग चल तथा चल अग अचल हो जायें, आखे घूम जायें, मस्तक लटक जाये, जोड ढीले पड जाये, आख या जीभ भीतर घुस जाये तो मृत्यु निकट समझना।

(६) आधा शरीर ठडा और आधा शरीर गरम लगे तो सात दिन मे मृत्यु जानना।

(७) आखे वद करने पर मयूर के पाख के समान जो तिलमिले दिखाई देते हैं, यदि वे दिखाई न दे तो मृत्यु निकट जानना।

संलेखना—समाधिमरण के आरावन के लिये जैन धर्म मे एक विशेप अनुष्ठान है, जिसको 'सलेखना' कहते है। सलेखना के दो भेद है (१) सागार सलेखना (२) अणागार सलेखना। आभ्यतर व वाह्य के भेद से भी सलेखना दो प्रकार की है। क्रोधादि कषायो का त्याग करना आभ्यतर सलेखना है तथा वाह्य वस्तु—अन्न-जल एव शरीरादि का त्याग करना वाह्य सलेखना है।

सागार संलेखना—मृत्यु का कोई समय निश्चित नही है। कभी-कभी वह अचानक ही हमला कर देती है। कई लोग सदा की भाति रात्रि को आराम से सोते है और सोते-सोते ही मृत्यु के

ग्रास बन जाते हैं। ऐसी हालत मे धर्मशील पुरुषो को चाहिये कि वे सोते समय रोजाना आगार-सहित अर्थात् "उठने के पहले ही मृत्यु आ जाये तो यावज्जीवन" ऐसी छूट रखकर यथाविधि प्रत्याख्यान कर ले। इस प्रकार आगार रखकर जो सलेखना की जाती है—उसे सागार सलेखना कहते हैं।

सागार संलेखना की विधि—सर्वप्रथम इच्छाकारेण, तस्स-उत्तरी का पाठ बोलना एव यथाविधि चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करना। फिर एक लोगस्स प्रकट कहकर दोनो हाथ जोड कर निम्न पाठ कहना

"भक्खति, डज्झति, मारति किं वि उवसग्गेण मम आउ-अतो भवेज्ज तहा सरीरसबध-मोह-ममत्त-अट्ठारस-पावट्ठाणाणि चउव्विह पि आहार वोसिरामि, सुहसमाहिएण निद्दावइक्कति तओ आगारो।" इस प्रकार प्रत्याख्यान करके नवकार मत्र का स्मरण करते हुए शयन करना चाहिये। जागने पर भी पूर्वोक्त प्रकार से चार लोगस्स का सविधि कायोत्सर्ग करके निम्न-लिखित पाठ का उच्चारण करना चाहिए—

"पडिक्कमामि पगाम-सिज्जाए निगाम-सिज्जाए सथारा उव्वट्टणाए परियट्टणाए आउटणाए पसारणाए छप्पई सघ-ट्टणाए कूइए कक्कराइए छिइए जभाइए आमोसे ससरक्खामोसे आउलमाउलाए सोवण-वत्तिआए इत्थी-विप्परिआसिआए दिट्ठी-विप्परिआसिआए मण-विप्परिआसिआए पाणभोयण-विप्परिआसिआए जो मे राइय अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।" इस पाठ के उच्चारण के बाद "सागारिय अण-सणस्स पच्चक्खाण सम्म काएण · न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कड" इस पाठ से पच्चक्खाण पालकर नवकार मन्त्र का स्मरण करना चाहिए।

यह सागार संथारा की विधि है। कदाचित् चोर, सिंह, सांप, व्यंतर, अग्नि, पानी आदि का ऐसा संकट आ पड़े जिससे प्राणान्त होने की संभावना हो या ऐसी ही कोई बीमारी अचानक उत्पन्न हो जाये और अणागार संथारा करने का अवसर न हो तो वहाँ भी उक्त प्रकार से ही सागार संथारा करना उचित है।

अणागार संलेखना

बिना किसी आगार (छूट) के प्राणातकारी उपसर्ग आने पर, अन्न-पानी की प्राप्ति न हो सके ऐसे दुर्भिक्ष के पड़ने पर, वृद्धावस्था के कारण शरीर के अत्यंत जीर्ण हो जाने पर, असाध्य रोग उत्पन्न हो जाने पर, इस प्रकार का संकट आ जाने पर कि प्राण बचने का भी कोई उपाय न हो अथवा निमित्त ज्ञान आदि के द्वारा अपनी आयु का निश्चय रूप से अंत समीप आया जानकर एवं धर्म-रक्षा के लिए उद्यत होने के फलस्वरूप प्राणान्त निकट जानकर शरीर का एवं क्रोधादि कषाय-भावों का जो त्याग किया जाता है, उसी को 'अणागार संलेखना' कहते हैं।

अणागार संलेखना की विधि—जब मृत्यु निकट आ जाये तो उसे सुधारने के लिए धर्मसेवन पूर्वक शरीर का त्याग करने के लिए सावधान बनना चाहिए। जिसकी मनोकामना संसार के कामों से निवृत्त हो गई है अर्थात् जिसे अब संसार का कोई भी कार्य नहीं करना है, वही आत्मार्थ का साधन अर्थात् संलेखना करने के लिए तैयार हो सकता है। संलेखना-संथारा के लिए उद्यत हुए व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह पहले इस भव में ग्रहण किए हुए अपने सम्यक्त्व एवं व्रतों में उपयोगपूर्वक

जो-जो अतिचार-दोष लगे हैं, उनकी गवेषणा करे एव उनकी आलोचना करने के लिए आचार्य, उपाध्याय अथवा साधु, जो उस समय निकट मे विराजमान हो, उनके समक्ष अपने दोषो का प्रकटीकरण कर दे। कदाचित् आलोचना सुनने योग्य साधु मौजूद न हो तो गभीरता आदि गुणो से युक्त साध्वीजी के सामने अपने दोषो को प्रकट करे। अगर साध्वीजी का योग भी न मिले तो उक्त गुणो से युक्त श्रावक के समक्ष और श्रावक भी मौजूद न हो तो योग्य श्राविका के सामने अपने दोषो की आलोचना करे। कदाचित् श्राविका भी न हो तो जगल मे जाकर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके, सीमन्धर स्वामी को नमस्कार करके हाथ जोड कर खडा हो जाये और पुकार कर कहे—"प्रभो! मैंने अमुक-अमुक अनाचीर्ण का आचरण किया है, मैं अपनी समझ के अनुसार उसका प्रायश्चित्त आपकी साक्षी से स्वीकार करता हूँ। अगर वह न्यून या अधिक हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

इस प्रकार नि शल्य होकर फिर सलेखना-सथारा करना चाहिए। जैसे काले रग का कोयला आग मे पड़कर श्वेत वर्ण की राख के रूप मे परिणत हो जाता है, उसी प्रकार सलेखना रूपी अग्नि मे आत्मा भी पाप की कालिमा को त्यागकर उज्ज्वल हो जाती है। अतएव सलेखना करने के इच्छुक साधक को ऐसे एकात स्थान पर जाना चाहिए, जहाँ खान-पान, भोग-विलास के पदार्थ विद्यमान न हो, ससार-व्यवहार सबधी शब्द और दृश्य सुनने-देखने मे न आवे। त्रस-स्थावर जीवो की हिसा होने की जहा सभावना न हो—ऐसे उपाश्रय, पौषधशाला आदि स्थान अथवा जगल, पहाड़, गुफा आदि स्थान ही सथारा के लिए उपयुक्त होते है। उपयुक्त स्थानो मे जाकर जहाँ चित्त

उच्चारण-पूर्वक अपने शरीर के ममत्व का भी सर्वथा प्रकार से त्याग कर दे ।

सलेखना के पांच अतिचार

१ **इहलोगासंसप्पओगे**—सथारे के फलस्वरूप मेरी कीर्ति-ख्याति एव प्रतिष्ठा हो, लोग मुझे बड़ा त्यागी-वैरागी समझे एव धन्य-धन्य कहे—इस प्रकार इस लोक सवधी आकाक्षा करना ।

२. **परलोगासंसप्पओगे**—मृत्यु के पश्चात् मुझे इद्र का पद मिले, उत्कृष्ट ऋद्धि का धारक देव बनू, चक्रवर्ती या राजा होऊ, सुन्दर शरीर व रूप को प्राप्त करू इत्यादि परलोक सवधी आकाक्षा करना ।

३. **जीवियाससप्पओगे**—सथारे मे अपनी महिमा-पूजा होती देखकर बहुत समय तक जीवित रहने की इच्छा करना ।

४. **मरणासंसप्पओगे**—क्षुधा-तृषा आदि की पीड़ा से व्याकुल होकर जल्दी मर जाने की इच्छा करना ।

५. **कामभोगासंसप्पओगे**—काम-भोगो की इच्छा करना ।

साधक का कर्त्तव्य है कि वह सलेखना-सथारा मे उपर्युक्त पाचो अतिचारो (दोषो) से प्रतिपल सतर्क रहे । सलेखना जीवन का अतिम और महान् व्रत है । वह मृत्यु को सुधारने की एक उत्कृष्ट कला है । इस कला की साधना मे बहुत सावधानी की जरूरत है । सलेखना (सथारा) का प्रधान फल आत्मशुद्धि व आत्म-कल्याण है । वैसे आनुषगिक फल के रूप मे जो सासारिक सुख प्राप्त होने वाले है, वे तो इच्छा न करने पर भी स्वत. प्राप्त हो जाते हैं—अत साधक को किसी

संसार-सुख की अभिलाषा नही करनी चाहिए। उसकी इच्छा करने से व्रत मे मलिनता आती है और व्रत का प्रधान फल नही मिल पाता। किसी भी प्रकार की सासारिक कामना न रखते हुए जिनेन्द्र भगवान् के गुणो मे ही अपने चित्त को रमाना चाहिए एव ससार के अनित्य स्वरूप का चिंतन करते हुए धर्मध्यान मे ही सथारे का समय व्यतीत करना चाहिए।

समाधि-मरण के ७३ बोल

सलेखना-सथारा की आराधना-पूर्वक निर्भयता एव तैयारी के साथ मरना ही "समाधि-मरण" कहलाता है। समाधि-मरण की आराधना के लिए निम्न बोलो का चिंतन-मनन करना चाहिए। समाधिमरण जीव के आतरिक विकास के लिए किया जाता है। अत ऐसे साधक को चाहिए कि वह शरीर को पराया एव निश्चय रूप से आत्मा को ही "मैं" अर्थात् अपना समझते हुए उसके सबध मे इस प्रकार का चिंतन करता रहे

१ मैं अकेला हूँ।
२ मेरी आत्मा शाश्वत है।
३ मैं तो ज्ञान-दर्शन से सयुक्त (ज्ञान-दर्शनमय) हूँ, बाकी सब पदार्थ बाहरी है।
४. सयोग मे वियोग छिपा हुआ है।
५ ऐसे सयोग मे मूर्च्छित हाना ही सब दु.खो का मूल कारण है, पुद्गलो का सयोग-सबध अनित्य है, क्योकि यह मेरा आत्म-स्वरूप नही है।
६ सब बाहरी सयोगो का मैं तीन करण—तीन योग से त्याग करता हूँ।

की समाधि का योग हो ऐसे शिला आदि स्थानो का रजोहरण से यतना-पूर्वक प्रमार्जन कर कचरे को किसी पाटी आदि पर ले ले और निर्जीव जगह देखकर विधिपूर्वक परठ दे। फिर लघु नीति और बडी नीति, श्लेष्म और पित्त आदि परठने की भूमि का प्रतिलेखन करे। वह भूमि हरितकाय, अकुर, चीटी आदि के विल वगैरह से रहित होनी चाहिए। उसे सूक्ष्म दृष्टि से देखकर फिर सलेखना करने की जगह आ जाये।

इतना सब कर चुकने के पश्चात् प्रतिलेखन और प्रमार्जन करने मे तथा गमन-आगमन करने मे जो पाप लगा हो, उसकी निवृत्ति के लिए पूर्वोक्त विधि के अनुसार 'इच्छाकारेण' का तथा 'तस्सउत्तरी' का पाठ कह कर 'इच्छाकारेण' का कायोत्सर्ग करे तत्पश्चात् 'लोगस्स' का पाठ बोले। फिर इस प्रकार कहे— 'प्रतिलेखना मे पृथ्वीकाय आदि किसी भी काय की विराधना की हो या कोई भी दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।'

इसके पश्चात् अगर शरीर कष्ट सहन करने मे समर्थ हो तो जमीन पर या शिला पर विछौना करके उस पर सथारा करे। अन्यथा गेहू, चावल, कोद्रव, राल आदि का पराल या घास, जो साफ और सूखा हो और जिसमे धान्य के दाने बिलकुल न हो, लाकर उसका साढे तीन हाथ लम्बा और सवा हाथ चौडा विछौना करे। उसे श्वेत वस्त्र से ढक कर उसके ऊपर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके, पर्यंक-आसन (पालथी मारकर) आदि किसी सुखमय आसन से बैठे। अगर बिना सहारे वैठने की शक्ति न हो तो भीत आदि किसी वस्तु का सहारा लेकर वैठे। अथवा लेटा-लेटा ही इच्छानुसार आसन करे। फिर दोनो हाथ जोड कर दसो अगुलिया एकत्र करे। जिस प्रकार अन्य मतावलम्बी आरती घुमाते है, उसी प्रकार

जोडे हुए हाथो को दाहिनी ओर से बाईं ओर उतारता हुआ तीन बार घुमावे। फिर मस्तक पर स्थापित करे। तत्पश्चात् 'नमोऽत्थुरणं' के पाठ का दो बार उच्चारण करे। द्वितीय नमोऽत्थुणं मे 'ठाण सपत्ताण' के स्थान पर 'ठाण सपाविउ-कामाण' कहे। इस प्रकार इस पाठ से क्रमश सिद्ध भगवान एव अरिहत भगवान को नमस्कार करके 'नमोऽत्थुण मम धम्मगुरु-धम्मायरिय-धम्मोवदेसगस्स जाव सपाविउकामस्स'— इस पाठ का उच्चारण करते हुए अपने धर्मगुरु, धर्माचार्य और धर्मोपदेशक यावत् मोक्ष के अभिलाषी आचार्य महाराज को नमस्कार करे।

इस प्रकार वदना-नमस्कार करके पूर्व मे आचरण किए हुए सम्यक्त्व और व्रतो मे आज इस समय तक, जानते-अजानते, स्ववश-परवश कोई अतिचार लगे हो, उनकी आलोचना-विचारणा करे एव उनसे निवृत्त होवे। आत्मा की साक्षी से उनकी निन्दा करे एव गुरु की साक्षी से उनकी गर्हा करे।

इस तरह शुद्धि करके भविष्य के लिए प्रत्याख्यान करे। माया, मिथ्यात्व और निदान इन तीनो शल्यो का सर्वथा परित्याग करे। इस प्रकार अपने अत:करण की शुद्धि-पूर्वक प्राणातिपात, मृषावाद आदि अठारह ही पाप-स्थानो का सर्वथा प्रकार से (तीन करण-तीन योग से) त्याग करे। तत्पश्चात् अशन-पान-खादिम-स्वादिम—इन चारो प्रकार के आहार का तथा सू घने की वस्तु का, आख मे डालने के अजन आदि का सर्वथा प्रकार से त्याग करे।

इस प्रकार आहार-त्याग के बाद 'ज पि य इम शरीर इट्ठ काल अणवकखमाणे विहरामि' इस पाठ के

उच्चारण-पूर्वक अपने शरीर के ममत्व का भी सर्वथा प्रकार से त्याग कर दे।

सलेखना के पांच अतिचार

१ इहलोगासंसप्पओगे—सथारे के फलस्वरूप मेरी कीर्ति-ख्याति एव प्रतिष्ठा हो, लोग मुझे बडा त्यागी-वैरागी समझे एव धन्य-धन्य कहे—इस प्रकार इस लोक सबधी आकाक्षा करना।

२ **परलोगासंसप्पओगे**—मृत्यु के पश्चात् मुझे इद्र का पद मिले, उत्कृष्ट ऋद्धि का धारक देव बनू, चक्रवर्ती या राजा होऊ, सुन्दर शरीर व रूप को प्राप्त करू इत्यादि परलोक सबधी आकाक्षा करना।

३. **जीवियासंसप्पओगे**—सथारे मे अपनी महिमा-पूजा होती देखकर बहुत समय तक जीवित रहने की इच्छा करना।

४. **मरणाससप्पओगे**—क्षुधा-तृषा आदि की पीडा से व्याकुल होकर जल्दी मर जाने की इच्छा करना।

५. **कामभोगासंसप्पओगे**—काम-भोगो की इच्छा करना।

साधक का कर्त्तव्य है कि वह सलेखना-सथारा मे उपर्युक्त पाचो अतिचारो (दोषो) से प्रतिपल सतर्क रहे। सलेखना जीवन का अतिम और महान् व्रत है। वह मृत्यु को सुधारने की एक उत्कृष्ट कला है। इस कला की साधना मे बहुत सावधानी की जरूरत है। सलेखना (सथारा) का प्रधान फल आत्मशुद्धि व आत्म-कल्याण है। वैसे आनुषगिक फल के रूप मे जो सासारिक सुख प्राप्त होने वाले है, वे तो इच्छा न करने पर भी स्वत प्राप्त हो जाते है—अत साधक को किसी

संसार-सुख की अभिलाषा नही करनी चाहिए। उसकी इच्छा करने से व्रत मे मलिनता आती है और व्रत का प्रधान फल नही मिल पाता। किसी भी प्रकार की सासारिक कामना न रखते हुए जिनेन्द्र भगवान् के गुणो मे ही अपने चित्त को रमाना चाहिए एव ससार के अनित्य स्वरूप का चिंतन करते हुए धर्मध्यान मे ही सथारे का समय व्यतीत करना चाहिए।

समाधि-मरण के ७३ बोल

सलेखना-सथारा की आराधना-पूर्वक निर्भयता एव तैयारी के साथ मरना ही "समाधि-मरण" कहलाता है। समाधि-मरण की आराधना के लिए निम्न बोलो का चिंतन-मनन करना चाहिए। समाधिमरण जीव के आतरिक विकास के लिए किया जाता है। अत ऐसे साधक को चाहिए कि वह शरीर को पराया एव निश्चय रूप से आत्मा को ही "मैं" अर्थात् अपना समझते हुए उसके सबध मे इस प्रकार का चिंतन करता रहे

१ मैं अकेला हूँ।
२ मेरी आत्मा शाश्वत है।
३ मैं तो ज्ञान-दर्शन से सयुक्त (ज्ञान-दर्शनमय) हूँ, बाकी सब पदार्थ बाहरी हैं।
४ सयोग मे वियोग छिपा हुआ है।
५ ऐसे सयोग मे मूर्च्छित हाना ही सब दु.खो का मूल कारण है, पुद्गलो का सयोग-सबध अनित्य है, क्योकि यह मेरा आत्म-स्वरूप नही है।
६ सब बाहरी सयोगो का मैं तीन करण—तीन योग से त्याग करता हूँ।

७. मै चेतन हूँ, पुद्गल अचेतन (जड़) है ।
८ मैं अरूपी हूँ, पुद्गल रूपी है ।
९ मैं अमूर्त्त हूँ, पुद्गल मूर्त्त है ।
१०. ज्ञान-दर्शन आदि आत्म-गुण ही मेरे स्वभाव है, शेष वर्ण गध आदि पुद्गल विभाव (परभाव) हैं ।
११ मै शुचि-पवित्र हूँ, पुद्गल अशुचि-अपवित्र है ।
१२. मै शाश्वत हूँ पुद्गल अशाश्वत है ।
१३. मेरा स्वरूप ज्ञान-दर्शन-मय एव शाश्वत है, पुद्गल पूरण-गलन आदि परिवर्तन-स्वभाव वाला है ।
१४. मैं अचलित-स्वरूप वाला हूँ, पुद्गल चलित-रूप वाला है ।
१५. मै ज्ञानादि स्वरूप वाला हूँ, पुद्गल वर्णादि रूप वाला है।
१६ मैं शुद्ध-निर्मल हूँ ।
१७ मैं बुद्ध—ज्ञानानद-रूप हूँ ।
१८. मैं विकल्प-रहित हूँ ।
१९ मैं देहातीत (शरीर आदि से रहित) हूँ ।
२० मै राग-द्वेष, अज्ञान, आस्रव से भिन्न हूँ ।
२१. मै अनत-ज्ञानादि रूप हूँ ।
२२ मैं कर्म रूपी रज-मैल से रहित हूँ ।
२३. मै निरञ्जन-निराकार हूँ ।
२४. मै अविनाशी हूँ ।
२५. मैं अजर (जरा-बुढापा रहित) हूँ ।
२६. मैं अनादि हूँ । मेरी आदि-आरभ नही है ।
२७. मैं अनत (अत-रहित) हूँ ।
२८. मै अक्षय (क्षय—नाश रहित) हूँ ।
२९. मै अक्षर (कभी नष्ट न होने वाला) हूँ ।
३०. मैं अचल (स्थिर स्वभाव वाला) हूँ ।

३१ मैं अकल्प्य हूँ। मेरी कल्पना नही की जा सकती।
३२. मैं अमल (द्रव्य एव भाव मल से रहित) हूँ।
३३ मैं अगम—अगोचर हूँ।
३४. मैं अनामी हूँ। मेरा कोई नाम नही है।
३५ मैं अरूपी (रूप-रहित) हूँ।
३६. मैं अकर्मी (कर्म-रहित) हूँ।
३७. मैं अबन्धक हूँ। मेरे किसी प्रकार का बन्धन नही है।
३८ मैं अनुदय (उदय भाव रहित) हूँ।
३९ मैं अयोगी (योगो से रहित) हूँ।
४० मैं अभोगी (भोगों से रहित) हूँ।
४१. मैं अरोगी (रोगो से रहित) हूँ।
४२ मैं अभेदी हूँ। किसी के द्वारा मैं भेदा नही जा सकता।
४३ मैं अवेदी (वेद-रहित) हूँ।
४४ मैं अछेदी हूँ। मैं किसी के द्वारा छेदा नही जा सकता।
४५. मैं अदह्य हूँ। मुझे अग्नि जला नही सकती।
४६. मैं अक्लेद्य हूँ। मुझे पानी गला नही सकता। मै अशोष्य हूँ। मुझे किसी प्रकार की हवा सुखा नही सकती।
४७ मैं अखेदी (खेद-रहित) हूँ।
४८ मैं असखा हूँ। मेरा दूसरा कोई मित्र नही है, मेरी आत्मा ही मेरा मित्र है।
४९. मैं सबल हूँ।
५०. मैं अलेश्यी (लेश्या रहित) हूँ।
५१ मैं अशरीरी (शरीर रहित) हूँ। शरीर से मेरा कोई सम्बन्ध नही है।
५२ मैं अभाषी हूँ।
५३ मैं अनाहारी हूँ। आहार करना मेरा स्वभाव नही है।

५४. मैं अव्याबाध (बाधा रहित सुख वाला) हूँ ।
५५. मैं अनवगाही हूँ । मेरे मे कोई भी दूसरा पदार्थ अवगाहन नही कर सकता ।
५६. मैं अगुरुलघु हूँ (न हल्का हूँ और न भारी) ।
५७. मैं अपरिणामी हूँ । मेरे मे पर के सयोग से कोई परिवर्तन नही होता ।
५८. मैं अतीन्द्रिय हूँ । मेरा इद्रियों से कोई सम्बन्ध नही है ।
५९. मैं अप्राण (द्रव्य प्राण-रहित) हूँ ।
६०. मै अयोनि (योनि-रहित) हूँ ।
६१ मैं अससारी हूँ । मेरा ससार से कोई सबध नही है ।
६२. मै अमर हूँ, जन्म-मरण से रहित हूँ ।
६३ मैं अपार हूँ । मेरे निज-गुणो का कोई पार (थाह) नही है ।
६४ मैं अव्यापी हूँ (अपने स्वरूप मे तो व्याप्त हूँ परतु वैभाविक परिणामो मे एव जड-पुद्गलो मे व्याप्त नही हूँ) ।
६५. मै अनास्तित हूँ । मेरे स्व-द्रव्यादि चतुष्टय सदा विद्यमान है ।
६६. मैं अकम्प्य हूँ । ससार मे ऐसी कोई शक्ति नही, जो मुझे कपा सके ।
६७. मैं अविरोध हूँ । कर्म-शत्रु मुझे रू ध नही सकते ।
६८ मैं अनास्रवी (निर्लेप) हूँ ।
६९. मैं अलख हूँ । मेरे स्वरूप को छद्मस्थ लख (देख) नही सकता ।
७०. मैं अशोक (शोक-रहित) हूँ ।
७१. मैं अलौकिक हूँ ।
७२ मैं लोकालोक के स्वरूप का ज्ञाता हूँ, एक समय मे लोकालोक के स्वरूप को जानने मे समर्थ हूँ ।

७३ मैं चिदानद हूँ । चैतन्य-गुण मे ही सदा आनदित रहने वाला हूँ ।

संलेखना वाले की भावना

(१) अहा ! पुद्गल के परमाणुओ के मिलने पर इस शरीर-पिण्ड का निर्माण हुआ था। देखते-देखते ही इसका प्रलय होने लगा है ! पुद्गलो का सयोग ऐसा विनाशशील है ।

(२) प्रभो ! आपने कहा था—'अधुवे असासयमि' अर्थात् यह जीवन अध्रुव (अस्थिर) और अशाश्वत (अनित्य) है। आपके इस कथन पर इतने दिन तक मैंने ध्यान नही दिया । अब शरीर की यह विनाशशील रचना देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि आपका कथन पूर्ण रूप से सत्य है ।

(३) जिस प्रकार मनुष्यो का एक जगह इकट्ठा होना 'मेला' कहलाता है और कालातर मे उनके बिखर जाने पर शून्य अरण्य हो जाता है, इसी प्रकार अनेक मनुष्यो के मिलने पर कुटुम्ब का मेला लग जाता है और पुद्गलो के सयोग से शरीर का मेला बन जाता है । मगर चद दिनो के बाद ही वह बिखरने लगता है । इसमे हर्ष या विषाद करना उचित नही है । जैसे मेले मे शामिल होने वाले लोग बिखरते समय चिंता या शोक नही करते, उसी प्रकार कुटुम्ब, या शरीर का मेला बिखरते समय मुझे भी शोक नही करना चाहिए । सयोग का फल वियोग है । चिंता करके भी कोई वियोग से बच नही सकता । ऐसी स्थिति मे चिंता या शोक करके अपनी आत्मा को अशान्त और मलिन करने की क्या आवश्यकता है ?

(४) इस जगत् का न कोई कर्त्ता है, न कोई हर्त्ता है । सभी पदार्थ स्वभाव से ही मिलते और बिछुडते हैं । शरीर का

सयोग भी स्वभाव से ही हुआ है और स्वभाव से ही मिटने वाला है। मैं सयोग बनाये रखना चाहू तो रह नही सकता और बिखेरना चाहूँ तो बिखर नही सकता। तो फिर इसके बिखरने की चिता मैं क्यो करू ! जो होना होगा सो आप ही हो जाएगा।

(५) मैं अजर, अमर अविनाशी, अमूर्त्त एव सच्चिदानद हूँ और शरीर विनश्वर, मूर्त्त एव जड रूप है। शरीर का नाश होने पर भी मेरे स्वभाव का कदापि नाश नही हो सकता। फिर इस शरीर की चिंता मैं क्यो करू ?

(६) हे जिनेन्द्र ! मै अविवेक के कारण इस शरीर को अपना मानता था पर अब मुझे भास हुआ है कि वह मेरी मात्र भ्राति थी-भूल थी। वास्तव मे शरीर तो मेरा है ही नही, क्योकि यह मेरी इच्छा के अनुसार चलता ही नही है। मैं कब चाहता था कि यह बूढा हो जाये ? मैंने कब इच्छा की थी कि शरीर के सब अगोपाग शक्तिहीन, शिथिल और जर्जरित हो जाएँ ? मेरी इच्छा नही थी कि यह शरीर नाना प्रकार के रोगो का घर बन जाये, फिर भी यही हुआ। मेरी इच्छा न होते हुए भी यह मेरे शत्रु रोगो से मिल गया और इसने बुढापे को स्वीकार कर लिया। अगर यह मेरा होता तो मेरे दुश्मनो से क्यो मिलता ? मुझे दु खी करने के लिए क्यो तैयार होता ? ऐसे स्वामी-द्रोही शरीर को अपना मानना उचित नही है। अब मैं समझ गया—यह मेरा नही है। चाहे रहे चाहे जाये !

७. रे भोले जीव ! इस शरीर को माता-पिता अपना पुत्र कहते है, भ्राता-भगिनी अपना भाई कहते है, काका-काकी अपना भतीजा कहते हैं, मामा-मामी अपना भानजा कहते है,

पत्नी अपना पति कहती है, पुत्र-पुत्री अपना पिता कहते है इत्यादि सब इसे अपना-अपना कहते हैं और तू भी इसे अपना समझता है। अब बता—यह शरीर वास्तव मे किसका है ? परमार्थ-दृष्टि से देखने पर जान पडता है कि यह किसी का नही है, क्योकि कोई भी इसे रखने मे समर्थ नही है। अतएव सब कुटुम्बियो और सम्बन्धियो से ममत्व का त्याग कर दे और यह निश्चित समझ ले कि तू सच्चिदानद स्वरूप है। निज स्वभाव मे रमण करना ही अब तुझे उचित है।

८ रे आत्मन् ! यह शरीर-सपदा इन्द्रजाल की माया के समान है। काल के वशीभूत होकर यह क्षण-क्षण मे बदलता रहता है। जरा इस ओर दृष्टि दे—बाल्यावस्था मे यह सब को प्यारा लगता है। पुद्गलो का प्रचय होते-होते युवावस्था मे यह छटादार एव मनोहर बन जाता है। क्षण-क्षण मे पलटते-पलटते यह जब वृद्धावस्था को प्राप्त कर लेता है, तब गलित-पलित होकर घृणा का पात्र बन जाता है। जो पहले इसको प्यार करते थे, उन्हे ही अब यह खारा लगने लगता है। मृत्यु का हमला होते ही यह मुर्दा बन जाता है और प्रेमी स्वजन इसे श्मशान मे ले जाकर अग्नि मे जला देते है। शरीर की और कुटुम्बियो की इस स्थिति को देखकर एव जानकर भी इन्हे अपना समझना, इनके प्रति आसक्त रहना कितने आश्चर्य और खेद की बात है ?

९. आत्मा अविनाशी है और शरीर विनाशशील है। इस-लिए मृत्यु शरीर को अपना ग्रास बना सकती है, आत्मा को नही। आत्मा आकाशवत् है, इस कारण अग्नि मे जलता नही, पानी मे गलता नही, वायु मे उडता नही, शस्त्रो से भिदता

नही तथा हस्तादि से ग्रहण नही किया जा सकता। आकाश से आत्मा की विशेषता यह है कि आकाश अचेतन है, आत्मा चेतन है, आकाश जड है, आत्मा चिन्मय है। अत आत्मा को कभी किसी से भय नही हो सकता।

१०. भूत, भविष्य तथा वर्तमान काल मे जिन्होने स्वर्ग और मोक्ष मे उत्तम सुखो को प्राप्त किया है, करते है और करेंगे यह सब 'समाधिमरण' का प्रताप है, क्योकि इसके बिना मोक्ष के उत्तम सुखो की प्राप्ति असम्भव है। अत हे सुखार्थी आत्मन् ! तुझे समाधिमरण की आराधना अवश्य करनी चाहिए।

११ अशुचि से परिपूर्ण, फूटे हडे के समान सदैव स्वेद, श्लेष्म, मल, मूत्र आदि घिनौनी वस्तुएँ बहाने वाले इस जर्जरित औदारिक शरीर के फदे से छुडा कर अशरीरी (सिद्ध भगवान) बनाने वाला, दिव्य शरीरी बनाने वाला 'समाधिमरण' ही है। अत इसका स्वागत करना ही उचित है।

१२ हे जीव ! यदि तू रोग-जन्य दु ख से घबराता है, सचमुच ही यह रोग तुझे अप्रिय प्रतीत होता है और इस दु ख से अगर तू ऊब गया है तो अब तू बाह्य उपचारो का परित्याग कर दे। क्योकि यह रोग कर्माधीन है। कर्माधीन रोग या कष्ट को मिटाने की शक्ति बाह्य उपचारो मे नही है। कदाचित् एकाध रोग कुछ कम हो भी जायेंगे तो उससे फायदा क्या ? हमेशा के लिए तो वह मिट नही सकता। सख्यात या असख्यात काल के अनतर फिर उसका उदय हो जाएगा। अगर तू समस्त रोगो की सदा के लिए चिकित्सा करना चाहता है तो श्री जिनेद्र भगवान् रूप अलौकिक वैद्यराज द्वारा कही हुई 'समाधि' रूप परम-औषध का सेवन कर। 'समाधि' ऐसा अद्भुत रसायन है

कि उसके सेवन से मानसिक, शारीरिक और आत्मिक सभी रोगो का समूल नाश हो जाता है। उसको सेवन करने वाला अनत, अक्षय, असीम एव अव्याबाध आनद का भोक्ता बन जाता है।

१३. आत्मन्! यह तू निश्चय समझ ले कि 'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' अर्थात् उपार्जित किए हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नही हो सकता। ऐसी स्थिति मे तू भोगने मे समर्थ होता हुआ भी क्यो जी चुराता है? वृथा क्यो ब्याज बढा रहा है? बुद्धिमत्ता इसी मे है कि शीघ्रातिशीघ्र सारा कर्ज चुकता करके तू हल्का हो जा।

१४ काम मे लेते-लेते सुन्दर वस्त्र भी जब जीर्ण हो जाता है तो उस पर ममता नही रहती। उसे उतार कर फेंक दिया जाता है और हर्ष के साथ नूतन वस्त्र धारण कर लिया जाता है। इसी प्रकार यह औदारिक शरीर अनेक कामो मे आने से एव रोगो के सयोग से जीर्ण हो गया है। अब इसका परित्याग करने मे विषाद क्यो? पुराना वस्त्र उतार कर ही तो नया वस्त्र धारण किया जाता है। इस शरीर को त्यागने पर ही तो दूसरे दिव्य शरीर की या कभी जीर्ण-शीर्ण न होने वाले आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होगी। ऐसी स्थिति मे इस जीर्ण-शीर्ण शरीर का त्याग करने मे झिझकने की क्या जरूरत है?



महापुरुष-नाम

※ तिरसठ श्लाघ्य-पुरुषों के नाम ※

चौवीस तीर्थंकर

१ श्री ऋषभ जिन
२ ,, अजित जिन
३ ,, सभव जिन
४ , अभिनदन जिन
५ ,, सुमति जिन
६ ,, पद्मप्रभ जिन
७ ,, सुपार्श्व जिन
८ ,, चद्रप्रभ जिन
९ ,, सुविधि जिन
१० ,, शीतल जिन
११ ,, श्रेयास जिन
१२ ,, वासुपूज्य जिन
१३ श्री विमल जिन
१४ ,, अनत जिन
१५ ,, धर्म जिन
१६ ,, शाति जिन
१७ ,, कु थु जिन
१८ ,, अर जिन
१९ ,, मल्ली जिन
२० ,, मुनिसुव्रत जिन
२१ ,, नमि जिन
२२ ,, अरिष्टनेमि जिन
२३ ,, पार्श्व जिन
२४ ,, वर्धमान जिन

वारह चक्रवर्ती

१ श्री भरत
२ ,, सगर
३ ,, मघवा
४ ,, सनत्कुमार
५ ,, शाति
६ ,, कु थु
७ श्री अर
८ ,, सुभूम
९ ,, महापद्म
१० ,, हरिषेण
११ ,, जय
१२ ,, ब्रह्मदत्त

नव वलदेव

१ श्री अचल
२ ,, विजय
३ श्री भद्र
४ ,, सुप्रभ

५ श्री सुदर्शन
६ ,, आनद
७ ,, नदन
८ श्री पद्म (राम)
९ ,, राम (बलभद्र)

नव वासुदेव

१ श्री त्रिपृष्ठ
२ ,, द्विपृष्ठ
३ ,, स्वयभू
४ ,, पुरुषोत्तम
५ ,, पुरुषसिह
६ श्री पुरुषपुडरीक
७ ,, दत्त
८ ,, नारायण (लक्ष्मण)
९ ,, कृष्ण

नव प्रतिवासुदेव

१ श्री अश्वग्रीव
२ ,, तारक
३ ,, मेरक
४ ,, श्री मधु (मधुकैटभ)
५ ,, निशुभ
६ श्री बलि
७ ,, प्रह्लाद (प्रभाराज)
८ ,, रावण
९ ,, जरासध

❀ बीस विहरमानों [तीर्थकरों] के नाम ❀

१ श्री सीमधर स्वामी
२ ,, युगधर स्वामी
३ ,, बाहु स्वामी
४ ,, सुबाहु स्वामी
५ ,, सुजात स्वामी
६ ,, स्वयप्रभ स्वामी
७ ,, ऋषभानन स्वामी
८ ,, अनतवीर्य स्वामी
९ श्री सूरप्रभ स्वामी
१० ,, विशालधर स्वामी
११ ,, वज्रधर स्वामी
१२ ,, चद्रानन स्वामी
१३ ,, चद्रबाहु स्वामी
१४ ,, भुजगधर स्वामी
१५ ,, ईश्वर स्वामी
१६ ,, नेमप्रभ स्वामी

१७ श्री वीरसेन स्वामी
१८ ,, महाभद्र स्वामी
१९ श्री देवयश स्वामी
२० ,, अजितवीर्य स्वामी

❋ ग्यारह गणधरों के नाम ❋

१ श्री इन्द्रभूति
२ ,, अग्निभूति
३ ,, वायुभूति
४ ,, व्यक्त
५ ,, सुधर्मा
६ ,, मण्डितपुत्र
७ श्री मौर्यपुत्र
८ ,, अकंपित
९ ,, अचलभ्राता
१० ,, मेतार्य
११ ,, प्रभास

❋ सोलह सतियों के नाम ❋

१ श्री ब्राह्मी
२ ,, चंदनबाला
३ ,, राजीमती
४ ,, द्रौपदी
५ ,, कौशल्या
६ ,, मृगावती
७ ,, सुलसा
८ ,, सीता
९ श्री सुभद्रा
१० ,, शिवा
११ ,, कुंती
१२ ,, दमयंती
१३ ,, चेलणा
१४ ,, प्रभावती
१५ ,, पद्मावती
१६ ,, सुंदरी

❋ दस श्रावकों के नाम ❋

१ श्री आनंद
२ ,, कामदेव
३ ,, चुलनीपिता
४ ,, सुरादेव
५ ,, चुल्लशतक
६ श्री कुंडकोलिक
७ ,, सकडालपुत्र
८ ,, महाशतक
९ ,, नंदिनीपिता
१० ,, शालेयिकापिता

पंच पदानुपूर्वी

पढ़ने की विधि

जहा १ है वहा णमो अरिहताण कहना ।
जहा २ है वहा णमो सिद्धाण कहना ।
जहा ३ है वहा णमो आयरियाण कहना ।
जहा ४ है वहा णमो उवज्झायाण कहना ।
जहा ५ है वहा णमो लोए सव्वसाहूण कहना ।

जपने का फल

अशुभ कर्म के हरण को, मन्त्र बडो नवकार ।
वाणी द्वादश अग मे, देख लियो तत्त्व सार ।।
आनुपूर्वी प्रतिदिन जपिए,
चचल मन स्थिर हो जावे ।
छह मासी तप का फल होवे,
पाप पक सब धुल जावे ।।
उगणीस लाख तिरसठ हजार,
दो सौ बासठ पल ।
अनहद सुख भोगवे,
नवकार मन्त्र नो फल ।।
निर्मल मन अनानुपूर्वी गणे,
पाच से सागर को पाप हणे ।।
जिनवाणी का सार है, मन्त्र राज नवकार ।
भाव सहित जपिये सदा, यही जैन आचार ।।

२

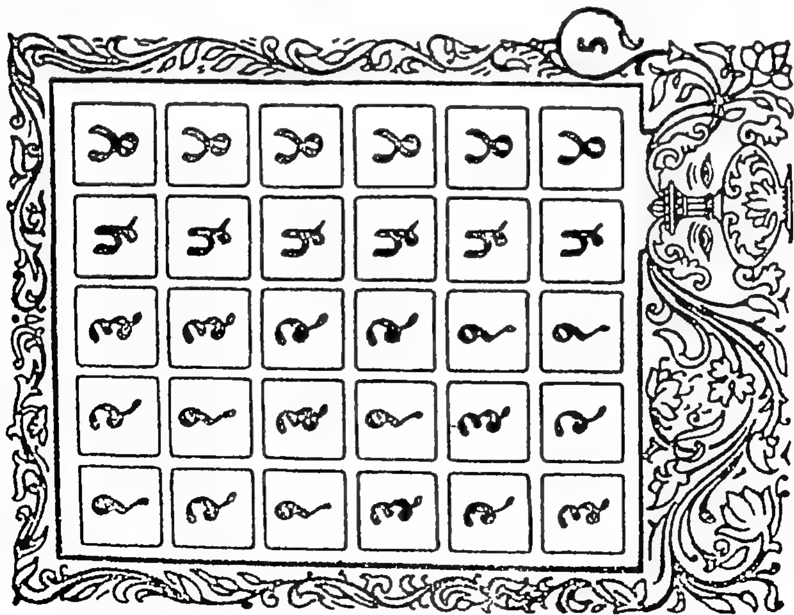
१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

१

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
१	१	१	१	१	१
४	४	३	३	२	२
३	२	४	२	४	३
२	३	२	४	३	४

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
२	२	२	२	२	२
४	४	३	३	१	१
३	१	४	१	४	३
१	३	१	४	३	४



[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

९

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

10

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

१२

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

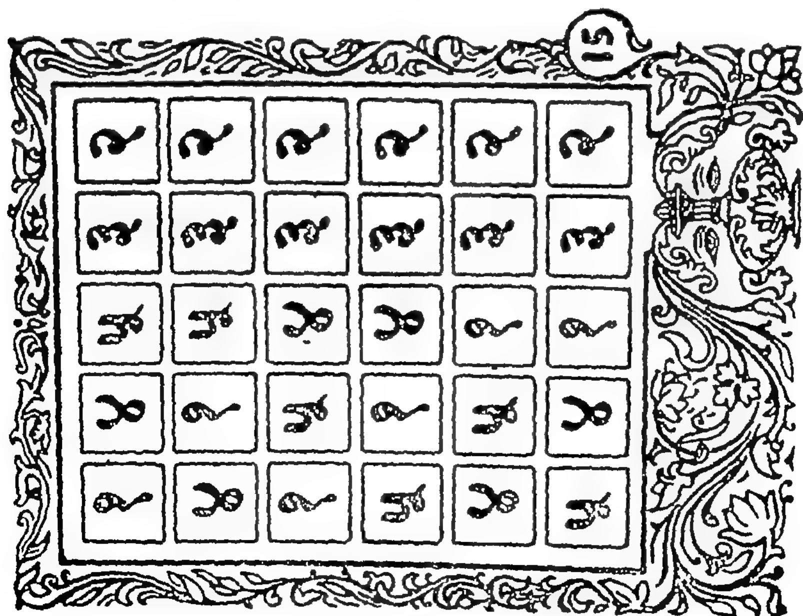
११

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

२	२	२	२	२	२
१	१	१	१	१	१
५	५	४	४	३	३
४	३	५	३	५	४
३	४	३	५	४	५



२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३
५	५	४	४	१	१
४	१	५	१	५	४
१	४	१	५	४	५

नवपदानुपूर्वी

पढने की विधि

जहाँ १ है-"नमो अरिहंताणं" का उच्चारण करे
जहाँ २ है-"नमो सिद्धाणं" का उच्चारण करे
जहाँ ३ है-"नमो आयरियाणं" का उच्चारण करे
जहाँ ४ है-"नमो उवज्झायाणं" का उच्चारण करे
जहाँ ५ है-"नमो लोएसव्वसाहूणं" का उच्चारण करे
जहाँ ६ है-"नमो दंसणस्स" का उच्चारण करे
जहाँ ७ है-"नमो नाणस्स" का उच्चारण करे
जहाँ ८ है-"नमो चरित्तस्स" का उच्चारण करे
जहाँ ९ है-"नमो तवस्स" का उच्चारण करे



१	९	५	८	४	३	६	२	७
६	२	७	१	९	५	८	४	३
८	४	३	६	२	७	१	९	५
२	७	६	४	३	८	९	५	१
४	३	८	९	५	१	२	७	६
९	५	१	२	७	६	४	३	८
५	१	९	३	८	४	७	६	२
७	६	२	५	१	९	३	८	४
३	८	४	७	६	२	५	१	९

२	६	७	९	१	५	८	३	४
९	१	५	४	८	३	६	७	२
४	८	३	२	६	७	१	५	९
१	५	९	६	७	२	३	४	८
८	३	४	१	५	९	७	२	६
६	७	२	८	३	४	५	९	१
७	२	६	३	४	८	९	१	५
५	९	१	७	२	६	४	८	३
३	४	८	५	९	१	२	६	७

१	१	१	१	१	१
४	४	४	४	४	४
५	५	३	३	२	२
३	२	५	२	५	३
२	३	२	५	३	५

१	१	१	१	१	१
५	५	५	५	५	५
४	४	३	३	२	२
३	२	४	२	४	३
२	३	२	४	३	४

१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२
५	५	४	४	३	३
४	३	५	३	५	४
३	४	३	५	४	५

१	१	१	१	१	१
३	३	३	३	३	३
५	५	४	४	२	२
४	२	५	२	५	४
२	४	२	५	४	५

नवपदानुपूर्वी

पढ़ने की विधि

जहाँ १ है-"नमो अरिहंताणं" का उच्चारण करें
जहाँ २ है-"नमो सिद्धाणं" का उच्चारण करे
जहाँ ३ है-"नमो आयरियाणं" का उच्चारण करे
जहाँ ४ है-"नमो उवज्झायाणं" का उच्चारण करे
जहाँ ५ है-"नमो लोएसव्वसाहूणं" का उच्चारण करे
जहाँ ६ है-"नमो दंसणस्स" का उच्चारण करे
जहाँ ७ है-"नमो नाणस्स" का उच्चारण करे
जहाँ ८ है-"नमो चरित्तस्स" का उच्चारण करे
जहाँ ९ है-"नमो तवस्स" का उच्चारण करे



१	९	५	८	४	३	६	२	७
६	२	७	१	९	५	८	४	३
८	४	३	६	२	७	१	९	५
२	७	६	४	३	८	९	५	१
४	३	८	९	५	१	२	७	६
९	५	१	२	७	६	४	३	८
५	१	९	३	८	४	७	६	२
७	६	२	५	१	९	३	८	४
३	८	४	७	६	२	५	१	९

२	६	७	९	१	५	८	३	४
९	१	५	४	८	३	६	७	२
४	८	३	२	६	७	१	५	९
१	५	९	६	७	२	३	४	८
८	३	४	१	५	९	७	२	६
६	७	२	८	३	४	५	९	१
७	२	६	३	४	८	९	१	५
५	९	१	७	२	६	४	८	३
३	४	८	५	९	१	२	६	७

३	८	४	५	१	९	७	६	२
५	१	९	७	६	२	३	८	४
७	६	२	३	८	४	५	१	९
४	३	८	९	५	१	२	७	६
९	५	१	२	७	६	४	३	८
२	७	६	४	३	८	९	५	१
८	४	३	१	९	५	६	२	७
१	९	५	६	२	७	८	४	३
६	२	७	८	४	३	१	९	५

४	२	९	३	७	५	८	६	१
३	७	५	८	६	१	४	२	९
८	६	१	४	२	९	३	७	५
६	१	८	२	९	४	५	३	७
२	९	४	७	५	३	१	८	६
७	५	३	६	१	८	९	४	२
५	३	७	९	४	२	६	१	८
१	८	६	५	३	७	२	९	४
९	४	२	१	८	६	७	५	३

५	१	९	३	८	४	६	२	७
३	८	४	७	६	२	१	९	५
७	६	२	५	१	९	८	४	३
४	३	८	९	५	१	२	७	६
२	७	६	४	३	८	९	५	१
९	५	१	२	७	६	४	३	८
१	९	५	८	४	३	७	६	२
८	४	३	६	२	७	५	१	९
६	२	७	१	९	५	३	८	४

६	२	७	१	९	५	३	८	४
८	४	३	६	२	७	५	१	९
१	९	५	८	४	३	७	६	२
९	५	१	२	७	६	४	३	८
२	७	६	४	३	८	९	५	१
४	३	८	९	५	१	२	७	६
७	६	२	५	१	९	८	४	३
३	८	४	७	६	२	१	९	५
५	१	९	३	८	४	६	२	७

७	२	६	३	४	८	५	९	१
३	४	८	५	९	१	७	२	६
५	९	१	७	२	६	३	४	८
१	५	९	८	३	४	६	७	२
६	७	२	१	५	९	८	३	४
८	३	४	६	७	२	१	५	९
२	६	७	४	८	३	९	१	५
४	८	३	९	१	५	२	६	७
९	१	५	२	६	७	४	८	३

८	३	४	२	६	७	५	९	१
६	७	२	९	१	५	३	४	८
१	५	९	४	८	३	७	२	६
३	४	८	१	५	९	६	७	२
७	२	६	८	३	४	१	५	९
५	९	१	६	७	२	८	३	४
९	१	५	७	२	६	४	८	३
४	८	३	५	९	१	२	६	७
२	६	७	३	४	८	९	१	५

९	१	५	२	६	७	४	८	३
४	८	३	९	१	५	२	६	७
२	६	७	४	८	३	९	१	५
८	३	४	६	७	२	१	५	९
६	७	२	१	५	९	८	३	४
१	५	९	८	३	४	६	७	२
५	९	१	७	२	६	३	४	८
३	४	८	५	९	१	७	२	६
७	२	६	३	४	८	५	९	१

१	९	५	३	४	८	६	२	७
८	४	३	७	२	६	१	९	५
६	२	७	५	९	१	८	४	३
२	७	६	८	३	४	९	५	१
४	३	८	१	५	९	२	७	६
९	५	१	६	७	२	४	३	८
७	६	२	९	१	५	३	८	४
५	१	९	४	८	३	७	६	२
३	८	४	२	६	७	५	१	९

व्याख्यान की सांडणी

हिंसा-विमुक्त विजयान्वित हित, निर्मायिक श्री मुनिराज-सेवितम्।
नाना कुवाद्यावलि-दर्पनाशन, वदे वरं श्री जिनराज-शासनम् ।।

श्रमण भगवत श्री वीर वर्द्धमान स्वामी चौबीसवा जिनेंद्र योगेंद्र देवाधिदेव घोर ससार को त्याग कर अशरण-शरण भव-भय-हरण तारण-तरण श्रीमद् भगवत महावीर स्वामी ने केवल ज्ञान-केवल दर्शन समुत्पन्न भयो तद लोकालोक नो स्वरूप देख उपकार-निमित्ते धर्म-सिद्धात-सार रूप वाणी प्रकाशी ।

किं विशिष्टा जिनवाणी ? भव-वेल-कृपाणी, ससार-समुद्र-तारिणी, महामोहाध-दिनानुकारिणी, क्रोध-दावानलोपशामिनी, मोक्ष-मार्ग-प्रकाशिनी, कलिमलक्षालिनी, मिथ्यात्व-छेदिनी, त्रिभुवन-पालिनी, पाप-विशोधिनी, मन्मथप्रतिस्तभिनी, अमृत-रसास्वादिनी, हृदय-आह्लादिनी, विपक्ष-विस्तारिणी, आग-मोद्गारिणी, चतुर्विध-सघ-मनोहारिणी, भव्य-जन-कर्णोऽमृत-स्राविणी, सकलकुमति-विदारिणी, सर्वसशय-निवारिणी, योजन-प्रमाण-विस्तारिणी, एहवी श्री भगवत महाराज नी वाणी जाणवी ।

जिणने कोई भव्य जीव सुणे-साभळे, श्रद्धा-प्रतीति लावे तिको जीव पाचवी गति मोक्ष जिणरा शाश्वता सुख प्रति प्राप्ति होवे ।

वीर-हिमाचल सू निकसी, गुरु-गौतम के श्रुति-कुड ढरी है ।
मोह-महाचल भेद चली, जग की जडता सव दूर करी है ।
ज्ञानपयोनिधि माहि रली, बहु भग-तरगन सू उछरी है ।
ता शुचि शारद गग नदी प्रति, मै अजुलि निज शीश धरी है ।।

कैसे कर केतकी कणेर एक कह्यो जाय
 आक-दूध सुरभि के अतर घणेरो है ।
रीरी होत पीरी पर होस करे कचन की
 कहाँ काक–वाणी कहाँ कोयल की टेर है ।
कहाँ भानु तेज भारो आगियो विचारो कहाँ
 पूनम को प्रकाश कहाँ अमावस अधेरो है ।
पक्ष छोड पारखो निहाल नीके नैन कर
 जैन-वैन और वैन अतर घणेरो है ।।

वीतराग-वाणी साची मोक्ष की निशानी महा-
 सुकृत की खानी ज्ञानी आप मु ह बखानी है ।
इनको आराध कर तिरे हैं अनत जीव
 सो ही है निहाल, जान श्रद्धा मन आनी है ।
श्रद्धा ही ते सार धार श्रद्धा ही ते खेवो पार
 श्रद्धा बिना जीव ख्वार निश्चय कर मानी है ।
वाणी तो घणेरी पण वीतराग तुल्य नाहि
 इनके सिवाय और छोरे-सी कहानी है ।।



व्याख्यान-समापक-पद

❀ प्रातः कालीन

दया सुखा री वेलडो, दया सुखा री खान।
अनत जीव मुगते गया, दया तणो फल जान ॥१॥

हिंसा दुख री वेलडी, हिंसा दुख री खान।
अनत जीव नरके गया, हिंसा तणो फल जान ॥२॥

जिम सुणो तिम ही करो, तो पहुचो निरवाण।
कइ-एक हिरदे राखजो, सुणिया रो परमाण ॥३॥

साधु भाव समुचे कह्या, कोई मत लीजो ताण।
राग-द्वेष मत राखजो, सुणिया रो परमाण ॥४॥

षट् द्रव्य ज्या में कह्या भिन्न-भिन्न, आगम सुणत बखान।
पचास्तिकाया नव पदारथ, पाच भाख्या ज्ञान।
चारित्र तेरह कह्या जिनवर, ज्ञान-दर्शन परधान।
जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ॥१॥

चौबीस तीर्थंकर लोक माही, तिरण-तारण जहाज।
नव वासु-नव प्रतिवासुदेवा, बारह चक्रवर्ती जाण।
बलदेव नव सब हुआ त्रेसठ, घणा गुणा री खान।
जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ॥२॥

चार देशना दिवी हो जिनवर, कियो पर उपकार।
पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चार शिक्षा धार।
पाच सवर जिनेश भाख्या, दया-धर्म प्रधान।
जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ॥३॥

और कहा लग करू वर्णन, तीन लोक परमाण ।
सुणत पाप विनाश जावे, पाय पद निरवाण ।
देव विमानिक माहि पदवी, कही पच प्रधान ।
जो शास्त्र नित सुणो भवियण, आण शुद्ध मन ध्यान ।।४।।

❀ मध्यान्ह कालीन

तीरथ-करता दुरित-हरता, इद्र सारे सेव है ।
त्रैलोक्य स्वामी मोक्षगामी, सो ही हमारे देव है ।।१।।

महाव्रतधारी आत्म-तारी, जीव षट् प्रतिपालता ।
गुरुदेव मोटा लिया जु ओटा, दोष सघला टालता ।।२।।

सब जीव रक्षा एह परीक्षा, धर्म जिनकू जाणिए ।
जहा होत हिसा नही ससा, अधर्म वही पहिचानिए ।।३।।

एह तीन रत्ना कीजे जतना, शुद्ध चित्त सू धारिए ।
कहे वक्ता सुणो श्रोता, ग्रथ नो छै सार ए ।।४।।

शक्ति सारू त्याग वारू, करो निज-हित आण ए ।
प्रभु-शरण लेवो धर्म सेवो, थायसे कल्याण ए ।।५।।

—श्री जेठमल श्रीश्रीमाल, जयपुर

पच्चक्खाण

दो चेव नमुक्कारो, आगारा छच्च हुति पोरिसिए ।
सत्तेव य पुरिमड्ढे, एगासणमि अट्ठेव ।।
सत्तेगट्ठाणस्स उ, अट्ठेव य अबिलमि आगारा ।
पचेव य भत्तट्ठे, छप्पाणे चरिम चत्तारि ।।
पच चउरो अभिग्गहे, निव्वीए अट्ठ नव य आगारा ।
अप्पाउरणे पच उ, हवति सेसेसु चत्तारि ।।

नवकारसी

उग्गए सूरे नमुक्कारसहिय पच्चक्खामि चउव्विह पि आहार—असण पाण खाइम साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण वोसिरामि ।

पोरसी

उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि चउव्विह पि आहार—असण पाण खाइम साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण, पच्छन्नकालेण, दिसामोहेण, साहुवयणेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

डेढ पोरसी

उग्गए सूरे सड्ढपोरिसिं पच्चक्खामि चउव्विह पि आहार—असण पाण खाइम साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण, पच्छन्नकालेण, दिसामोहेण, साहुवयणेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरामि ।

दो पोरसी

उग्गए सूरे पुरिमड्ढ पच्चक्खामि चउव्विह पि आहार—असण पाण खाइम साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण

पच्छन्नकालेण, दिसामोहेण, साहुवयणेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेण वोसिरामि ।

एकासन

उग्गए सूरे एगासण/बिआसण पच्चक्खामि तिविह-चउव्विह पि आहार असण-पाण-खाइम-साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण,सागारियागारेण, आउटण-पसारेण, गुरुअब्भुट्ठाणेण, परिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेण वोसिरामि ।

एकलठाणा

उग्गए सूरे एगट्ठाण पच्चक्खामि तिविह-चउव्विह पि आहार असण-पाण-खाइम-साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण, सागारियागारेण, गुरुअब्भुट्ठाणेण, परिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेण वोसिरामि ।

आयंबिल

उग्गए सूरे आयबिल पच्चक्खामि तिविह-चउव्विह पि आहार असण-पाण-खाइम-साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण, लेवालेवेण, गिहत्थ-ससट्ठेण, उक्खित्त-विवेगेण, परिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेण वोसिरामि ।

उपवास (आदि)

उग्गए सूरे अभत्तट्ठ पच्चक्खामि तिविह-चउव्विह पि आहार असण-पाण-खाइम-साइम अन्नत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण, परिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेण वोसिरामि ।

दिवसचरिम (चउविहार) व भवचरिम (संलेखना)

दिवस-चरिम/भव-चरिम पच्चक्खामि चउव्विह पि आहार असरण-पारण-खाइम-साइम अन्नत्थऽरणाभोगेण, सहसागारेरण, महत्तरागारेरण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेरण वोसिरामि ।

अभिग्रह

(उग्गए सूरे) अभिग्गह (गठिसहिय-मुट्ठिसहिय) पच्चक्खामि चउव्विह पि आहार असण-पाण-खाइम-साइम अन्नत्थऽरणाभोगेण, सहसागारेरण, महत्तरागारेरण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेण वोसिरामि ।

निव्विगइय

उग्गए सूरे निव्विगइय पच्चक्खामि तिविह-चउव्विह पि आहार असण-पारण-खाइम-साइम अन्नत्थऽरणाभोगेण, सहसागारेण, लेवालेवेरण, गिहत्थससट्ठेरण उक्खित्त-विवेगेरण, पडुच्चमक्खिएरण, परिट्ठावरिणयागारेरण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहि-वत्तियागारेरण वोसिरामि ।

संवर (दया)

करेमि भते ! सवर पचासवदार पच्चक्खामि जाव न पालेमि ताव पज्जुवासामि दुविह-तिविहेरण न करेमि न कारवेमि मरणसा-वयसा-कायसा (अथवा एगविह-एगविहेरण न करेमि कायसा) तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पारण वोसिरामि ।

प्रतिपूर्ण पौषध व्रत

करेमि भते ! पडिपुण्ण पोसह असरण-पारण-खाइम-साइम चउव्विह पि आहार पच्चक्खामि, अबभ पच्चक्खामि,

मालावण्णग-विलेवण पच्चक्खामि, मणिसुवण्ण पच्चक्खामि, सत्थ-मूसलादिसावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव अहोरत्त पज्जुवासामि दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा-वयसा-कायसा तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

देशावकाशिक व्रत

दसवा 'देसावगासिक व्रत' दिन प्रति प्रभात से प्रारभ करके पूर्वादिक छहो दिशा मे जितनी भूमिका की मर्यादा रखी है, उसके उपरात आगे जाकर पाच आस्रव-द्वार सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह-तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा-वयसा-कायसा तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

सामायिक का महत्त्व

प्रत्येक साधनाशील व्यक्ति के लिए बधन-मुक्ति का परिज्ञान अनिवार्य है। साध्य की अर्थात् शाश्वत-सुख या आनद की उपलब्धि ही साधना का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। यह उपलब्धि तब तक नही होती, जब तक बधनो की परपरा नही मिटती। समस्त बधनो का मूल कारण है—मोह। राग और द्वेष—इसी मोह के कारण होते है। राग से अमुक वस्तु के साथ ममता (मेरापन) तथा द्वेष से अमुक वस्तु के साथ परता (परायापन) होती है। ममता एव परता के रहते हुए बधनो की परपरा मिटती नही अपितु और अधिक बढती ही जाती

है । बंधनों से वचने का एव बधनो की परपरा को मिटाने का उपाय तो 'सामायिक' ही है । सामायिक मे समता की साधना की जाती है । समता आत्मा की उच्चतम अवस्था है, क्योकि इस अवस्था मे राग-द्वेष का अभाव हो जाता है । बधनो (दु खो) से मुक्ति पाने का एकमात्र कारण है—सामायिक । यह आजीवन के लिए भी की जाती है तथा मर्यादित समय के लिए भी की जाती है । प्रथम कोटि का साधक 'श्रमण' तथा द्वितीय कोटि का साधक 'श्रावक' कहलाता है । बधन-मुक्ति तो सामायिक का अतिम लाभ है ही, इस साधना के कई आनुषगिक लाभ भी है । सामायिक-साधक को मानसिक, वाचिक एव कायिक विश्रान्ति मिलती है, क्योकि सामायिक, सब प्रकार के भौतिक प्रपचो से निवृत्त होकर ही की जा सकती है । उसे अपूर्व ज्ञान की उपलब्धि होती है, क्योकि सामायिक मे वीतराग-सम्मत यथार्थ-ज्ञापक सत्साहित्य एव व्याख्यानादि का ही वाचन एव श्रवण किया जाता है । वह सब प्रकार के 'पापो (अपराध) तथा उनसे होने वाले दु खो (दड) से सहज ही वच जाता है, क्योकि सामायिक मे सब प्रकार की सासारिक (सावद्य) प्रवृत्तियो का त्याग किया जाता है। इस प्रकार लौकिक एव लोकोत्तर-दोनो दृष्टियो से 'सामायिक' आत्मा के लिए अत्यत महत्वपूर्ण है । आचार्य हेमचद्र के अनुसार 'करोडो जन्मो मे तीव्र तपस्याओ के द्वारा भी व्यक्ति जिन कर्म-बधनो को नही तोड़ सकता, सामायिक-साधना (समता के अवलबन) से क्षणभर मे उन सबको तोड डालता है ।' अत प्रत्येक मुमुक्षु साधक को सामायिक का महत्त्व समझकर अवश्य ही इसकी साधना करनी चाहिए ।

—∞—

तीर्थंकर - परिचय

क्रम	तीर्थंकर	माता का नाम	पिता का नाम	लाछन	वर्ण	जन्म-नगरी
१	श्री ऋषभ जिनजी	श्री मरुदेवी	श्री नाभि	वृषभ	पीला	इक्ष्वाकु भूमि
२	,, अजित जिनजी	,, विजया देवी	,, जितशत्रु	गज	पीला	अयोध्या
३	,, सभव जिनजी	,, सेना	,, जितारि	अश्व	पीला	श्रावस्ती
४	,, अभिनदन जिनजी	,, सिद्धार्था	,, सवर	वानर	पीला	अयोध्या
५	,, सुमति जिनजी	,, मगला	,, मेघ	क्रौंच	पीला	अयोध्या
६	,, पद्मप्रभ जिनजी	,, सुसीमा	,, धर	पद्म	लाल	कौशाम्बी
७	,, सुपार्श्व जिनजी	,, पृथ्वी	,, प्रतिष्ठ	स्वस्तिक	पीला	वाराणसी
८	,, चद्रप्रभ जिनजी	,, लक्ष्मणा	,, महासेन	चद्र	सफेद	चद्रपुरी
९	,, सुविधि जिनजी	,, रामा	,, सुग्रीव	मकर	सफेद	काकदी
१०	,, शीतल जिनजी	,, नदा	,, दृढरथ	श्रीवत्स	पीला	भद्दिलपुर
११	,, श्रेयास जिनजी	,, विष्णु देवी	,, विष्णु	गेडा	पीला	सिंहपुर
१२	,, वासुपूज्य जिनजी	,, जया	,, वसुपूज्य	महिष	लाल	चपापुर

१३	श्री विमल जिनजी	श्री श्यामा	श्री कृतवर्मा	सूअर	पीला	कपिलपुर
१४	,, अनत जिनजी	,, सुयशा	,, सिंहसेन	बाज	पीला	अयोध्या
१५	,, धर्म जिनजी	,, सुव्रता	,, भानु	वज्र	पीला	रत्नपुर
१६	,, शाति जिनजी	,, अचिरा	,, विश्वसेन	मृग	पीला	हस्तिनापुर
१७	,, कुथु जिनजी	,, श्री देवी	,, वसु	बकरा	पीला	हस्तिनापुर
१८	, अर जिनजी	,, महादेवी	,, सुदर्शन	नद्यावर्त	पीला	हस्तिनापुर
१९	,, मल्लि जिनजी	,, प्रभावती	,, कुम्भ	कलश	नीला	मिथिला
२०	,, मुनिसुव्रत जिनजी	,, पद्मावती	,, सुमित्र	कछुवा	काला	राजगृह
२१	,, नमि जिनजी	, वप्रा	,, विजय	कमल	पीला	मिथिला
२२	,, नेमि जिनजी	,, शिवा देवी	,, समुद्रविजय	शख	काला	शौर्यपुर
२३	,, पार्श्व जिनजी	,, वामा	,, अश्वसेन	सर्प	नीला	वाराणसी
२४	,, वर्द्धमान जिनजी	,, त्रिशला	,, सिद्धार्थ	सिंह	पीला	कुडनपुर

पंच कल्याणक

तीर्थंकर-नाम	च्यवन-तिथि	जन्म-तिथि	दीक्षा-तिथि	ज्ञानोत्पत्ति-तिथि	निर्वाण-तिथि
श्री ऋषभ जिन	आषाढ वद ४	चैत वद ८	चैत वद ८	फागण वद ११	माघ वद १३
,, अजित जिन	वैशाख सुद १३	माघ सुद ८	माघ सुद ९	पोष सुद ११	चेत सुद ५
,, संभव जिन	फागण सुद ८	मिगसर सुद १४	मिगसर सुद १५	कार्तिक वद ५	चेत सुद ६
,, अभिनंदन जिन	वैशाख सुद ४	माघ सुद २	माघ सुद १२	पोष सुद १४	वैशाख सुद ८
,, सुमति जिन	सावण सुद २	वैशाख सुद ८	वैशाख सुद ९	चेत सुद ११	चेत सुद ९
,, पद्मप्रभ जिन	माघ वद ६	कार्तिक वद १२	कार्तिक वद १३	चेत सुद १५	मिगसर वद ११
,, सुपार्श्व जिन	भादवा वद ८	जेठ सुद १२	जेठ सुद १३	फागण वद ६	फागण वद ७
,, चंद्रप्रभ जिन	चेत वद ५	पौष वद १२	पौष वद १३	फागण वद ७	भादवा वद ७
,, सुविधि जिन	फागण वद ९	मिगसर वद ५	मिगसर वद ६	कार्तिक सुद ३	भादवा सुद ९
,, शीतल जिन	वैशाख वद ६	माघ वद १२	माघ वद १२	पौष वद १४	वैशाख वद २
,, श्रेयांस जिन	जेठ वद ६	फागण वद १२	फागण वद १३	माघ वद ३०	सावण वद ३
,, वासुपूज्य जिन	जेठ सुद ९	फागण वद १४	फागण वद ३०	माघ सुद २	आषाढ सुद १४

श्री विमल जिन	वैशाख सुद १२	माघ सुद ३	माघ सुद ४	पौष सुद ६	आषाढ वद ७
,, अनंत जिन	सावण वद ७	वैशाख वद १३	वैशाख वद १४	वैशाख वद १४	चेत सुद ५
,, धर्म जिन	वैशाख सुद ७	माघ सुद ३	माघ सुद १३	पौष सुद १५	जेठ सुद ५
,, शांति जिन	भादवा वद ७	जेठ वद १३	जेठ वद १४	पौष सुद ९	जेठ वद १३
,, कुंथु जिन	सावण वद ९	वैशाख वद १४	वैशाख वद ५	चेत सुद ३	वैशाख वद १
,, अर जिन	फागण सुद २	मिगसर सुद १०	मिगसर सुद ११	कार्तिक सुद १२	मिगसर सुद १०
,, मल्लि जिन	फागण सुद ४	मिगसर सुद ११	मिगसर सुद ११	मिगसर सुद ११	फागण सुद १२
,, मुनिसुव्रत जिन	सावण सुद १५	जेठ वद ८	फागण सुद १२	फागण वद १२	जेठ वद ९
,, नमि जिन	आसोज सुद १५	सावण वद ८	आषाढ वद ९	मिगसर सुद ११	वैशाख वद १०
,, अरिष्टनेमि जिन	कार्तिक वद १२	सावण सुद ५	सावण सुद ६	आसोज वद ३०	आषाढ सुद ८
,, पार्श्व जिन	चेत वद ४	पौष वद १०	पौष वद ११	चेत वद ४	सावण सुद ८
,, वर्द्धमान जिन	आषाढ सुद ६	चेत सुद १३	मिगसर वद १०	वैशाख सुद १०	कार्तिक वद ३०

ओलीतप करने की विधि

क्रमाक	माला	नमोत्थुण	वदना	काउस्सग्ग (लोगस्स)	माला	आयविल भोजन
१	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो अरिहताण	१२	१२	१२	१२	चावल
२	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो सिद्धाण	८	८	८	८	गेहू
३	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो आयरियाण	३६	३६	३६	३६	चना
४	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो उवज्झायाण	२५	२५	२५	२५	मू ग
५	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो लोए सव्वसाहूण	२७	२७	२७	२७	उडद
६	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो दसणस्स	६७	६७	६७	६७	चावल
७	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो नाणस्स	५१	५१	५१	५१	चावल
८	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो चरित्तस्स	१७	१७	१७	१७	चावल
९	ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो तवस्स	१२	१२	१२	१२	चावल

ओलीतप का समय

आसोज सुद सातम से पूनम एव चैत्र सुद सातम से पूनम तक – इस प्रकार एक वर्ष मे दो बार इस तप की आराधना की जाती है। साढे चार वर्ष मे कुल नव ओलियाँ एव इक्यासी आयविल के साथ इस तप की पूर्णाहुति होती है। इससे शारीरिक, मानसिक एव आत्मिक शाति की अनुभूति होती है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२१	ठाण सपत्ताण (यह पाठ केवल प्रथम नमोऽत्थुण मे ही बोलना है।)	ठाण सपाविउकामाण (दूसरे नमोऽत्थुण मे यह पाठ बोला जाना चाहिए।)
४	१०	स्त्री कथा (यह पाठ 'श्रावको' के लिए है।)	पुरुष कथा (श्राविकाओ को यह पाठ बोलना चाहिए।)
१०	१२	ठणाओ	ठाणाओ
१२	६	दूसरे मृषावाद	दूसरे स्थूल मृषावाद
१२	१०	२	३
१२	२४	सदार (यह पाठ श्रावको के लिए है।)	सभत्तार (श्राविकाओ को यह पाठ बोलना है।)
१३	२५	स्वेच्छा-काया से	स्वेच्छापूर्वक काया से
१७	१८	क आ	कओ
२०	१८	अगुरुलधु	अगुरुलघु
२२	१४	'तिक्खुत्तो · वदामि'	तिक्खुत्तो · · · वदामि। आप मागलिक हो, उत्तम हो। हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव मे सदा काल शरण हो।

२४	४	,,	,,
२६	१६	करते है, पौषध	करते है, मामायिक करते हैं, पौषध
३३	१७	कुप्य धातु के	कुप्य (सोना-चादी के सिवा अन्य सभी घर-विखरी वस्तुओ) के
३७	६	विश्वास रखना	विश्वास रखना)
४५	६	पण्णायत्त	पण्णायते
४६	४	भूइण्णे	भूइपण्णे
४७	५	पुढोवमे	पुढोवमे
४९	१५	समोसढे	समोसढे
५६	८	निक्खवओ	निक्खेवओ
७२	१७	माणस्सए	माणुस्सए
७५	२४	सहुमेहए	सुहुमेहए
८९	५	अह मो	अहम्मो
८९	९	तवा	तवो
९२	१३	सध्दस्स	सुद्धस्स
१००	१३	-पट्टभि	-पट्टभि
१००	१४	हरैरुदारै	हरैरुदारै
१०१	३	मृगो	मृगी
१०२	४	जल-निधेरसितु	जलनिधे रसितु
१०३	११	जीव लोके	जीवलोके
१०३	१५	तथा	यथा
१०९	१२	तच्चारुचाम्र-	तच्चाम्रचारु-
११२	८	मुनीद्रपथा	मुनीन्द्र । पन्था
११३	१६	त्रिगत	त्रिजगत

११४	२२	विभवाश्चरणेषु	विभवाश्चरणेषु
११७	१०	रौद्ररुपद्रव-	रौद्रै रुपद्रव-
१२५	७	वाच्छा	वाञ्छा
१२७	७	-फुल्लिग-	-फुलिंग-
१२९	१५	नामधय	नामधेय
१३८	२०	लोका	लोक
१४५	९	श्रणिक	श्रेणिक
१४७	७	सभूति विजय-शिष्य	सभूतिविजय-शिष्य
१६२	७	धणी	घणी
१६६	१	जधन्य	जघन्य
१८१	१९	पच	पच
२०६	१२	पहचान	पचाण
२०८	७	कम	कर्म
२२६	४	धणा	घणा
२२८	१६	श्वासोच्छ्वास	श्वासोच्छ्वास
२३३	४	भद	भेद
२३३	१६	मन-विग्रह	मन-निग्रह
२३४	९	मधा	मघा
२४३	२५	३०　　५६०	३०=५६०
२४७	११	पराधात	पराघात
२४८	२४	पाँच	पाच भेद
२५५	२२	गत्रो	गोत्र
२५९	१०	जधन्य	जघन्य
२६२	२५	वाल	वालु
२७२	८	जधन्य	जघन्य
२८३	१७	न । म	नाम

२८४	१३	वध्यम	मध्यम
२८९	१९	हाने	होने
२९७	७	हूँ, यथा	हूँ। एव
२९९	१४	मे	मैं
३००	१	सुमाव	समाधं
३०२	६	ज्यादा रखना	रखना
३०७	२३	प्रसन्नचदराजर्पि	प्रसन्नचद राजर्पि
३१५	४	निर्विध्न	निर्विघ्न
३२३	२०	ससार	ससार
३२५	१२	वद	वद
३३०	२४	मोह्-नीद	मोह्-नींद
३३१	६	धार निर्जरा वार	धार निर्जरा-सार
३३४	१०	मगल-माल	मगल-माल
३३५	१९	स्व-जयाचारी	स्व-जथाचारी
३३५	२२	विवन वन	विघन-घन
३३७	१६	अनत	अनत
३३९	११	अनतनाथ	अनतनाथ
३३९	११	सत	सत
३४२	१	अनत	अनत
३४८	१८	'इद्र-चद्र-नर-देवता' यह पक्ति दो वार है।	'इद्र-चद्र-नर-देवता' यह पक्ति एक वार ही चाहिये।
३४९	४	घडी-धडी	घडी-घडी
३४९	१७	महावोर	महावीर
३५७	१	अधाती	अघाती
३५९	९	कदरा	कदरा

३६०	४	विनयचद	विनयचद
३६०	२०	श्रा	श्री
३६४	५	भुजग	भुजग
३६९	१	धन	घन
३७२	३	हा	हो
३७६	१४	जलमल	जयमल
३७६	२०	काय	काय
३८१	२०	भेला	झेला
३८२	७	कोरा-कोना	कोना-कोना
३८२	२०	जागर	उजागर
३८८	९	फुमराये	फरमाये
३९१	१	धर नायक	घरनायक
३९२	१७	समति	सुमति
३९२	१८	माधवमनि	माधवमुनि
४०३	११	प्रभ्-भक्ति	प्रभु-भक्ति
४०६	६	कुशोल	कुशील
४०७	२	सधार	सुधार
४०७	८	मोठे	मीठे
४०९	५	वाला धाट	वालाघाट
४११	१९	धालमेल	घालमेल
४२१	८	दुऽख	दुख
४२५	१८	दख	दुख
४५४	२३	रहा	रहा करे
४५६	५	घणी	धणी
४५६	७	, श्राछो	श्रोछी
४५६	९	निर्धन के	निर्धन को

४६३	१०	आदमी की	आदमी के
४६७	११	आख का	आख की
४६९	१०	भक्खति, डज्झति	भक्खति, डज्झति
४६९	१२	चउव्विह पि	चउव्विह पि
४६९	१३	नवकार मत्र	नवकार मत्र
४६९	१५	कायात्सर्ग	कायोत्सर्ग
४६९	१९	जभाइए	जभाइए
४६९	१९	ससरक्खामामे	ससरक्खामोसे
४३९	२४	सम्म काएण	सम्म काएण
४७१	१८ व २०	सलेखना	सलेखना
४७१	२५	सथारा	सथारा
४७२	१०	विघि	विधि
४७३	३	नमोऽत्थुण	नमोऽत्थुण
४७४	२२	आनुपगिक	आनुपगिक
४८२	१२	फदे	फदे
४८२	२१	सख्यात	सख्यात
४८२	२१	असख्यात	असख्यात
४८४	६	सभव	सभव
४८४	११	चद्रप्रभ	चद्रप्रभ
४८५	१४	जरासध	जरासध
४८५	२०	चद्रानन	चद्रानन
४८५	२१	चद्रवाहु	चद्रवाहु
४८५	२२	भुजगधर	भुजगधर
४८६	२०	आनद	आनद

जयध्वज प्रकाशन समिति-मद्रास

सदस्यावली

वंश-परंपरागत सदस्य

१. श्री प्रेमचद जी श्रीश्रीमाल	रायपुर (मध्यप्रदेश)
२. श्री लालचद जी मरलेचा	मद्रास
३. श्री माणकलाल जी गोटावत	सोजतशहर (राज)
४ श्री रतनचद जी बोहरा	मद्रास
५. श्री लूणकरण जी नाहर	लखनऊ (उ प्र)
६. श्री जवरीलाल जी बोहरा	बेगलोर
७. श्री नेमीचद जी खीचा	बेंगलोर
८. श्री सुगालचद जी सिंगवी	मद्रास
९ श्री उगमचद जी लोढा	बोलारम (आ प्र.)
१० श्री भीकमचद जी बोहरा	राजहमद्री (आ. प्र)

आजीवन सदस्य

१ श्री फूलचद जी लूणिया	बेगलोर
२ श्री भवरलाल जी बिनायकिया	मद्रास
३ श्री रणजीतमल जी मरलेचा	मद्रास
४ श्री पन्नालाल जी सुराणा	मद्रास
५. श्री लालचद जी डागा	मद्रास
६. श्री भवरलाल जी गोठी	मद्रास
७ श्री रिधकरण जी बेताला	मद्रास
८ श्री मोहनलाल जी चोरडिया	मद्रास
९ श्री अमोलकचद जी सिंगवी	मद्रास
१० श्री राजमल जी मरलेचा	मद्रास

११. श्री कपूरचद भाई	मद्रास
१२. श्री सपतराज जी सिंगवी	गुडियारी(मध्यप्रदेश)
१३ श्री फतेहचद जी कटारिया	वेगलोर
१४ श्री भवरलाल जी डूगरवाल	मद्रास
१५. श्री पारसमल जी साखला	वेगलोर
१६. श्री जुगराज जी वरमेचा	मद्रास
१७ श्री नथमल जी सिंगवी	मद्रास
१८. श्री केवलचद जी वाफणा	मद्रास
१९. श्री रिखवचद जी सिंगवी	मद्रास
२० श्री मोहनलाल जी कोठारी	आरकॉट(तामिलनाडु)
२१. श्री भानीराम जी सिगवी	तिरुवेल्लोर
२२ श्री चाँदमल जी कोठारी	वेगलोर
२३. श्री धनराज जी वोहरा	वेगलोर
२४ श्री जगलीमल जी भलगट	भडारा (महाराष्ट्र)
२५ श्री झूमरमल जी भलगट	भडारा (महाराष्ट्र)
२६ श्री हस्तीमल जी वणिगगोता	वेगलोर
२७. श्री रगलाल जी राका	मद्रास
२८. श्री प्राणजीवन भाई	वम्वई
२९ श्री रसिकलाल भाई	वम्वई
३० श्री शातिलाल भाई	वम्वई
३१. श्री रजनीकात भाई	वम्वई
३२ श्री जवाहरलाल जी वोहरा	आजर्ले (महाराष्ट्र)
३३ श्री हीरालाल जी वोहरा	रोवर्टसनपेट
३४ श्री जेवतराज जी लूणिया	मद्रास
३५. श्री जवरचद जी वोकड़िया	मद्रास
३६ श्री पुखराज जी वोहरा	मद्रास

३७ श्री गजराज जी मेहता	मद्रास
३८. श्री भीकमचद जी गादिया	तिरुवेल्लोर
३९. श्री पारसमल जी बोहरा	तिरुवेल्लोर
४०. श्री चपालाल जी बोहरा	झूठा (राज.)
४१ श्री बी धर्मीचद जी बोहरा	झूठा (राज)
४२. श्री जे. भवरलाल जी चौपडा	मद्रास
४३. श्री मोतीलाल जी चौपडा	झूंठा
४४. श्री मागीलाल जी बोहरा	झूठा (राज.)
४५. श्री सी. घर्मीचद जी बोहरा	सपरून(हिमाचलप्रदेश)
४६ श्री माणकचद जी मूथा	मद्रास
४७. श्री भीकमचद जी बोहरा	मद्रास
४८. श्री जबरचद जी बोहरा	मद्रास
४९ श्री जैवतराज जी गादिया	मद्रास
५०. श्री सैंसमल जी सेठिया	बेगलोर
५१. श्री किशनलाल जी मकाणा	डोडबालापुर(कर्णाटक)
५२. श्री लूणकरण जी सोनी	भिलाईनगर (म प्र)
५३ श्री भवरलाल जी कोठारी	ब्यावर
५४. श्री लालचद जी श्रीश्रीमाल	ब्यावर
५५. श्री देवराज जी छाजेड	ब्यावर
५६ श्री सपतराज जी सिगवी	तिरुवेल्लोर
५७. श्री शातिलाल जी साखला	तिरुवेल्लोर
५८. श्री हस्तीमल जी गादिया	मद्रास
५९ श्री दुलीचद जी चोरडिया	मद्रास
६० श्री इद्रचद जी सिंगवी	मद्रास
६१ श्री पारसमल जी बागचार	मद्रास
६२ श्री जवाहरलाल जी चौपड़ा	अमरावती (महाराष्ट्र)

११ श्री कपूरचद भाई	मद्रास
१२. श्री सपतराज जी सिंगवी	गुडियारी(मध्यप्रदेश)
१३ श्री फतेहचद जी कटारिया	वेगलोर
१४ श्री भवरलाल जी डूगरवाल	मद्रास
१५. श्री पारसमल जी साखला	वेगलोर
१६. श्री जुगराज जी वरमेचा	मद्रास
१७. श्री नथमल जी सिंगवी	मद्रास
१८. श्री केवलचद जी वाफणा	मद्रास
१९ श्री रिखवचद जी सिंगवी	मद्रास
२० श्री मोहनलाल जी कोठारी	आरकॉट(तामिलनाडू)
२१. श्री भानीराम जी सिंगवी	तिरुवेल्लोर
२२ श्री चाँदमल जी कोठारी	वेगलोर
२३. श्री धनराज जी वोहरा	वेंगलोर
२४. श्री जगलीमल जी भलगट	भडारा (महाराष्ट्र)
२५ श्री झूमरमल जी भलगट	भडारा (महाराष्ट्र)
२६ श्री हस्तीमल जी वणिगगोता	वेगलोर
२७. श्री रगलाल जी राका	मद्रास
२८ श्री प्राणजीवन भाई	वम्बई
२९ श्री रसिकलाल भाई	वम्बई
३०. श्री शातिलाल भाई	वम्बई
३१ श्री रजनीकात भाई	वम्बई
३२ श्री जवाहरलाल जी वोहरा	आजर्ले (महाराष्ट्र)
३३ श्री हीरालाल जी वोहरा	रोवर्टसनपेट
३४ श्री जेवतराज जी लूणिया	मद्रास
३५. श्री जवरचद जी वोकडिया	मद्रास
३६. श्री पुखराज जी वोहरा	मद्रास

६३. श्री शातिलाल जी गाधी	बम्बई
६४ श्री देवीचद जी सिंगवी	मद्रास
६५. श्री रतनलाल जी बोहरा	केलशी (महाराष्ट्र)
६६. श्री पारसमल जी बोकडिया	मद्रास
६७. श्री पूसालाल जी कोठारी	खागटा (राज.)
६८. श्री अमरचद जी बोकडिया	मद्रास
६९ श्री दीपचद जी बोकडिया	मद्रास
७०. श्री केवलचद जी कोठारी	मद्रास
७१. श्री चैनराज जी सुराणा	मद्रास
	मद्रास